जैनधर्म प्रकाश

लेखक—

जैनधर्म भूषण, धर्मदिवाकर

ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी
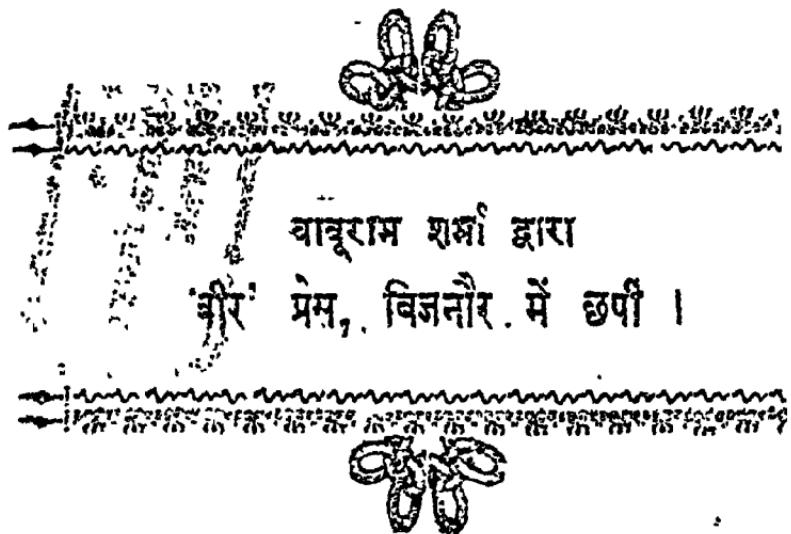
प्रकाशक—

रतनलाल बी. एस सी. एल एल. बी.

मंत्री—भा० दि० जैन परिषद्, बिजनौर

प्रथमवार	वीर सम्वत् २४५३	न्यौछावर
१०००	सन् १९२७ ई०	आठ आना

चान्दूराम शर्मा द्वारा
'वीर' प्रेस, बिजनौर में छपी ।

आभार

यह परिषद् बाबू ऋषभदास जी वकील मेरठ निवासी का विशेष आभारी है, जिन्होंने २५०) रु० स्त्री समाज मेरठ में से जो स्वर्गीया श्रीमती पार्वती देवी जी के स्मरणार्थ स्थापित हुआ है तथा अपनी बहिन स्वर्गीया चमेलीबाई के दान में से इस 'जैनधर्म प्रकाश' नामक पुस्तक के प्रकाशनार्थ प्रदान किये हैं, इसी सहायता के बल पर परिषद् इस पुस्तक को प्रकाशित कर सका है। आशा है कि श्रीमान् महोदय तथा अन्य सज्जन भी इसीप्रकार परिषद् को दान देकर अनुग्रहीत करते रहेंगे।

—प्रकाशक

कृतज्ञता प्रकाश

इस जैन धर्मप्रकाश को जनता के सामने रखते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष होता है, भारतवर्षीय दि० जैन परिषद् ने अपने मुज़फ्फ़रनगर के अधिवेशन में प्रस्ताव के द्वारा हुए निश्चय किया था कि अजैन जनता को जैन धर्म से परिचय कराने हेतु जैनधर्म की प्राचीनता व सिद्धान्त को संक्षेप में दर्शाने वाली पुस्तक तय्यार की जावे। उक्त प्रस्ताव के अनुसार जैनधर्म-भूषण धर्म दिवाकर ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ने बड़े परिश्रम से इस पुस्तक को तय्यार किया है जिसके लिये यह परिषद् उनका अत्यन्त कृतज्ञ है। इस पुस्तक को न्यायाचार्य पंडित माणिकचन्द जी ने आद्योपान्त पढ़ने का कष्ट उठाकर संशोधन किया है इसलिये वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। यदि जनता ने इस पुस्तक को अपनाया और जैनधर्म की जानकारी प्राप्त की तो इस पुस्तक के उद्देश्य की पूर्त्ति देखकर परिषद् के कार्य कर्त्ताओं और मुझको विशेष कर प्रसन्नता होगी

निवेदक—

रतनलाल मंत्री

भा० दि० जैन परिषद्

भूमिका

भारतवर्ष में जैन लोग किसी समय सर्वत्र व्यापक थे, इन
ी बहुत बड़ी संख्या थी जिस का प्रमाण यह है कि पूर्व,
श्चिम, दक्षिण, उत्तर चहुं ओर हर एक प्रान्त में खण्डित
जैन मन्दिर और जिन प्रतिमा तथा शिलालेख के रूप में
ैन स्मारक मौजूद हैं। सरकार के पुरातत्व विभाग ने जो
ोज की है उसीसे ही जैनियों का विस्तार व महत्व चमकता
, यद्यपि अभी रुपए में दो आने से कम खोज हुई है। यदि
ज़ारों टीले जो अहिच्छत्र, कौसाम्बी, उड़ीसा आदि में विना
ोदे हुए पड़े हैं, खुदाये जावें तो बहुत कुछ मसाला मिल
कता है।

पुरावत्व विभाग ने बौद्धों के स्मारकों को भी बहुत विस्तार
े साथ प्राप्त किया है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि किसी
मय भारत में बौद्धों का भी बहुत प्रभुत्व रहा था और उन
े मानने वालों की एक बहुत बड़ी संख्या थी, परन्तु आज
खते हैं तो ब्रह्मा देश को छोड़ कर पंजाब, युक्तप्रान्त, बम्बई
ालवा, मध्यप्रदेश, बङ्गाल, विहार, उड़ीसा जहां बौद्धों के
मारक बहुत अधिक हैं अब बौद्ध मत के माननेवाले एक
मुदाय रूप में नहीं दिखलाई पड़ते, न उन की मूर्तियों की
ूजा ही होती है। किन्तु अब भी भारत में जैनी सर्वत्र फैले हुए
१२॥ लाख की संख्या में हैं व जिनके दर्शनीय मन्दिर

जयपुर, इन्दौर, उज्जैन, खण्डवा, सिवनी, जबलपुर, नाग
देहली, आगरा, कानपुर, लखनऊ, बनारस, प्रयाग, आ
भागलपुर, गया, हजारीबाग, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, फीरो
पुर, सहारनपुर, हाथरस, मथुरा, कोटा, झालरापाटन, बड़ौद
अहमदाबाद, सूरत, बम्बई, शोलापुर, कोल्हापुर, बेलगां
मैसूर, बंगलौर, श्रवणबेलगोल, हेलविड़, मूलवद्री, कांच
गिरनार, पालिताना, आबू आदि हजारों स्थानों पर मौजूद
जहां ये जैन लोग नित्य भक्ति करते और धर्म साध
करते हैं।

बौद्धों का भारत में न रहना और जैनियों का बने रहना
इस प्रश्न पर यदि ध्यान से विचार किया जायगा तो विदित
होगा कि दोनोंको हिन्दू धर्मके प्रसिद्ध प्रचारक शंकर, रामानु
चैतन्य आदि का मुकाबला करना पड़ा था, इस मुकाबले
बहुत स्थलों पर बौद्ध मत की हार हुई क्योंकि उनके सिद्धा
में आत्मा को नित्य अविनाशी नहीं माना है, किन्तु क्षणि
माना है और जैनमत की विजय हुई क्योंकि जैन सिद्धान्त ने
आत्मा की सत्ता को नित्य मान कर उस की अवस्थाओं को
मात्र क्षणिक या अनित्य माना है। हिन्दुओंके राज्यकीय बलके
प्रभाव से बहुत से बौद्ध हिन्दुओं में शामिल होगए, कुछ धीरे२
नष्ट होगए। यह राज्यकीय बल जैनियों की तरफ भी बहुत वेग
से प्रयोग किया गया था, परन्तु जैनियों में अहिंसामयी, नीति-
पूर्ण वर्तन, व्यापार कुशलताका इतना प्रभुत्व था कि जनता ने
इनका सम्बन्ध नहीं छोड़ा व इनके सिद्धान्त इतने मनमोह-
नीय थे कि निरपक्ष विद्वान् आदर करते रहे तथा जैनधर्म के
मानने वाले राजा लोग भी १७ वीं शताब्दी तक अपना महत्व

गए रहे। इस कारण जैनी भारतवर्ष में बराबर डटे रहे। फिर भी प्रभावशाली हिन्दू नेताओं के द्वारा लाखों जैनी जैनधर्म छोड़ बैठे जैसे वासवाचार्यने धाड़वाड़ बेलगांवकी तरफ लाखों जैनियों को लिंगायत बना डाला।

हिन्दुओंका इतना विरोधबौद्ध और जैनियों से इस कारण रहा कि ये दोनों ऋग्वेदादि वेदों को नहीं मानते हैं और न ईश्वर को जगत् का कर्ता मानते हैं तथा दोनों हिंसाका निषेध करते हैं। पशुओं की बलि का जो हिन्दू मतके ब्राह्मण यज्ञों के द्वारा करते थे व अब भी देवी देवताओं के सामने करते हैं, जैन और बौद्ध दोनों ही इसका घोर विरोध करते थे तथा जिस ढँग से हिन्दू ब्राह्मणों ने करोड़ों देवी देवताओं की स्थापना कर रक्खी है उसका भी विरोध करते थे। ब्राह्मणों की अवस्था बहुत काल पहिले तो बहुत संतोषरूप सात्विक रही तथा तब उनमें से अनेक जैनधर्म के पालने वाले थे अब भी मैसूर प्रान्त में २००० से अधिक जैन ब्राह्मण हैं। परन्तु पीछे लोभकी मात्रा बढ़ने से उनको जितनी इच्छा पैसे कमाने की हुई उतनी इच्छा धर्मप्रचार की न रही। तब ब्राह्मणों ने जैनियों को नास्तिक प्रसिद्ध करना प्रारम्भ किया और यह श्लोक बना कर प्रचार किया:—

"नपठेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि।
हस्तिनापीड्यमानोपि न गच्छेज्जिनमन्दिरम्॥"

अर्थात्—म्लेच्छ भाषा पढ़ने और जैनधर्म के विरोध में यह शिक्षा फैलाई कि "प्राण भी जाते हों तो भी म्लेच्छों

की भाषा न पढ़ो और हाथी से पीड़ित होने पर भी जैन मन्दिर में (प्राण रक्षार्थ) न जाओ।" इस विरोधी भा के प्रचार का असर अब भी करोड़ों हिन्दुओं में मौजूद है जो अब भी जैन मन्दिरों में पग रखते हुए डरते हैं और जैनियों को नास्तिक मानकर उनको नास्तिक कहते हैं व कहीं कभी २ उनके रथोत्सवादि धर्मकार्यों का बहुत बड़ा विरोध कर देते हैं।

कुछ अँग्रेज लोगों ने जब भारत का इतिहास लिखने प्रारम्भ किया तब उनही ब्राह्मणों से यह जानकर कि बौद्ध और जैन नास्तिक हैं व हिंसा के विरोधी हैं, व वेदको नहीं मानते हैं, दोनों को एक कोटि में रख दिया और इस कारण से कि बौद्धों के साहित्य का बहुत प्रचार था तथा भारत के बाहर बौद्धमत के अनुयायी करोड़ों हैं इस लिये उन्होंने बिना परीक्षा किये लिख दिया कि जैन मत बौद्ध की एक शाखा है। किसी ने लिख दिया कि कि ६०० सन् ई० से चला है जबबौद्ध मत घटने लगा इत्यादिः—

इस पुस्तक के लिखने का मतलब यह है कि जैन धर्म क्या वस्तु है, इसका यथार्थज्ञान मनुष्यसमाज को होजावे और वे समझ जावें कि इसका सम्बन्ध पिता पुत्र के समान न बौद्धमत से है न हिन्दूमत से है, किन्तु यह एक स्वतंत्र प्राचीनधर्म है जिसके सिद्धान्त की नीव ही भिन्न है।

साहित्य प्रचार के इस वर्तमान युग में भी अबतक जैन धर्म का ज्ञान और उसका वास्तविक रहस्य साधारण जनता को न हुआ, इसके निम्नोक्त दो मुख्य कारण हैं:—

(१) वेदानुयायी हिन्दुओंका सैकड़ोंवर्षों या सैकड़ोंपीढ़ियों

से चले आना कि 'जैनधर्म नास्तिकों अर्थात् ईश्वरको न मानने वाले वेदविरोधियों, और घृणितकर्म करने वालोंका एक घृणित मत है; इसमें तथ्य कुछ नहीं है. उनके मन्दिरों में जाना उनके नास्तिकतापूर्ण ग्रन्थों का पढ़ना या उनका उपदेश सुनना और उनकी अश्लील नंगी मूर्तियोंका देखना महापाप है, इत्यादि"।

(२) श्री शंकराचार्य व श्री रामानुजादि के समयमें तथा महमूदग़ज़नवी आदि के आक्रमण कालमें धर्मविरोधियों की द्वेषाग्नि में बहुत कुछ जैनसाहित्य का नष्ट होजाने से जैनियों का अपने अपने साहित्य की रक्षार्थ जैनग्रन्थों को तहखानों में छिपा छिपाकर रखने और उन्हें धूप दिखाने तकमें धर्मशत्रुओं द्वारा उनके नष्ट होजाने का भय मानते रहनेका संस्कार आज तक भी न मिटना जिससे वह द्वेषाग्नि यदि सर्वथा नहीं तो बहुत कुछ बुझजाने और इस अँग्रेजी राज्य में मुद्रालयों द्वारा साहित्य प्रचार के लिये सर्वप्रकार का सुभीता होजाने तथा समयानुकूलता प्राप्त होजाने पर भी इस कहावत के अनुसार कि 'दूधका जला छाछ को भी फूँक फूँक कर पीता है' जैनियों का बहु भाग अबभी अपने पूर्व समय के भय को हृदय से दूर नहीं करता है, वरन् अज्ञानवश अपने धर्मग्रन्थों की वास्तविक निश्चय विनय को केवल दिखावे की उपचार विनय का ग्रास बनाकर अपने बचेखुचे बहु मूल्य ग्रन्थभण्डारों को दीमकोंका भक्ष्य बना रहा है। इसमें जैनों की कुछ तो अदूरदर्शिता, कुछ प्रमाद और कुछ वर्तमान समय की लोकस्थिति की अनभिज्ञता ये तीन मुख्य कारण हैं। इसी से जैन साहित्य का बहु भाग आजतक भी अप्रकाशित पड़ा रहने से और जैनधर्म का रहस्य जानने की अभिलाषा रखनेवालों तक के हाथों में जैन

दार्शनिक ग्रन्थ पहुँचाए जाने का कोई सुभीता न होने से जैन साहित्य का यथेष्ट प्रचार नहीं हो पाता। जैनों के यद्यपि जैन ग्रन्थों में जैनधर्म विद्यमान है तथापि वह इतना विस्तार रूपसे अनेक ग्रन्थों में है कि जब तक भिन्न भिन्न विषय के १०-२० ग्रन्थ न पढ़े जावें तब तक जैन दर्शन का आभास नहीं झलकता, साधारणजनता जो जैनधर्म कोतुच्छ नास्तिक व अनीश्वरवादी समझ रही है, ग्रन्थों को परिश्रम करके पढ़ना सम्भव नहीं है. इसलिये इस छोटीसी पुस्तक में सर्वसाधारण के लाभके लिये जैनदर्शनकी जानने योग्य बहुतसी बातोंको बता दिया गया है और यह आशा की जाती है कि जो इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ जावेंगे उन को स्वयं यह रुचि पैदा हो जायगी कि हम जैन ग्रन्थों को देखें और लाभ उठावें।

कोई समय ऐसा था कि जब भारत में परस्पर भिन्न २ धर्मों में घृणा न थी सब प्रेम से बैठ कर वार्तालाप करते थे व जिसको जो रुचता था वह उस को पालने लगता था। पिता, पुत्र पति पत्नी व भाई २ का धर्म भिन्न २ रहता था. तौभी सामाजिक प्रेम व वर्तन में कोई अन्तर नहीं पड़ता था तब एक धर्मवाले दूसरे धर्म के सम्बन्ध में मिथ्या आरोप नहीं करते थे, जो जिसका मान्यता है उसी को लेकर इस पर सद्भाव से तर्क वितर्क कर के उसका खण्डन या मण्डन करते थे।

वर्तमान में भी प्रायः सत्य खोजका भाव लोगों में बढ़ रहा है और लोग मिथ्या आरोपों से घृणा करने लगे हैं तथा विद्वान् लोग सब ही धर्मों के सिद्धान्तों को सुनना व जानना चाहते हैं, ऐसे समय में जैनियों का कर्तव्य है कि ये अनेक

नवीन ढंग की पुस्तकों से तथा व्याख्यानों से अपने जैन धर्म का सच्चा स्वरूप जनता को बतलायंगे। इसी आशय को लेकर यह पुस्तक संक्षेप में लिखी गई है। उन लोगों के लिये जिनके चित्तमें जैनधर्म से अज्ञान है, हम उनके अज्ञान भावको हटाने के लिये इस भूमिका में थोड़ा सा प्रयास इस लिये करते हैं कि वे भाई भी हमारी भूमिका पढ़कर अज्ञान छोड़ कर जैनधर्म को जानने के उत्सुक होजावें।

जैनी नास्तिक हैं क्योंकि हमारे वेदों को नहीं मानते, यह कहना तो वैसाही है जैसा जैनी या ईसाई या मुसलमान कह सक्ते हैं, कि जो हमारे शास्त्र को न माने वही नास्तिक या काफिर है। जब भिन्न २ मत हैं तब एक मतके धारी दूसरे के मतके शास्त्र को अपनी मान्यता की कोटि में किस तरह रख सक्ते हैं? जैनी नास्तिक हैं क्योंकि वे ईश्वर को नहीं मानते हैं, यह बात विचारणीय है। जैन लोग परमात्मा को या ईश्वर को मानते हैं परन्तु वे किसी एक ईश्वर को कर्ता, व दुःख का फलदाता नहीं मानते जैसा मीमांसक व सांख्य ईश्वर को जगत् का कर्ता नहीं मानते। भगवद्गीता में ही एक स्थल में (अध्याय ५ श्लोक १४, १५) कहा है।

"न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजतिप्रभुः।
न कर्म फल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥
नादत्ते कस्य चित्पापं न कस्य सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

अर्थात्—ईश्वर जगत् के कर्तापने को या कर्मों को नहीं बनाता है और न कर्म फलके संयोग की व्यवस्था ही करता है,

मात्र स्वभाव काम करता है---परमात्मा न किसी को पाप देता है न पुण्य, अज्ञान से ज्ञान ढका है, इसी से जगत् के प्राणी मोही होरहे हैं।

वस यही मान्यता जैनियों की भी है वे कहते हैं कि ये जीव आपही अपने भावों से पाप पुण्य कर्म बांध लेते हैं व आपही उनका फल भोगलेते हैं. जैसे कोई प्राणी आपही मदिरा पीता है आपही उसका बुरा फल भोगता है। परमात्मा इन प्रपंच जालों में नहीं पड़ता-यदि वह जगत् के प्रपंच में बुद्धि लगावे तो नित्य सुखी व तृप्त व कृतार्थ नहीं रह सक्ता है। जैन लोग जगत् को अनादि अनन्त मानते हैं और कहते हैं कि यह जगत् चेतन अचेतन पदार्थों का समुदाय है। जब ये पदार्थ मूलमें सदा से हैं व सदा से रहेंगे तब यह जगत् भी सदा से है व सदा रहेगा-सत् का विनाश नहीं असत् का जन्म नहीं (Nothing is destroyed nothing is created) अर्थात् 'न कुछ नष्ट होता है न वनता है केवल अवस्थाएँ वद-लती हैं, यह जो वैज्ञानिक मत (Scientific view) है वही जैनधों का मत है। परमात्मा या परमपद का धारी परम आत्मा इच्छा रहित, कृत-कृत्य शरीर रहित व करने कराने के विकल्पों से रहित है इससे वह न जगत को वनाता है न विगाड़ता है। जगत् में वहुत से काम तो विना चेतन के निमित्त वने हुये केवल यों ही जड़ निमित्तों के मिलजाने से होते हैं जैसे मेघ वनना, पानी वरसना, आदि। वहुत से कामोंको संसारी अशुद्ध जीव निरंतर किया करते हैं जैसे घोंसला वनाना आदि। शुद्ध प्रभु इन झगड़ों में नहीं पड़ता है।

जैनलोग परमात्मा को मानते हैं, इसी लिये वे पूजा व भक्ति अनेक प्रकारसे करते हैं, उनका जो प्रसिद्ध मंत्र है उसका पहला पदही परमात्मा को नमस्कारवाचक है जैसे 'णमो अरहंताणं'। जैन लोग आत्मा, परमात्मा, पुण्य, पाप यह लोक, परलोक, पुण्य पाप का फल, सुख दुःख, संसार व मोक्ष मानते हैं इसलिये उनको नास्तिक कहना बिलकुल अनुचित है। जैनियों के मन्दिरों में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे कोई हानि हो सके यदि कोई निर्मल दृष्टि से देखेगा तो उसको जैन मन्दिरों में बहुत अधिक शांति और वैराग्य का दृश्य मिलेगा।

आप किसी जैनमन्दिर में चले जाइये वहां वेदी पर उन महानपुरुषों की ध्यानमयी मूर्तियां मिलेंगी जो परमात्मापद पर पहुँचे हैं, जिनको तीर्थंकर कहते हैं। उनके दर्शन से सिवाय शांति और वैराग्य के कोई भाव दर्शक के चित्तमें हो ही नहीं सकता है। भगवद्गीता अ०६ में जिस योगाभ्यास की मूर्तिका वर्णन किया है वैसीही मूर्ति जैनमन्दिरों में होती है:—

लिखा है:——

समंकाय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारि व्रतेस्थितः।
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियत मानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

भावार्थ—शरीर, मस्तक, और गर्दन सीधी रख, निश्चल हो इधर उधर न देखते हुए, स्थिर मनसे नासिका के अग्र-भागके ऊपर अच्छी तरह दृष्टि रख, अन्तःकरण को अतिनिर्मल बना कर निर्भय हो, ब्रह्मचर्यव्रत युक्त रह मनको संयम में कर, मेरे (प्रभु) ऊपर चित्त लगावे, मेरे में लीन होजावे, इस तरह जो योगी सदा निश्चल मन हो अपने आत्माको जोड़ता है वह परम शांतिरूप निर्वाण को-जो मेरे ही में है पाता है।

योगाभ्यास का आदर्श जैन मूर्ति हैं, जिसके दर्शन से 'संसार तुच्छ व मोक्ष श्रेष्ठ है' ऐसा भाव होजाता है, इसकेसिवाय जैन मन्दिर में इधर उधर साधुओं के व उन महान पुरुषों व स्त्रियों के चित्र मिलेंगे जिन्होंने कोई उत्तम कार्य किया था-शास्त्रों की भरी हुई अलमारी मिलेगी, जप करने की मालाएँ मिलेंगी प्रायः धर्मसाधन के ही पदार्थ रहते हैं।

बौद्ध मत का सिद्धांत क्षणिकवाद है अर्थात् सर्व पदार्थ क्षणभङ्गुर है। जैन मतका सिद्धान्त है कि पदार्थ स्वभाव से नित्य हैं परन्तु अवस्थाओं को बदलने की अपेक्षा क्षणभंगुर है। बौद्ध मतके संस्थापक गौतमबुद्ध थे जो जैन मतके चौबी-सवें तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी के समय में हुए थे उस समय ही परस्पर जैन और बौद्धोंमें संवाद हुए व कुछ बोद्धसाधुओं ने जैनियों के पास जाने की भी मनाई की, ऐसा कथन बौद्ध ग्रन्थोंमें है। बौद्ध स्वयं जैनमतको भिन्न मत कहते हैं। जैनगृह-स्थों को कड़ी आज्ञा है कि वे किसी भी तरह मांस का आहार न करें। मांस न खाना उनके चारित्र के आठ मूलगुणों में से एक है जबकि बौद्धों के यहाँ गृहस्थों को माँसाहार के त्याग

की कहीं आज्ञा नहीं है-वे स्वयं मरे हुवे पशु का मांस लेने में दोष नहीं समझते हैं, इसीसे चीन व ब्रह्मा में करोड़ों बौद्ध मांसाहारी हैं जबकि जैन कोई भी प्रगटपने से मांसाहारी न मिलेगा। इसलिये जैनमत बौद्धमत की शाखा है यह कथन ठीक नहीं है और न यह हिन्दूमत की शाखा है, क्योंकि सांख्य, मीमांसादि दर्शनों से इसका दार्शनिक मार्ग भिन्न ही प्रकार का है, जो इस पुस्तक के पढ़ने से विदित होगा।

जैनमत की शिक्षा सीधी और वैराग्यपूर्ण है। हर एक गृहस्थ को छः कर्म नित्य करने का उपदेश है। (१) देवपूजा (२) गुरुभक्ति (३) शास्त्रपढ़ना (४) संयम (Self control or temperance) का अभ्यास (५) तप (सामायिक या संध्या या ध्यान या (meditation) (६) दान (आहार, औषधि, अभय तथा विद्या) तथा उनको इन आठमूल गुणोंके पालने का उपदेश है:—

मद्यमांस मधु त्यागैः सहाणुव्रत पंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहीणां श्रमणोत्तमाः ॥

अर्थात्-मद्य या नशा न पीना, मांस न खाना, मधु यानी शहद न खाना क्योंकि इसमें बहुत से सूक्ष्म जंतुओं का नाश होता है, पांच पापों से बचना अर्थात् जान बूझ कर वृथा पशु पक्षी आदि की हिंसा न करना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, अपनी स्त्री में संतोष रखना, परिग्रह या सम्पत्ति की मर्यादा कर लेना जिससे तृष्णा घटे इनको गृहस्थों के आठ मूल गुण उत्तम आचार्यों ने बतलाया है।

हमारे जैनेतर भाई देख सकते हैं कि यह शिक्षा भी हर एक

मानव को कितनी उपयोगी है। यद्यपि और धर्मों में भी अहिंसा तथा दयाका उपदेश है व मांसाहार का निषेध है, परन्तु उनका आचरण जैनियों के सदृश नहीं है। कारण यही है कि कहीं २ उनके पीछे के टीकाकारों ने इस उपदेश में शिथिलता करदी है। हिन्दू मत में मनुस्मृति के कई श्लोकों में मांसाहार का निषेध है। जैसेः—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥
—श्लोक ४८ अ० ५

अर्थात्—बिना प्राणियों के वध किये मांस नहीं होता, वध करना स्वर्ग का कारण नहीं, इससे मांस न खावे। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि करोड़ों हिन्दू मांस खाते हैं क्योंकि उसी मनुस्मृति में अन्यत्र मांसाहार की पुष्टि भी है। ईसाईयों के यहां नीचे के वाक्यों में मांस खाना निषिद्ध बताया है, तब भी लाखों में दो चार ही मांस के त्यागी हैंः—

Behold I have given you every herb, bearing seed, which is upon the face of all the earth, and every tree in which is the fruit of a tree yielding-seed, to you it shall be meat (Genesis chap. 129)

देखो मैंने तुमको बीज पैदा करने वाली हर एक घास जो पृथ्वी पर दीखती है व बीजवाले फल देने वाले वृक्ष दिये हैं यही तुम्हारे लिये भोजन होगा। और भी कहा है—

St. paul seys "It is good neither to eat flesh

not to drink wine, nor anything whereby thy brother stumbleth or is made weak.

(Romans 14-21)

सेन्टपाल कहते हैं कि-न मांस खाना ठीक है, न शराब पीना ठीक है और न कोई ऐसा काम करना चाहिये जिससे तेरा भाई कष्ट में पड़े या निर्वल हो।

(रोमन्स १४-२१)

मुसलमानों ने भी मांसाहार का निषेध कावेकी पवित्र भूमि के लिये तो अवश्य ही किया है। क्योंकि उनकी पवित्र जगह मक्का में जो कोई जाता है उसे मांस नहीं खाना होता है। जैनियों के आचरण का इतना महत्व है कि सरकारी जेल की रिपोर्टों में औसत दर्जे सब जातियों से कम जैन अपराधी हैं। सन् १८९१ की बम्बई प्रान्त की जेल रिपोर्ट इस तरह है:—

धर्म	कुल आबादी	जेल के कैदी	कितने पीछे एक
हिंदू	१४६५८१७९	९७१४	१५०९ में सें एक
मुसलमान	३५०१९१०	५७९४	६०४ में से एक
ईसाई	१५८७६५	३३३	४७७ में से एक
पारसी	७३९४५	२९	२५४९ में से एक
यहूदी	९६२९	२०	४९ में से एक
जैनी	२४०४३६	३९	६१६५ में से एक

सन् १६२०, १६२२, १६२३ के कैदियों का ब्यौरा नीचे प्रकार है:—

धर्म	१६२०	१६२२	१६२३
हिन्दू	११२५६	६०८२	८१३४
मुसलमान	७२७३	६६२२	७२०५
ईसाई	३६७	२७५	३२०
जैनी	५१	३४	२५

सन् १६२१ का हिसाब इस प्रकार है, जिससे प्रगट होगा कि सन् १६२१ में जैनी १। लाख में एक ही कैदी हुआ है। यह जैन गृहस्थों पर जैनचारित्र की छाप का प्रभाव है।

धर्म	कुल आबादी	जेल के कैदी	कितने पीछे एक
हिन्दू	२१०३७८०८	११३४८	१८५४ में से एक
मुसलमान	४६१५७७३	७१८२	६४२ में से एक
ईसाई	२७६७६५	३४६	७६४ में से एक
जैन	४८१३४२	४	१२०३३३ में से एक

जैनियों के पांच व्रतों में २५ दोष न लगने चाहिये। इस उपदेश को जो मानेगा उसको सरकारी पेनलकोड कानून की कोई भी फौजदारी दफा नहीं लग सकती। कितना सुंदर उपदेश गृहस्थों के लिये है वे २५ दोष नीचे लिखे प्रमाण हैं—

अहिंसाव्रत के पांच—अन्याय से पीटना, बंदी में डालना, अङ्ग छेदना, अधिक बोझा लादना, अन्न पान रोक देना।

सत्यव्रत के पांच—मिथ्या उपदेश देना, किसी गृहस्थ का गुप्त रहस्य कहना, झूठा लेख लिखना, अमानत को झूँठ कह कर लेना, गुप्त सम्मतियों को प्रकट करना,।

अचौर्य व्रत के पांच—चोरी का उपाय बताना, चोरी का माल लेना, राज्यविरुद्ध महसूल चुराना, या नीति विरुद्ध लेन देन करना, कमती बढ़ती तौलना-नापना, झूँठी वस्तु को खरी कह कर बेचना या खरी में झूँठी मिलाकर खरी कहना।

ब्रह्मचर्य व्रत के पांच—अपने कुटुम्ब की संतान के सिवाय दूसरे के विवाह शादी करानेकी चिन्तामें पड़ना, वेश्या के साथ सम्बन्ध रखना, व्यभिचारिणी परकीया स्त्री के साथ राग करना, काम के मुख्य अंग को छोड़ अन्य अङ्गों से काम चेष्टा करना, काम की तीव्र लालसा रखनी।

परिग्रह प्रमाण व्रत के पांच—गृहस्थ जन्मभर के लिये क्षेत्र, मकान, धन, धान्य, सोना, चांदी, दासी, दास, कपड़ा, वर्तन इन १० वस्तुओं का प्रमाण करता है—१० के पांच जोड़ हुए, हर एक जोड़ में एक को बढ़ा कर दूसरेको कम कर लेना यह ही पांच दोष हैं।

जो गृहस्थ इन बातों पर ध्यान रक्खेगा उसका नैतिक चारित्र राजा प्रजा को हितकारी होगा। महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य जैन समाज के नीतिपूर्ण राज्य व आदर्श प्रजा का वर्णन

यूनानी विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में बड़ी प्रशंसा के साथ लिखा है, उन्होंने एक स्थल पर लिखा है:—

"भारत वासियों का व्यवहार बहुत सरल था, यज्ञ को छोड़ कर ये मदिरा कभी नहीं पीते थे, लोगों का व्यय इतना परिमित था कि वे सूदपर ऋण कभी नहीं लेते थे, व्यवहार के वे लोग बहुत सच्चे होते थे, झूँठ से उन लोगों को घृणा थी, आपस में मुकदमें बहुत कम होते थे, विवाह एक जोड़े बैल देकर होता था, सब लोग आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करते थे, शिल्प वाणिज्य की अच्छी उन्नति थी, राजा और प्रजा में विशेष सद्भाव था राजा अपनी प्रजा के हित साधन में सदैव तत्पर रहता था, प्रजा भी अपनी भक्ति से राजा को संतुष्ट किये हुए थी।

(चन्द्रगुप्त मौर्य पृ० ७५। जयशंकर प्रसाद)

इसी विषयका विशेष कथन (Ancient India by Magasthenes) में भी दिया हुआ है-लोग पवित्र वस्तु व जल लेते थे, अनेक धातुओं को जमीनसे निकाल कर वस्तुएं बनाते थे, किसानों को पवित्र समझा जाता था, युद्ध के समय में भी कोई शत्रु उनको कष्ट न देता था, सब कोई अपने ही वर्ण में विवाह करते थे व अपने पुरुषों का व्यवसाय करते थे। विदेशियों की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध था. वे अपने माल को बिना रक्षक छोड़ देते थे यद्यपि सादगी से रहते थे तथापि स्वर्ण और रत्नों के पहनने का बहुत रिवाज था सत्य और धर्म की बड़ा ही प्रतिष्ठा करते थे (Truth and Virtue they held alike in esteem) दाल चावल खानेका अधिक रिवाज था, विद्वानों और तत्वज्ञों को राजद्वार में बड़ी प्रतिष्ठा थी।"

जैनियों को यह उपदेश है कि छान कर पानी पिओ, यह बड़ाही उपयोगी है। इसके द्वारा पानी में जो कीड़े होते हैं उनकी रक्षा होती है और साथ ही अपने शरीर की भी रक्षा होती है अर्थात् जो रोगी कीड़े रोग कर सकते थे, वे उदर में नहीं जा सकते हैं।

जैनधर्म ने स्वतन्त्रता की शिक्षा इस श्लोक में दी है:—

नयत्यात्मानमात्मेव जन्मनिर्वाणमेव वा।
गुरुरस्यात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥ ७ ॥

—(समाधिशतक)

भावार्थ-यह आत्मा आपको ही चाहे संसार में ले जावे व चाहे निर्वाण में लेजावे। इसलिये वास्तव में आत्मा का गुरु आत्मा ही है। इस शिक्षाका भाव यह है कि यह आत्मा अपने ही परिणामों से पाप या पुण्य को बाँधकर आप अपने शुद्ध भावों से पापों का नाश कर व पुण्य को शीघ्र भोगकर मुक्त हो जाता है। जैन लोग जो परमात्मा की भक्ति व पूजा बन्दना करते हैं वह मात्र इसीलिये कि अपने भावों को निर्मल किया जावे न कि इसलिये कि किसी परमात्मा को प्रसन्न किया जावे जैसा कहा है:—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे,
न निन्दया नाथविवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः,
पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥

—(स्वयम्भूस्तोत्र)

भावार्थ—भगवन्! आप वीतराग हैं, आपको हमारी पूजा से कोई सरोकार नहीं, आप वैर रहित हैं, आपको हमारी निन्दा से कोई दुःख नहीं तब भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण हमारे मनको पापके मैलों से पवित्र करता है।

जैन सिद्धान्त कहता है कि अहिंसा ही परमधर्म है और अहिंसा के दो भेद हैं, एक भाव अहिंसा दूसरा द्रव्य अहिंसा राग, द्वेष, मोहादि भावों का न होना भाव अहिंसा है, जैसा कहा है:—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।

तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥ ४४॥

—(पुरुषार्थ सि०)

भावार्थ-निश्चय से राग द्वेषादि भावोंका न होना अहिंसा है व उनका होना ही हिंसा है, यह जैनशास्त्र का सार है। भाव हिंसा होकर अपने या दूसरे के द्रव्य प्राणों (शरीर के अङ्गादिकों) का घात करना सो द्रव्य हिंसा है। इसका पूर्णतया पालन वे साधु ही कर सकते हैं जो वैरागी हैं, जिनके उत्तम क्षमा है, जो समदर्शी हैं, जिनको कष्ट दिये जाने पर भी द्वेष नहीं होता है, वे पृथ्वी देखकर चलते हैं, सब तरह की घास आदि को भी कष्ट नहीं पहुंचाते हैं। गृहस्थी लोग "इस आदेश पर पहुंचाना चाहिये" ऐसा ध्यान में रखकर यथाशक्ति अहिंसा का अभ्यास करते हैं वे अपनी २ पदवी में रहकर उस पदवी के योग्य कार्यों में वाधा न आवे, ऐसा ध्यान में रखकर वर्तन करते हैं। इस भेद को समझने के लिये हिंसा के चार भेद हैं:—

१ संकल्पी--(intentional) जो हिंसा के ही इरादे से की जावे। जो मांसाहार के लिये व धर्म के नाम से व शौक से पशु मारते हैं वे संकल्पी हिंसा करते हैं। जैसे शिकार खेलना, पशु को वलि देना, कसाईखाने में वध करना

२.उद्यमी--जो क्षत्री, वैश्य, शूद्र के असि (राज्य व देशरक्षा) मसि (लिखना) कृषि, वाणिज्य, शिल्प व विद्या कर्म में होती है।

३ आरम्भी-- जो गृहस्थ में मकान बनवाने, खानपानादि के व्यवहार में होती है।

४. विरोधी--किसी विरोधी शत्रु के साथ मुकाबला करते हुए जो हिंसा हो।

इनमें से गृहस्थ जैन को संकल्पी हिंसा छोड़नी आवश्यक है। शेष तीन प्रकार की हिंसा तब तक त्याग नहीं कर सकता जबतक गृहकर्म में लीन है, राज्य करता है, व्यापार करता है, कारीगरी करता है, स्त्री बच्चों व धन की रक्षा करता है, विना न्यायरूप प्रयोजन के व अत्यन्त लाचारी के युद्धादि क्रिया जैन गृहस्थ नहीं करते हैं अर्थात् न्याय व अपने देश धनादि के रक्षार्थ जैन गृहस्थ युद्धादि कर सकते हैं।

इस कथन से पाठकगण समझ सकते हैं कि जैन मत (impractical) ऐसा नहीं है जो पाला न जा सके। इसको सर्व ही नीच ऊँच स्थितिके सर्व मनुष्य पाल सकते हैं।

इस जैनधर्म का साहित्य बहुत विस्ताररूप में है, इसमें

हज़ारों प्राकृत व संस्कृत के ग्रन्थ हैं। जिनमें प्रायः सर्व ही विषय कहे गये हैं। राजनीति, व्याकरण, न्याय, गणित, ज्योतिष, दर्शन, कल्प, अलंकार, मंत्रवाद, कर्मकांड, अध्यात्म आदि अनेक विषयों के बहुत से ग्रन्थ हैं। साधारणतया जैन-धर्म का ज्ञान होने के लिये ग्रन्थों के चार भाग बताए हैं, इन को चार वेद भी कहते हैं।

१. प्रथमानुयोग—इस विभाग में महान् पुरुषों व स्त्रियों के जीवनचरित्र हैं, जिन्होंने आत्मकल्याण किया था, व जो आगे करेंगे। इस कल्प में इस भरतक्षेत्र में ६३ महा-पुरुष हो चुके हैं उनका संक्षिप्त वर्णन हमने प्रथम ही इस पुस्तक में दे दिया है। इनही में श्री ऋषभदेव, श्री अरिष्टनेमी श्रीपार्श्व, श्री महावीर, श्री रामचन्द्र, श्रीकृष्ण आदि गर्भित हैं। विस्तार से जानने के लिये महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंश-पुराण, आदि देखने योग्य हैं।

२. करुणानुयोग—इस विभाग में इस विश्व का नक़शा माप व विभाग वर्णित है। स्वर्ग, नर्क कहां हैं, मध्यलोक कहां है, वहां क्या २ रचना रहा करती है, इसका कुछ वर्णन हमने पुस्तक के अन्त में दे दिया है, यह भूगोल से सम्बन्ध रखता है, जैन शास्त्रों में भूगोल का बहुत बड़ा विस्तार है, जितनी पृथ्वी अभी तक देखी गई है, वह भरत क्षेत्र के भीतर ही आ-जाती है, क्योंकि पश्चिमात्य विद्वानों की खोज बराबर जारी हैं, इससे बहुत सम्भव है कि अधिक पता चल जावे। इस सम्बन्ध का वर्णन देखने के लिये त्रिलोकसार ग्रन्थ, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि पढ़ने योग्य हैं।

३. चरणानुयोग—इसमें यह कथन है कि गृहस्थव

गृहत्यागी साधु को यथा २ धर्माचरण पालना चाहिये। इस का दर्शन इस पुस्तक में आवश्यकतानुसार कराया गया है, विशेष जानने वालों को मूलाचार, रत्नकरण्ड, श्रावकाचार, चारित्रसार पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय आदि ग्रन्थ देखने चाहिये।

४ द्रव्यानुयोग—इसमें सर्व तत्त्वज्ञान है व अध्यात्म कथन है, जैन लोग इस जगत् को छः मूल द्रव्यों का समुदाय मानते हैं, उन्हीं का विवेचन है, वे छः द्रव्य ये हैं [१] जीव (Soul) [२] पुद्गल (matter) [३] धर्मास्तिकाय medium of motion) [४] अधर्मास्तिकाय (medium of rest) [५] आकाश (space) [६] काल (time) जीव और पुद्गल का मेल सो संसार है। इन दोनों का पृथक् होना सो मोक्ष है। पुद्गल कैसे मिलता है व छूटता है। इस कथन को बताने के लिये जैन दर्शन के सात तत्त्व गिनाए हैं--जीव, (soul)अजीव (not soul) पुद्गल का आना (inflow of matter into soul) बंध (पुद्गल का बंधना bondage of matter with soul) संवर (पुद्गलका आते हुए रुकना check of inflow) निर्जरा (पुद्गल का जीव से छूटना shedding off of matter) मोक्ष (स्वतंत्रता total Liberation from matter)

इन सात तत्त्वोंके विवेचन में सर्व जैन सिद्धान्त आजाता है इस पुस्तकमें छः द्रव्य और सात तत्त्वों का जानने योग्य वर्णन किया है। विशेष जानने के लिये द्रव्य संग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, गोम्मट्टसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, परमात्मप्रकाश समाधिशतक, इष्टोपदेश, ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थ देखने योग्य हैं।

जिन पाश्चिमात्य विद्वानों ने थोड़ा भी जैनमत को और मतों से मुकावला करते हुए पढ़ा है, उन्होंने इसके सम्बन्ध में अपने उच्च विचार प्रगट किये हैं। पेरिस (फ्रांस) के बहुत उच्च कोटि के विद्वान डाक्टर ए० गिरिनाट (Dr. A. Guernot) साहब ता० ३ दिसम्बर १६११ के पत्रमें कहते हैं:—

Concerning the antiquity of Jainism comparatively to Budhism, the former is truly more ancient than the latter There is very great ethical value in Jainism for men's improvement Jainism is a very original, independent and systematical doctrine.

भावार्थः—बौद्ध से जैन की प्राचीनता का मुकावला करते हुए कहते हैं कि ठीक है कि जैनमत बौद्ध से वास्तवमें बहुत प्राचीन है। मानवसमाज की उन्नति के लिये जैनमत में सदाचार का बहुत बड़ा मूल्य है। जैन दर्शन बहुत ही असली, स्वतन्त्र और नियमित सिद्धान्त है। जर्मनी के महान विद्वान डाक्टर हर्टल एम० ए० (Johannes Hertel M. A. ph. D.) ता० १७ जून सन् १६०८ के पत्र में कहते हैं"

I would show my countrymen what noble principle and lofty thoughts are in Jain religion and in Jain writings, Jain literature is by far superior to that of Budhists and the more I became acquinted with Jain religion and Jain literature the more I loved them.

भावार्थ-मैं अपने देशवासियों को दिखलाऊँगा कि कैसा

उत्तम तत्त्व और ऊँचे विचार जैनधर्म और जैन लेखकों में हैं। जैन साहित्य बौद्धोंकी अपेक्षा बहुत ही बढ़िया है। मैं जितना २ अधिक जैनधर्म व जैन साहित्य का ज्ञान प्राप्त करता जाता हूं, उतना २ ही मैं उनको अधिक प्यार करता हूं।

वैरिस्टर चम्पतराय हरदोई को जर्मनी के डाक्टर जूलियस Dr. Juillius ph. D. of Germany. अपने पत्र १८ सितम्बर में लिखते हैं:—

It is to be desired that the importance of Jainism should be universally recognised in western scholars.

भावार्थ—इस बात की ज़रूरत है कि जैनधर्म की उपयोगिता पश्चिम के विद्वानों में सर्वथा मान्य की जावे तथा उक्त वैरिष्टर साहब को २२ सितम्बर सन् १९२४ को जर्मनके दूसरे विद्वान् हैनरिच ज़िम्मर (Heinrich Zimmer) साहब लिखते हैं कि:—

It is quite impressive to realise what a peculiar Position Jainism occupies among them (religions) all.

भावार्थ—इस बात का अनुभव करना बिल्कुल चित्त में असर करता है कि सर्वधर्मों में जैनधर्म कैसा विशेष स्थान धारण कर रहा है।

नोट—इस ग्रन्थ के लिखने में नीचे लिखे जैन ग्रन्थों से प्रमाणिकता ली गई है:—

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य (वि० सं० ४९) कृत प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, समयसार द्वादशानुप्रेक्षा।

श्री उमास्वामी कृत (वि० सं०८१) तत्त्वार्थ सूत्र।

श्री समंतभद्राचार्य (द्वि० शताब्दि में) कृत आप्तमीमांसा स्वयम्भूस्तोत्र, रत्नकरंड श्रावकाचार।

श्री वट्टेकर स्वामी कृत (प्राचीन) मूलाचार।

श्री योगेन्द्राचार्यकृत (प्राचीन) योगसार।

श्री पूज्यपाद स्वामीकृत (तृ० श०) सर्वार्थसिद्धि समाधिशतक।

श्री विद्यानन्द स्वामीकृत (८वीं श०) पात्र केशरी स्तोत्र

श्री जिन सेनाचार्यकृत (९ वीं श०) महापुराण।

श्री गुणभद्राचार्यकृत (९ वीं श०) उत्तर पुराण।

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्ती कृत (१०वीं श०) द्रव्य संग्रह गोमटसार. त्रिलोकसार।

श्री अमृतचन्द्र आचार्य कृत (१० वीं श०) पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय तत्त्वार्थसार, शायद पंचाध्यायी।

श्री असंग कवि (१०वीं श०) महावीर चरित्र।

श्री वादिभचन्द्र (९०वीं श०) छत्र चूणामणि।
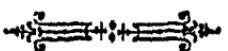
श्री सकल कीर्त्ति (१४वीं श०) धन्यकुमार चरित्र।

श्री हुकुम चन्द्र (१७वीं श०) श्रेणोक चरित्र।

——:o:——

निवेदन

यह पुस्तक भारत दि० जैन परिषद् के प्रस्ताव नं० तीन मुज़फ्फ़रनगर अधिवेशन के अनुसार अपनी तुच्छ शक्ति से संकलन की है। इस पुस्तक को पंडित 'माणिकचन्द' न्यायाचार्यजी ने कृपा करके अच्छी तरह पढ़कर जो अशुद्धियां बताईं, उनको यथा स्थान ठीक कर दिया गया है। इस पुस्तक पर उन्होंने जो अपनी सम्मति दी है वह नीचे लिखी जाती है:-

"मेरी समझ में यह पुस्तक विशेष उपयोगी है, जैनधर्म के सिद्धान्त को वर्तमान पद्धतिसे समझाने में लेखक महोदय ने कसर नहीं रक्खी। उनकी जैनधर्म का प्रसार और सच्चे मार्ग पर लोगों के आने की पवित्र भावना पुस्तक में पद २ पर प्रतीत होती है। ऐसी पुस्तकों के प्रचार से खासा जैन धर्म का ठोस प्रचार होगा। मैं इस पुस्तक का हृदय से अभ्युदय चाहता हूं।

आश्विन कृष्णा १५
सम्वत् १९८२

माणिकचन्द
मोरेना (ग्वालियर)

इसका बहुत सा भाग राय बहादुर जगमन्दर लाल जैनी एम० ए० लॉ मेम्बर इन्दौर व कुछ भाग विद्यावारिधि चम्पतराय जी ने सुना है और पसन्द किया है तथा जो त्रुटियां बताईं उनको ठीक कर दिया गया है। पं० जुगलकिशोर जी को पुस्तक भेजी गई थी, परन्तु आपको रचना पसन्द न आई,

इससे आपने विना शुद्ध किये वापिस करदी तथा न्यायाचार्य पण्डित गणेशप्रसाद जी ने समयाभाव से देखना स्वीकार न किया। हमने अपने हार्दिक भाव से पुस्तक का संकलन जैन सिद्धान्तानुसार किया है, तब भी जहां कहीं भूल हो, विद्वज्जन क्षमाभाव करके सूचित करें। जिससे दूसरे संस्करण में शुद्धि होजावे।

बम्बई
माघ वदी ८
वीर सम्वत् २४५३

जैन समाज का सेवक—
ब्र० शीतलप्रसाद

विषय सूची

सं०	विषय	पृष्ठ

ॐ

* जैनधर्म प्रकाश

दोहा

ऋषभ आदि महावीरलों चौवीसों जिनराय।
विघ्नहरण मंगल करण वंदो मन वच काय। १॥

[१] जैन धर्म का उद्देश्य।

जैनधर्म का उद्देश्य अर्थात् प्रयोजन ‡ संसारी आत्मा के पाप पुण्य रूपी कर्म मैल को धोकर उसको संसार के उत्तम जन्म मरणादि दुःखों से मुक्त कर स्वाधीन परमानंद में पहुंचा देना है। जिससे यह अशुद्ध आत्मा शुद्ध होकर परमात्म पद में सदाकाल के लिए स्थिर होजावे. यह मुख्य उद्देश्य है। और गौण उद्देश्य क्षमा, ब्रह्मचर्य्य, परोपकार, अहिंसा: आदि गुणों के द्वारा सुख प्राप्त करना है।

---

‡ देशयामि समीचीनं धर्मं कर्म निवर्हणम्।
संसार दुःखतः सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे (र०क०श्रा०)

भावार्थ—जो संसार के दुःखों से जीवों को छुड़ाकर उत्तम सुखमें धरे ऐसे कर्म नाशक समीचीन धर्म का उपदेश करता हूं।

[२] यह जगत अनादि अनंत है।

जगत कोई एक विशेष भिन्न पदार्थ नहीं है किन्तु चेतन और अचेतन वस्तुओं का समुदाय है। जैसे वन वृक्षोंके समूह को, भीड़ मनुष्यों के समूह को, सेना हाथी घोड़े रथ पयादों के समूह को कहते हैं वैसेही यह जगत या लोक पदार्थोंके समुदाय का नाम है। यह बात बालगोपाल सब जानते हैं कि जो वस्तु बनती है वह किसी वस्तु से बनती है व जो वस्तु नाश होती है वह किसी अन्यवस्तु के रूपमें परिवर्तित होजाती है। अकस्मात् बिना किसी उपादान कारण के न कोई वस्तु बनती है न कोई नष्ट होकर सर्वथा अभावरूप होजाती है। दूधसे घी, खोया मलाई बनती है; कपड़े को जलाने से राख बनजाती है; और मिट्टी लकड़ी, चूना, पत्थरोंके मिलने से मकान बनजाता है। मकान को तोड़ने से मिट्टी लकड़ी आदि पदार्थ अलग २ हो जाते हैं यह सृष्टि का एक अटल और पक्का नियम है कि सत् का सर्वथा नाश और असत् का उत्पादन कभी नहीं हो सका। अर्थात् जो मूल पदार्थ जड़ या चेतन हैं उनका सर्वथा नाश नहीं होता है, तथा जो मूल पदार्थ नहीं हैं वे कभी पैदा नहीं होसक्ते हैं। सायन्स या विज्ञान भी यही मत रखता है।

किसी वस्तु का नाश नहीं होता है। यह जगत परिवर्तन शील है अर्थात् इसके भीतर जो चेतन और जड़ द्रव्य हैं वे सदा अवस्थाओं को बदलते रहते हैं। अवस्थाएं जन्मतीं और बिगड़तीं हैं; मूल द्रव्य नहीं। इसलिए यह लोक सदा से है व सदा चला जायगा तथा अकृत्रिम भी है क्योंकि जो वस्तु आदि सहित होती है उसी के लिए कर्ता की आवश्यकता है।

अनादि पदार्थ के लिए कर्ता हो नहीं सकता १, यह जगत स्व-भाव १ से सिद्ध है अर्थात् इसके सब पदार्थ अपने स्वभाव से काम करते रहते हैं।

हर एक कार्य के लिए दो मुख्य कारण होते हैं एक उपा-दान दूसरा निमित्त। जो मूल कारण स्वयं कार्यरूप होजाता है उसे उपादान कारण कहते हैं उसके कार्यरूप होने में एक व अनेक जो सहायक होते हैं उनको निमित्त कारण कहते हैं। जैसे पानी से भाफ का बनना इसमें पानी उपादान तथा अग्नि आदि निमित्त कारण हैं। जगत में आग, पानी, हवा, मिट्टी, एक दूसरे को बिना पुरुषार्थ के अपने अपने परिणमनों के अनुसार निमित्त होकर बहुत से कार्यों में बदल जाते हैं पानी बरसना, बहना, मिट्टी का बहजाना, कहीं जमकर पृथ्वी बनना बादलों का बनना, सूर्य का प्रकाशताप फैलना, दिन रात होना, ये सब जड़ पदार्थों का विकाश है और निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध चिन्तवन में नहीं आ सकता, न जाने कौन पदार्थ अपनी परिस्थिति के वश विकाश करता हुआ किस के किस विकास का निमित्त होरहा है ऐसे असंख्य परिणाम प्रतिक्षण हो रहे हैं।

---

१ लोओ अकिट्टिमो खलु अणाइ णिहणो सहाव णिप्पण्णो।
जीवा जीवेहिं भुगोइमणिच्चो तालरुक्ख संठाणो ॥ २२ ॥

—मूलाचार अ-८

अर्थ—यह लोक अकृत्रिम है। अनादि अनन्त है। स्वभाव से ही अपने आप बना बनाया है, जीव अजीव पदार्थों से भरा है, नित्य है, और ताड़ वृक्ष के आकार है। कर्ता नहीं है।

बहुत से कामों में चेतन जीव भी निमित्त होते हैं, जैसे चिड़ियों से घोंसले का बनना, आदमी से मकान बनना, कपड़ा बनना आदि तथा कहीं चेतन कार्यों में भी जड़ पदार्थ निमित्त बन जाता है जैसे अज्ञानी होने में भांग या मद्य आदि।

इस जगत में सदा ही काम होता रहता है। ऐसा नहीं है कि कभी परमाणु रूप से दीर्घ काल तक पड़ा रहे और फिर बने जहां जल और ताप का सम्बन्ध होगा जल शुष्क हो भाफ बनेहीगा। कहीं कभी कोई वस्ती ऊजड़ होजाती है कहीं कभी ऊजड़ क्षेत्र वस्ती होजाती है। सर्व जगत में कभी महा प्रलय नहीं होती। किसी थोड़े से क्षेत्र में पवनादि की तीव्रता से प्रलय की अवस्था कुछ काल के लिए होती फिर कहीं वस्ती जमने लगती। यों सूक्ष्मता से देखा जाय तो सृष्टि और प्रलय सर्वदा होते रहते हैं इस तरह यह जगत अनादि होकर अनन्तकाल तक चला जायगा।

[३] जैनधर्म अनादि अनन्त है

जैनधर्म इस जगत में कहीं न कहीं सदा ही पाया जाता है। यह किसी विशेष काल में शुरू नहीं हुआ है। जम्बूद्वीप‡ के विदेह क्षेत्र में (जिसका अभी वर्तमान भूगोल ज्ञाताओं को पता नहीं लगा है) यह धर्म सदा जारी रहता है। वहाँ से महान् पुरुष सदा ही देह से रहित हो मुक्त होते हैं। इसी कारण उस क्षेत्र को विदेह कहते हैं इस भरतक्षेत्र में भी यह धर्म प्रवाह की अपेक्षा अनादिकाल से है।

---

‡ जम्बूद्वीप व विदेह का वर्णन जगत की रचना में मिलेगा-

यद्यपि किसी काल में कुछ समय के लिए लुप्त हो जाता है तो भी फिर तीर्थंकरों या मोक्ष गामी केवलज्ञानी महान आत्माओं के द्वारा प्रकाश किया जाता है। जब यह धर्म आत्मा के शुद्ध करने का उपाय है तब जैसे आत्मा और अनात्मा अर्थात् चेतन और जड़ से भरा हुआ यह जगत अनादि अनन्त है वैसे ही आत्मा की शुद्धि का उपाय यह धर्म भी अनादि अनन्त है। जगत में धान्य और धान्य की तुष रहित शुद्ध अवस्था चावल तथा धान्य का शुद्ध होने का उपाय तीनों ही अनादि है। इस तरह संसारी आत्मा परमात्मा और परमात्म पद को प्राप्ति के उपाय भी अनादि हैं

[४] ऐतिहासिक दृष्टि से जैन धर्मकी प्राचीनता

जैसा पहिले बताया गया है यह जैन धर्म अनादि काल से चला आरहा है। हम यदि वर्तमान खोजे हुए इतिहासकी ओर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि जहां तक भारत की ऐतिहासिक सामग्री मिलती है वहां तक जैनधर्म पाया जाता है। इस पुस्तक में नमूने के रूप में एक दो प्रमाण दी दिए जाते हैं जिस से पुस्तक बहुत बड़ी न हो जावे।

मेजर जेनरल फर्लांग साहब (Major General J. G. R. Furlong) अपनी पुस्तक (In his short studies of Comparative religions P. P. 243-4) में कहते हैं:—

All upper, Western, North & Central India was, then say, 1500 to 800 B. C. and indeed from unknown times, ruled by Turanians, Con-

veniently called Dravids, and given to tree, serpent and the like worship.........but there also existed throughout Upper India an ancient and highly organised religion, philosophical, ethical and severely ascetical viz Jainism.

भावार्थ-सन् ई० से ८०० से १५०० वर्ष पहले तक तथा वास्तव में अज्ञात समयों से यह कुल भारत तूरानी या द्राविड़ लोगों द्वारा शासित था जो वृक्ष-सर्प आदि को पूजा करते थे किन्तु तबही ऊपरी भारत में एक प्राचीन उत्तम रीति से गँठा हुआ धर्म तत्वज्ञान से पूर्ण सदाचार रूप तथा कठिन तपस्या सहित धर्म अर्थात् जैनधर्म मौजूद था। इस पुस्तक में ग्रंथ-कार ने जैनों के ऐसे भावोंका पता अन्य देशों में प्राप्त भावों में पाया जैसे ग्रीक आदिकों में उसीसे इनका अस्तित्व बहुत पहिले से सिद्ध किया है दुनियां के बहुत से धर्मोपर जैनधर्म का असर पड़ाहै ऐसा बताया है।

एक अजैन विद्वान् लाला कन्नोमल थियोसोफिस्ट पत्र मास दिसंबर १९०४ और जनवरी १९०५ में लिखते हैं "जैन धर्म एक ऐसा प्राचीन मतहै कि जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहास का पता लगाना बहुत ही दुर्लभ बात है"

[५] हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थों में जैनों का संकेत

आजकल के इतिहासकार ऋग्वेद युजुर्वेद आदि को प्राचीन ग्रंथ मानते हैं। उनमें भी जैन तीर्थंकरों को वर्णन है।

जैनियों के २२ वें तीर्थंकर अरिष्ट नेमि का नाम नीचे के मंत्रों में हैं :—

स्वस्ति न इन्द्रों वृद्ध श्रवा स्वस्तिः नः पूषा विश्वः वेदाः स्वस्ति भस्ताक्ष्यों अरिष्ट नेमि स्वस्ति नो वृहस्पतिद-धातु ॥

(ऋग्वेद आष्टक १ अ० ६ वर्ग १६ दयानंद भाष्य मुद्रित)

भावार्थ-महा कीर्तिवान् इन्द्र विश्ववेत्ता पूषा, तार्क्ष्य रूप अरिष्टनेमि व वृहस्पति हमारा कल्याण करें।

"वाजस्य नुप्रसव आव भूवे मा च विश्व भुवनानि सर्वतः स नेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मै स्वाहा ॥"

(यजुर्वेद अध्याय ६ मंत्र २७)

भावार्थ---भावयज्ञ को प्रगट करने वाले ध्यान को इस संसार के सर्व भूत जीवों को सर्व प्रकार से यथार्थ रूप कथन करके जो नेमिनाथ अपने को केवलज्ञानादि आत्मचतुष्टय के स्वामी और सर्वज्ञ प्रगट करते हैं जिनके दया मय उपदेश से जीवों को आत्म स्वरूप की पुष्टिता शीघ्र बढ़ती है उसको आहुति हो।

"अर्हन् विभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्व रूपम् अर्हन्निदं दय से विश्वं भव भुवं नव। ओ जीयो सदल दस्ति ॥ ऋग्वेद आष्टक अ० ७ आठ वर्ग १७

भावार्थ-हे अर्हन् आप वस्तु स्वरूप धर्मरूपी वाणों को उपदेश रूपी धनुष को तथा आत्म चतुष्टय रूप आभूषणों को धारण किए हो। हे अर्हन् आप विश्वरूप प्रकाशक केवलज्ञान को प्राप्त हो। हे अर्हन् आप इस संसार के सब जीवों की रक्षा करते हो। हे कामादि के रुलाने वाले आपके समान कोई बलवान् नहीं है

नोट—इस मन्त्र में अर्हंत की प्रशंसा है जो जैनियों के पांच परमेष्ठी में प्रथम हैं। श्रीनग्न साधु महावीर भगवान का नाम नीचे के मन्त्र में है :—

आतिथ्य रूपं मासरं महावीरस्य नग्नहु। रूप मुपासदा मेतन्ति स्त्रोरात्रीः सुरासता (यजुर्वेद अध्याय ६ मन्त्र १४)

योग वासिष्ठ अ० १५ श्लोक ८ में श्री रामचन्द्र जी कहते हैं :—

नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः ।
शान्ति मास्थातु मिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा ॥

भावार्थ—न मैं राम हूं, न मेरी वांछा पदार्थों में है। मैं तो जिन के समान अपने आत्मा में ही शान्ति स्थापित करना चाहता हूं।

वाल्मीकि रामायण १४ सर्ग बालकाण्ड श्लोक १२ महाराज दशरथ ने श्रमणों को भोज दिया। श्रमण दि० जैन मुनि को कहते हैं "श्रमणा श्चैव भुञ्जते"

(श्रमणाःदिगम्बराः भूषण टीका)

महा भारत वन पर्व अ० १८३ प्र० २७ (छपी १९०७ सरत चन्द्र सोम)

महात्मा मुनि अरिष्ट नेमि हैहय वंशी काश्यप गोत्री सब ने महाव्रत धारी अरिष्ट नेमि मुनि को प्रणाम किया"

नोट—यहां २२ वें तीर्थंकर का संकेत है जिन का नाम ऊपर वेद के मंत्रों में आया है। मार्कंडेय पुराण अ० ५३ में रिषभ देव ने भरत पुत्र को राज दे वन में जाकर महा सन्यास ले लिया।

नोट—यहां जैनियों के प्रथम तीर्थंकर का वर्णन है। भागवत के स्कंध ५ अ० २ पृ० ३६६-७ में जैनियों के प्रथम तीर्थंकर पूज्य

श्री ऋषभ देव को महर्षि लिख कर उन के उपदेश की बहुत प्रशंसा लिखी है। भागवत के टीकाकार लाला शालिग्राम जी पृष्ठ ३७२ में कि शुकदेवजी ने ऋषभ देव को क्यों नमस्कार किया लिखने हैं—"ऋषभदेव जी ने जगत को मोक्ष मार्ग दिखाया और अपने आप भी मोक्ष होने के कर्म किए इसलिए शुकदेव जी ने नमस्कार किया।"

[६] जैनधर्म हिन्दू धर्म की शाखा नहीं है।

जैन धर्म हिन्दू धर्म की शाखा नहीं हो सकता है। क्योंकि जो जिसकी शाखा होता है उसका मूल एक ही होता है। जो हिन्दू कर्त्ता वादी हैं उन से विरुद्ध जैनमत कहता है कि जगत अनादि अकृत्रिम है, ईश्वर कर्ता नहीं है। जो हिन्दू एक ही ब्रह्ममय जगत मानते हैं उन से विरुद्ध जैनमत कहता है कि लोक में अनन्त परब्रह्म परमात्मा, अनन्त संसारी आत्मा, पुद्गल आदि जड़ पदार्थ ये सब भिन्न हैं। कोई किसी का खंड नहीं। जो हिन्दू आत्मा या पुरुष को कूटस्थ नित्य या अपरिणामी मानते हैं उनसे विरुद्ध जैनधर्म कहता है कि आत्मायें स्वभाव न त्यागते हुए भी परिणमन शील हैं तब ही राग द्वेष भावों को छोड़ वीतराग हो सकती हैं। जैन लोग उन ऋग्वेदादि वेदों को नहीं मानते जिन को हिन्दू लोग अपना धर्म शास्त्र मानते हैं। प्रोफ़ैसर जैकोबी ने आक्सफोर्ड में जैन धर्म को हिन्दू धर्मों से मुकाबला करते हुए कहा है—"जैनधर्म सर्वथा स्वतंत्र है। मेरा विश्वास है कि यह किसी का अनुकरण रूप नहीं है और इसीलिए प्राचीन भारतवर्ष के तत्व ज्ञान और धर्म पद्धति के अध्ययन करने वालों के लिए यह एक महत्व की वस्तु है (देखो पृष्ठ १४१ गुजराती जैन दर्शन प्रकाशक अधिपति "जैन" भाव नगर)।

[७] जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा नहीं है

बौद्ध धर्म पदार्थ को नित्य नहीं मानता है; आत्मा को क्षणिक मानता है जब कि जैनधर्म आत्मा को द्रव्य की अपेक्षा नित्य किन्तु अवस्था की अपेक्षा अनित्य मानता है। जैनधर्म में जो छः द्रव्य हैं उनकी बौद्धों के यहां मान्यता नहीं है। इस के विरुद्ध बौद्ध जैन धर्म की नकल ज़रूर है। पहले गौतम बुद्ध जैन मुनि पिहिताश्रव का शिष्य स्वयं साधु हुआ। फिर स्वयं मृतक प्राणी में जीव नहीं होता ऐसी शंका होने पर अपना भिन्न मत स्थापन किया।

(देखो जैन दर्शन सार, देवनन्दि कृत)

प्रोफ़ैसर जैकोबी भी कहते हैं:-

"The Budhist frequently refer to the Nirgranthas or Jains as a rival sect, but they never, so much as hint this sect was a newly founded one. On the countrary, from the way in which they speak of it, it would seem that this sect of Niganthas was at Budhas time already one of long standing, or in other words, it seems probable that Jainism is considerably older than Budhism.

(देखो पृष्ठ ४२ गुजराती जैन दर्शन)

भावार्थ—बौद्धों ने बार बार निर्ग्रन्थ या जैनियोंको अपना मुक़ाबिला करने वाला कहा है परन्तु वे कोई स्थल पर कभी भी यह नहीं कहते कि यह एक नया स्थापित मत है। इसके विरुद्ध जिस तरह वे वर्णन करते हैं उससे प्रकट होगा कि निर्ग्रंथोंका धर्म बुद्धके समय में दीर्घ काल से मौजूद था अर्थात् यही संभव है कि जैनधर्म बौद्ध धर्म से बहुत अधिक पुराना है, जैकोबीने आश्रव शब्द को बौद्ध ग्रंथों में पाप के अर्थमें देख

कर तथा जैनग्रंथों में जिससे कर्म आते हैं व जो कर्म आत्मा में आता है ऐसे असली अर्थ में देखकर यह निश्चय किया है कि जहां आश्रव के मूल अर्थ हैं वही धर्म प्राचीन है।

Dr. Ry Davids डा० राइ डेविड्स ने (Budhist India P. 143) में लिखा है—

"The Jains have remained as an organised Community all through the history of India from before the rise of Budhism down to day"

जैनलोग भारत के इतिहास में बौद्ध धर्मके बहुत पहिलेसे अब तक एक संगठित जाति रूपमें चले आरहे हैं।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक केशरी पत्रमें १३ दिसम्बर १६०४ में लिखते हैं कि बौद्ध धर्मकी स्थापना के पूर्व जैनधर्म का प्रकाश फैल रहा था बौद्ध धर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है।

हंटर साहिब अपनी पुस्तक इंडियन इम्पायर के पृष्ठ २०६ पर लिखते हैं, :—

-जैनमत बौद्ध मत से पहिलेका है ओल्डन वर्ग ने पाली पुस्तकों को देखकर यह बात कही है कि जैन और निग्रंथ एक हैं। इनके रहते हुए बादमें बौद्धमत उत्पन्न हुआ।

जैनधर्म इतना ही बौद्धमत से भिन्न है जितना कि हम किसी और मत से भिन्न कह सक्ते हैं :—

[८] बौद्धों के ग्रंथोंमें जैनोंका संकेत

"ऐतिहासिकखोज़" नामकी पुस्तक में, जिसको बाबू विमल चरण ला एम. ए. बी. एल. नं० २४ सुकिया स्ट्रीट कलकत्ता ने सन् १६२२ में सम्पादन कर प्रकाशित कराया है, इस सम्बन्ध

में बहुत से प्रमाण लिखे हैं कुछ यहां दिये जाते हैं :—

(१) गोत्तमबुद्ध राजग्रहो में निग्र्ंथ नात पुत्र (अर्थात् श्री महावीर) के शिष्य चूलस्तकुल दादी से मिले थे।

(मज्झमनिकाय अ० २)

(२) श्री महावीर गौतम बुद्ध से प्रथम निर्वाण हुए।

(मज्झम निकाय साम् गामसुत व दिग्घनिकाय पातिक सुत्त)

(३) बुद्धने अचेलको (नग्न दिगम्बर साधुओं) का वर्णन लिखा है।

(दिग्घनिकाय का कस्सय सिंह नादे)

(४) निग्र्ंथ श्रावकों का देवता निग्र्ंथ है "निगंथ सावका नाम् निगन्थो देवताः"

(पाली त्रिवितक निद्देश पत्र १७३-४)

(५) महावीर स्वामी ने कहा है कि शीत जलमें जीव होते हैं "सो किइ शीतादके सत संज्ञा होंति"

(सुमंगल विलासिनी पत्र १६८)

(६) राजग्रही में एक दफे बुद्ध ने महानम को कहा कि इसिगिलो (ऋषिगिरि स०) के तट पर कुछ निग्र्ंथ भूमि पर लेटे हुए तप कर रहे थे। तब मैंने उनसे पूछा क्यों ऐसा करते हो। उन्होंने जवाब दिया कि उनके नाथ पुत्र ने जो सर्वज्ञ व सर्व दर्शी हैं उनसे कहा है कि पूर्व जन्म में उन्होंने बहुत पाप किए हैं, उन्हों के क्षय करने के लिए वे मन वचन काय का निरोध कर रहे हैं।

(मज्झमनिकाय जिल्द १ पत्र ९२-९३),

(७) लिच्छवों का सेनापति सीह निग्र्ंथ नात पुत्र का शिष्य था। (विनय पितक का महावग्ग)

(८) निग्रंथ मतधारी राजा के खजांची के वंश में भद्रा को, श्रावस्ती के मंत्री के वंश में अर्जुन को, बिम्बसार के पुत्र अभय को, श्रावस्ती के सर्भा गुप्त और गरहदिन्न को बुद्धने बौद्ध बनाया (धम्मपाल कृत. प्रमथ दीपिनी व धम्म पदत्थ कथा जि--१)

(९) धनंजय सेठी की पुत्री विशाखा निग्रंथ मिगार सेठी के पुत्र पुराण वर्द्धक को विवाही गई थी। श्रावस्ती में मिगार श्रेष्ठीने ५०० नग्न साधुओं को आहार दान दिया (विसाखा-वत्थु धम्मद कथा जि--१)

[६] जैनौं की मूल मान्यताएं

(१) यह लोक अनादि अनन्त अकृत्रिम है चेतन अचेतन छ द्रव्यों से भरा है। अनन्तानन्त जीव भिन्न २ हैं। अनंतानंत परमाणु जड़ हैं।

(२) लोक के सर्वही द्रव्य स्वभाव से नित्य हैं परन्तु अवस्था को बदलने की अपेक्षा अनित्य हैं।

(३) संसारी जीव प्रवाह की अपेक्षा अनादि से जड़ पाप पुण्य मई कर्मों के शरीर से संयोग पाये हुए अशुद्ध हैं।

(४) हर एक संसारी जीव स्वतंत्रता से अपने अशुद्ध भावों द्वारा कर्म बांधता है और वही अपने शुद्धभावों से कर्मों का नाश कर मुक्त हो सकता है।

(५) जैसे स्थूल शरीर में लिया हुआ भोजन पान स्वयं रस रुधिर वीर्य बन कर अपने फल को दिया करता है ऐसे पाप पुण्य मई सूक्ष्म शरीर में पाप पुण्य स्वयं फल प्रगट कर के आत्मा में क्रोधादि व दुःख सुख झलकाया करता है। कोई परमात्मा किसी को दुःख सुख देता नहीं ।

(६) मुक्तजीव या परमात्मा अनन्त है। उन सब की सत्ता भिन्न २ है। कोई किसी में मिलता नहीं। सब ही नित्य स्वात्मानन्द का भोग किया करते हैं। तथा फिर कभी संसार अवस्था में आते नहीं ।

(७) साधक गृहस्थ या साधु जन मुक्तप्राप्त परमात्माओं की भक्ति व आराधना अपने परिणामों की शुद्धि के लिए करते हैं उन को प्रसन्न कर उन से फल पाने के लिए नहीं।

(८) मुक्ति का साक्षात साधन अपने ही आत्मा को परमात्मा के समान शुद्ध गुण वाला जान कर श्रद्धान कर उसी का राग द्वेष मोह त्याग ध्यान करता है। राग द्वेष मोह से कर्म बंधते हैं। तब वीतराग भावमयी आत्म-समाधि से कर्म झड़ जाते हैं।

(९) अहिंसा परम धर्म है। साधु इसको पूर्णता से पालते हैं। गृहस्थ यथाशक्ति अपने २ पद के अनुसार पालते हैं। धर्म के नाम पर, मांसाहार शिकार शौक आदि व्यर्थ कार्यों के लिये पशुओं की हत्या नहीं करते हैं।

(१०) भोजन शुद्ध ताज़ा, मांस, मदिरा, मधु रहित व पानी छना हुआ लेना उचित समझते हैं।

(११) क्रोध, मान, माया लोभ यह चार आत्मा के शत्रु हैं; इस से इनका संहार करना चाहिए।

(१२) साधु के नित्य छः कर्म हैं—सामायिक या ध्यान, प्रतिक्रमण (पिछले दोषों की निन्दा), प्रत्याख्यान (आगामी के लिए दोष त्याग की भावना), स्तुति, वन्दना, कायोत्सर्ग (शरीर की ममता त्यागना)।

(१३) गृहस्थों के नित्य छः कर्म हैं—देव पूजा, गुरुभक्ति शास्त्र पठन, संयम, तप और दान ।

(१४) साधु नग्न होते हैं, वे परिग्रह व आरंभ नही रखते, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, परिग्रह त्याग इन पाच महाव्रतों को पूर्ण पालते हैं।

(१५) गृहस्थों के आठ मूलगुण ये हैं-मदिरा, मांस, मधु का त्याग, तथा एक देश यथाशक्ति अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य व परिग्रह प्रमाण, इन पांच अणुव्रतों का पालना।

[६] वेदान्तादि अजैन मतों की मान्यताएँ उनका जैनियों की मान्यताओं से अन्तर

(१) वेदान्त मत-इसमत का सिद्धांत है कि यह दृश्य जगत व दर्शक दोनों एक हैं। ब्रह्मरूप जगत है ब्रह्म ही से पैदा हुआ ब्रह्म ही में लयहोजायेगा। (देखो वेदान्त दर्पण व्यास कृत भाषा प्रभुदयाल छपावेंकटेश्वर सं० १९५६) ब्रह्म का लक्षण यह है "जन्माद्यस्य मत इति" (सूत्र २ अ० २)

भावार्थ-जन्म स्थिति नाश उससे होता है।

"नित्यस्सर्वज्ञस्सर्वगतो नित्रतृप्त शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभावो विज्ञानमानन्द ब्रह्म (पृ० ३०) भावार्थ ब्रह्म नित्य है, सर्वज्ञ है, सर्व व्यापी है, सदा तृप्त है, शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है। विज्ञान मयी है, आनन्द मई है।

"आकाशस्तल्लिंगात्" (सूत्र २२ अ० १) भावार्थ आकाश ब्रह्म है-ब्रह्म का चिन्ह होने से।

"द्युभ्वाद्यायतनं तस्वशद्धात्" (१ पाद ३) भावार्थ पृथ्वी जिसके आदि में है ऐसे जगत का आयतन है आत्म वाचक शब्द होने से।

"कार्यौ याधिरयं जीवः कारणोयाधिरीश्वरः" (वेदान्त परिभाषा परि०७) भावार्थ यह जीव कार्यरूप उपाधि है, कारणरूप उपाधि ईश्वर है।

जैन सिद्धान्त मुक्तात्मा को परब्रह्म जगत का अकर्ता व संसार से भिन्न मानता है। जीवों की सत्ता भिन्न अनंत स्वतंत्र व परमाणु आदि अचेतन की सत्ता भिन्न मानता है। अद्वैत रूप एक ब्रह्म मानने में यह दोष देता है।

"कर्मद्वैतं फल द्वैतं लोक द्वैतं च नो भवेत्।
विद्या विद्या द्वयं न स्यात् बंध मोक्ष द्वयं तथा॥ (२१)
(आप्तमीमांसा)

भावार्थ-यदि ब्रह्म व तृप्त है तव उससे कोई कार्य नहीं हो सक्ता। यदि कार्य हो तो विरोधी पदार्थ नहीं वन सक्ते। अर्थात् शुभ, अशुभ कर्म, सुख दुःखरूप फल, यह लोक परलोक, विद्या अविद्या, बंध व मोक्ष कुछ नहीं हो सक्ते। आनन्दमई होनेसे उसमें मैं अनेक रूप हो जाऊँ यह भाव नहीं हो सक्ता। दो वस्तु होने से परस्पर बंध व उनका छूटना मुक्त होना वन सक्ता है। एक ही शुद्ध पदार्थ में असंभव है।

(२) सांख्य दर्शन और (३) पातांज़लि दर्शन इसके दो भेद हैं एक वे जो ईश्वर की सत्ता नहीं मानते हैं। आत्माको निर्लेप अकर्ता व जड़ प्रकृति को ही कर्ता मानते हैं। अहंकार, शान्ति, बुद्धि आदि आत्मीक भावों को भी सत्त्व रज तम तीन प्रकृति के विकार मानते हैं। परन्तु फल भोक्ता आत्मा को मानते हैं। (देखो सांख्य दर्शन कपिल छपा सं० १६५७)

अकर्तु रपि फलोपभोगो अन्नादि वत्। १०५ अ० १

भावार्थ-अकर्ता पुरुष है, तौभी फलभोगता है जैसे किसान अन्न पैदा करता है राजा भोगता है।

"अहंकारः कर्त्ता न पुरुषः" (५४ अ० ६)

अहंकार जो प्रकृति विकार है वह कर्ता है आत्मा कर्ता नहीं है।

"नानन्दाभि व्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मत्वात्" (७४ अ० ५)

भावार्थ-आत्मा में आनन्द धर्म नहीं है, इस से आनन्द की प्रगटता मोक्ष नहीं है।

जो ईश्वर को भी मानते हैं ऐसे पातञ्जलि मान्य सांख्य वे ईश्वर को ऐसा कहते हैं-

"परमेश्वरः क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषः स्वेच्छया निर्माणकाय मधिष्ठाय लौकिक वैदिक सम्प्रदाय प्रवर्तकः संसारांगारेतप्य मानानां प्राणभृतामनुग्राहकश्च" (सर्वदर्शन संग्रह पृ० २५५)

भावार्थ-परमेश्वर क्लेश, कर्म, विपाक, आशयसे स्पृष्ट नहीं होता। वह स्वेच्छा क्रम से निर्माण शरीर में अधिष्ठान कर के लौकिक और वैदिक सम्प्रदायकीवर्तना करताहै एवं संसार रूप अंगार में तप्यमान प्राणी गण के प्रति अनुग्रह वितरण करता है।

दोनों ही आत्मा को अपरिणामी मानते हैं-

"पुरुषस्यापरिणामित्वात्" (१८ पाद ४ योगदर्शन पातंजलि १९०७ में छपा)।

जैन सिद्धान्त कहता है कि यदि आत्मा अपरिणामी अर्थात् कूटस्थनित्य हो व कर्ता न हो तो उस के संसार व मोक्ष नहीं हो सकता तथा जो करेगा वही भोगेगा। किसान खेती कर के उस का फल कुटुम्बपालन भोगता है। राजा किसानों

की रक्षा करके उसका फल पाता है तथा जड़ पदार्थमें शान्ति व क्रोधादि भाव नहीं हो सकते। ये सब चेतन के ही भाव हैं व जो शुद्ध ईश्वर आशय रहित है उस में शरीर धार कर कृपा करने का भाव नहीं हो सकता है। कहा है—

नित्य त्वैकान्त पक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्वप्रमाणं क्वतत्फलम् ॥ ३७ ॥

(आप्तमीमांसा)

भावार्थ-यदि सर्वथा नित्य माना जायगा तो उस में विकार नहीं हो सकते तब कर्ता पना आदि कारक न होंगे न उस में यथार्थ ज्ञान होगा न उस का फल होगा कि यह त्यागो यह ग्रहण करो। जैन दर्शन ईश्वर को सदा आनन्द मई और पर का अकर्ता मानता है। जीव ही स्वयं पाप पुण्य बांधते व स्वयं ही मुक्त होते हैं, किसी ईश्वर की कृपा से नहीं।

(४) नैयायिकदर्शन और (५) वैशेषिकदर्शन ये दोनों प्रायः एकसे हैं। दोनों ईश्वर को कर्मोंका फलदाता मानते हैं।

"ईश्वरः कारणं पुरुष कर्मा फल्य दर्शनात् ॥ १९ ॥

(न्यायदर्शन पृ० ४१७ सं १९४९ में छपा)

भावार्थ-पुरुषों के कर्मों का अफल होना देखने व जानने से ईश्वर कारण है। ईश्वर केआधीन कर्म का फल है।

"अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुख दुःखयोः।
ईश्वरः प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गंवा श्वभ्रमेव वा ॥ ६ ॥

मुक्तात्मानां विद्येश्व रादीनाञ्च यद्यपि शिवत्वमस्तितथापि परमेश्वर पारतंत्र्यात्स्वातंत्र्यनास्ति (पृ०१३४-१३५ सर्व-दर्शन संग्रह)।

भावार्थ-यह जन्तु अज्ञानी है। इनका सुख दुःख स्वाधीनता रहित है। ईश्वर की प्रेरणा से स्वर्ग या नर्क में जाते हैं। मुक्ति प्राप्त जीव न विद्या के ईश्वर शिवरूप हैं तथापि परमेश्वर के वश हैं वे स्वतंत्र नहीं हैं।

अनच्छिन्न सद्भावं वस्तु यद्देशकालतः।
तन्नित्यं विभुचेच्छन्तीत्यात्मनो विभु नित्यतेति ॥
(१६ सर्व दर्शन संग्रह पृ० १३६)

भावार्थ-किसी देश व कालमें आत्मा निरोधरूप नहीं है। आत्मा व्यापक है और नित्य है।

"विभवान महानाकाशस्तथाचात्मा" २२ अ० ८ (वैशेषिकदर्शन पृ० २४७ छपा १६४६)।

भावार्थ-यह आकाश महानविभु है वैसा ही यह आत्मा है।

जैन दर्शन कहता है कि यदि संसारी जीवों को कर्म का फल देना ईश्वर के आधीन है तो उसको कुमार्ग गमन से रोकना भी उसके आधीन होना चाहिये यह सर्वज्ञ, सर्व व्यापी दयालु है व सर्वशक्तिमान है उसे अपनी प्रजा को कुपथ से बलात्कार रोक देना चाहिये जैसे देश का राजा शक्तिके अनुसार ज्ञान होने पर दुष्टों का निग्रह करता है परन्तु जगत में ऐसा नहीं देखा जाता इससे उसकी प्रेरणा कर्म के फल में आवश्यक नहीं है।

आत्मा यदि सर्वथा नित्य हो तो उसमें विकार नहीं हो सकते। विकार बिना रागद्वेष नहीं हो सकते न रागद्वेष से छूटकर मुक्त हो सकता है। सर्व व्यापक आत्मा हो तो स्पर्श का ज्ञान सर्वस्थानों का एक काल में होना चाहिये सो होता नहीं किन्तु शरीर मात्र के स्पर्श का ज्ञान एक काल में होता है इससे आत्मा शरीर प्रमाण है। यदि आत्मा मुक्त होगया

तो फिर उसका ईश्वर के परतंत्र होना संभव नहीं है, मुक्त का अर्थ स्वाधीन है।

(६) मीमांसक दर्शन-यह दर्शन भी ईश्वर की सत्ता नहीं मानता है। यह शब्द को तथा वेदों को अनादि अपौरुषेय मानता है। यज्ञादि कर्म को ही धर्म मानता है।

"वेदस्य अपौरुषेयतया निरस्त समस्त शंका कलंकांकुरत्वेन स्वतः सिद्ध" (सर्वदर्शनसंग्रह पृ० २१८)।

भावार्थ-सर्व शंकारूपी कलंक के अँकुर नाश होने पर वेद बिना किसी का किया हुवा सिद्ध है।

जैन दर्शन कहता है कि जो शब्द होठ तालु आदि से बोले जाते हैं उनका कोई रचने वाला पुरुष ही होना चाहिये। बिना रचना के उनका व्यवहार नहीं हो सकता। वे लिखने पढ़ने में आते हैं ज्ञान को प्रवाहरूप अनादि कह सकते हैं किन्तु प्रगटता किसी पुरुष विशेष से होती है ऐसा मानना चाहिये। शब्द नित्य नहीं हो सकता क्योंकि वह दो जड़ पदार्थों के सम्बन्ध से भाषा वर्गणानाम जड़ पुद्गल की एक अवस्था विशेष है। अवस्था सब क्षणिक हैं। जिन पुद्गलों से शब्द बना वे मूल में नित्य हैं। अहिंसारूप यज्ञ पूजा आदि स्वर्ग के कारण हो सकते हैं पशु हिंसा रूप नहीं; परन्तु मुक्ति का कारण तो एक शुद्ध आत्मसमाधि है वहां क्रियाकाण्ड की कल्पना ही नहीं रहती है।

(७) बौद्ध दर्शन-बौद्ध भी जगतकर्ता ईश्वर नहीं मानता, तथा किसी पदार्थ को नित्य न मानकर सबको क्षणिक मानता है।

"यत् सत् तत् क्षणिकं" (सर्वदर्शन संग्रह पृ० २० छपा सं० १९६२)।

भा०-जो जो सत् पदार्थ हैं सब क्षणभंगुर हैं। जैनदर्शन कहता है कि सर्वथा क्षणिक माननेसे एक आत्मा अपने किये पुण्यपाप फलका भोक्ता न रहेगा न वह मोक्ष अवस्थामें बना रहेगा। पर्याय पलटने की अपेक्षा क्षणिक मान सकते हैं किन्तु वस्तु का मूल स्वभाव नहीं जाता इससे उसे नित्य भी मानना चाहिये।

(८) थियोसोफी-एक मत है जो अपने को हिन्दूमत सरीखा कहता है। वह कहता है कि जड़ से उन्नति करते २ मनुष्य होता है। चेतन व जड़ दो मूल पदार्थ भिन्न भिन्न नहीं हैं तथा मनुष्य मरकर कभी पशु नहीं होगा। हर एक प्राणी उन्नति ही करता है।

देखो—First principles of Theosophy by C. Jinrajdass M. A. 1921 Adyar-Madras. इस पुस्तक में लिखा है—

The great Nebula-It is a chaotic mass of matter in an intensely heated condition millions and millions of miles in diameter. It is a Vague cloudy mass full of energy. It revolves into another nebula then solar system. Then hydrozen, iron & others will be there. They will enter into certain combinations & then will come the first appearance of life. We shall have a protoplasm, Ist form of life, then it takes form

of vegetable, then animals & soon lastly man.

A soul once become human cannot reincarnate in animal or vegetable forms (P. 42.)

भावार्थ-एक वहुत वड़ा गड़वड़ मय जड़ (पुद्गल) का पिण्ड है जो बहुत ही उष्ण है व करोड़ों मील का उस का व्यास है। यह एक मेघ समूह सदृश शक्तियों का समूह है यह घूमते २ दूसरा समूह होकर फिर सूर्य का परिकर हो जाता है फिर उसी से हैड्रोज़न वायु, लोहा व दूसरे पदार्थ हो जाते हैं फिर कुछ मिलाप होते होते प्रथमं जीवन शक्ति प्रकट होती है इस को प्रोटोप्लैज़्म कहते हैं। इसी से वनस्पती काय बनती है फिर उन्नति करते करते वही पशु फिर यही मनुष्य हो जाता है

आत्मा मनुष्य की दशा से पशु वा वनस्पती की अवस्था में कभी नहीं गिरता है।

इस पर जैन दर्शन कहता है कि जड़ से चेतन शक्ति नहीं पैदा हो सकती है क्योंकि उपादान कारण के समान कार्य होता है। आत्मा स्वतन्त्र नित्य पदार्थ है तथा जब मनुष्य अधिक पाप करे तब क्यों न वह पशु हो जावे। जगत में हर एक आत्मा अपने भावों के अनुसार उन्नति वा अवनति दोनों करता रहता है।

(९) आर्य समाजी—यह भी ईश्वर को फलदाता व कर्ता मानते हैं। मुक्ति होने पर भी जीव अल्पज्ञ रहता है वह फिर संसार में आता है। जीव परमात्मा के सदृश है ऐसा नहीं मानते हैं। (देखो सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ९)।

"मुक्ति में जीव विद्यमान रहता है जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्त जीव विना रुकावट के विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतन्त्र विचरता है" (२५२ पत्र)

"जीव मुक्ति पाकर पुनः संसार में आता है" (२५८ पृष्ठ)

"परमात्मा हमें मुक्ति में आनन्द भुगा कर फिर पृथ्वी पर माता पिता के दर्शन कराता है" (२५५ पृ०)

"महाकल्प के पीछे फिर संसार में आते हैं, जीव की सामर्थ्य परिमित है, जीव अनन्त सुख नहीं भोग सकते" (२५६ पृष्ठ) जीव अल्पज्ञ है (पृ० २६२)

"परमेश्वर के आधार से मुक्ति के आनन्द को जीवात्मा भोगता है। मुक्ति में आत्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उस को सर्व सन्निहित पदार्थों का ज्ञान यथावत् होता है" (पृ० २६७)

जैन दर्शन कहता है कि ऊपर के कथनों में परस्पर विरोध है। एक स्थान में आत्मा को परिमित ज्ञानी व दूसरे स्थान में पूर्ण ज्ञानी व निर्मल कहा है। आत्मा स्वभाव से परमात्मा के तुल्य है, कर्मबंध के कारण कमी है। उस कमी के जाते ही वह परमात्मा के समान स्वतंत्र हो जायगा। परमात्मा विना किसी दोष के मुक्त जीव को क्यों कभी संसार में भेजता है यदि भेजता है तो जीव कर्मबंध सहित रहेगा, मुक्त नहीं कहा जा सकेगा। परमात्मा निर्विकार है उसमें संसार प्रपंच करने का विकार नहीं हो सकता है।

(१०) पारसी या जरथोश्ती धर्म--इस मतकी मान्यता हिन्दुओं के उस मत से मिलती है जो मात्र एक ईश्वर को

ही अनादि अकृत्रिम मानते हैं व उस से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं। यह मत जड़ और चेतन दोनों को मानता है पर उन की उत्पत्ति एक ईश्वर से मानता है। जीव पाप पुण्य का फल मरण पीछे भोगता है अन्त में उसी ईश्वर में समा जाता है। इन में पृथ्वी, जल, अग्नि. वायु को इसलिये पवित्र मानते हैं कि इन से सर्व वस्तुएं बनती हैं। मांसाहार मदिरापान से यह विरुद्ध है। वनस्पति में जीव मानते हैं। वृक्ष उन को भी सताने की मनाई करते हैं। रजस्वला स्त्री ३ से ६ दिन तक यथा सम्भव अलग बैठती है। प्रसूति वाली स्त्री ४० दिन तक अलग रहती है। जिस से सब कुछ हुआ व जो सब से बड़ा है उसे शैदानशैद कहते हैं। जनेऊ के स्थान में यह कमर में डोरा बांधते हैं।

देखो पुस्तक—"The Parsi religion as contained in Zand Avesta by John Wilson D. D. (1843) Bombay"

"The one holy and glorious God, the lord of creation of both worlds has no form, no equal, creation & support of all things is from that lord.........Loptysky, earth, moon & stars have all been created by him and are subject to him ....that lord was the first of all & there was nothing before him & he is always and will always remain...The names of God are specially three-Dadar (giver or creator) Ahurmazd (wise Lord) Aso (holy)"

(Ch. II. P. 106-7 in Manja Zati Zartusht by Edal Dara)

भावार्थ-एक पवित्र और ऐश्वर्यवान प्रभु है। वह दोनों दुनियां को सृष्टि का स्वामी है। उस की सूरत नहीं है न उस के सामान कोई है। सर्व पदर्थों की उत्पत्ति ओर रक्षा उसी प्रभु से है। उच्च आकाश पृथ्वी, चन्द्र व सितारे सब उससे पैदा हुये हैं व उसके आधीन हैं। वह ईश्वर सब से पहिले था उस के पहिले कुछ नहीं था, वह हमेशा है और हमेशा रहेगा।

ईश्वर के विशेप नाम तीन हैं। दादर (देने वाला या पैदा करने वाला) अहुरमज़्द (बुद्धमान प्रभु) असो (पवित्र)।

They worship fire, sun, moon, earth, winds & water (P. 191).

"Whatever God has created in the world we worship to it. (P. 212)"

भावार्थ-ये लोग अग्नि, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु, और जल को पूजते हैं। जो कुछ ईश्वर ने दुनिया में पैदा किया है उसे हम पूजते हैं।

Woman who bears a child must observe restriction 40days. She must remain in seclusion (P. 212)

भावार्थ- बच्चे वाली स्त्री को चालीस दिन रुकावट रखनी व एकान्त में रहना चाहिये।

"He will not be acceptable to God who shall thus kill any animal. Angel Asfandarmad says "O holy man, such is the command of God that

the face of the earth be kept clean from blood, filth & Carrion.

Angel amardad says about vegetable "It is not right to destroy it uselessly or to remove it without a purpose"........

Let every one bind his waist with sacred girdle, since the kushti is the sign of pure faith. (See Zartusht-namah-p. 495)

भावार्थ-जो इस तरह किसी पशु को मारेगा उस को ईश्वर नहीं स्वीकार करेगा। फरिश्ता अस्फन्दार्मद ने कहा है कि "ए पवित्र मनुष्य! ईश्वर की यह आज्ञा है कि पृथ्वी का मुख रुधिर, मैल तथा मुर्दा मांस से पवित्र रक्खा जावे।" अमरदाद फरिश्ता वनस्पतियों के लिए कहता है कि इसे वृथा नष्ट करना व वृथा हटाना ठीक नहीं है हर एकको अपनी कमर में पवित्र कमरबन्द पहनना चाहिये। यह कुश्ती पवित्र धर्म का चिन्ह है।

According to thy state of mind......so will thou suffer or enjoy. From good, thou wilt find a good result, and none ever reaped honor from evil action" (P. 517)

भावार्थ-अपने मत की स्थिति के अनुसार तुम दुःख या सुख भोगोगे। भलाई से अच्छा फल पाओगे। किसी ने बुरे कामसे सन्मान नहीं पाया है "जो कोई जानवरों को मारने की सलामन करता है उसको होरमजद बुरा समझते हैं (अवस्ता गाथा ३२-१२ ट्रैक्ट नं० १२ पारसी वेजीटेरियन टेम्परेन्स

सोसायटी नं० २४-२८ पारसी बाज़ार स्ट्रीट कोर्ट बम्बई)

"दाना और अनाज मनुष्यों की खुराक है, घास चारा जानवरों के लिये खुराक है" (अवस्ता वन्दीदाद ५ : २० ऊपर का ट्रैक्ट)

नोट—जैनधर्म में जगत अनादि अनन्त अकृत्रिम माना है, जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल और आकाश मूल द्रव्य अनादि अनन्त हैं। परमात्मा निर्विकार ज्ञानानन्दमई है, वह न पैदा करता है और न नष्ट करता है। अमूर्तीक परमात्मा से मूर्तीक जगत बिना समान उपादान कारण के नहीं हो सकता- यही बड़ा भारी अन्तर है।

ईसाई मुसलमान मत कर्तावाद में गर्भित हैं। इस तरह दुनिया के प्रचलित मतों से जैन दर्शन की भिन्नता है जो आगे के कथन से पाठकों को प्रगट हो जायेगी। यहां संक्षेप में बताई गई है।

(१०) मोक्ष का स्वरूप व महत्व

"बन्ध हेत्व भावनिर्जराभ्यां कृत्स्न कर्म विप्र मोक्षोमोक्षः" (तत्वार्थसूत्र अध्याय १०।२)

भावार्थ-कर्म बन्ध के सब कारणों के मिट जाने पर तथा पूर्व में बांधे हुये पाप पुण्य मई कर्मों की निर्जरा या त्याग हो जाने पर सर्व प्रकार के कर्मों से छूट जाना सो मोक्ष है।

मोक्ष प्राप्त आत्मायें सिद्ध कहलाती हैं उन में आत्मा के अनन्त गुण सब प्रकट हो जाते हैं। उन का निवास लोक के

अग्रभाग में रहता है। वे अपने अन्तिम शरीर के आकार प्रमाण निश्चल आत्मस्थ रहते हैं ‡।

मुक्तावस्था में आत्माऐं निरंतर परम आनन्द में मग्न रहते हैं। उनके कोई चिन्ता, रागादिभाव नहीं होते हैं। एक योगी जैसे संसार के प्रपंच से हटा हुवा एकांत में स्वरूप की समाधि में गुप्त रह कर स्वात्मानन्द का लाभ करता है उसी तरह वे निरन्तर स्वात्मा में लीन रहते हुए आत्मानन्द का लाभ करते हैं।

---

‡ आठ कर्म संसारी जीवों के थे उन के चले जाने पर नीचे लिखे आठ गुण प्रकट हो जाते हैं:—

ज्ञानावरण हानान्ते केवलज्ञान शालिनः।
दर्शनावरणच्छेदा दुद्यत्केवल दर्शनाः॥ ३७॥
वेदनीय समुच्छेदाद व्याबाधत्व माश्रिताः।
मोहनीय समुच्छेदात्सम्यक्त्व मचलंश्रिताः॥ ३८॥
आयुः कर्म समुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः।
नाम कर्म समुच्छेदादवगाहन शालिनः॥ ३९॥
गोत्र कर्म समुच्छेदा त्सदाऽगौरव लाघवाः।
अन्तराय समुच्छेदादनन्तवीर्य माश्रिताः॥ ४०॥
दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्म बीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुरः॥ ७॥
आकार भावतोऽभावो न चतस्य प्रसज्यते।
अनन्तर परित्यक्त शरीराकार धारिणः॥ १५॥

(तत्वार्थ सार-मोक्षतत्व)

भावार्थ-ज्ञानावरणीय कर्मों के नाश से अनन्त ज्ञान, दर्शनावरणीय के नाश से अनन्त दर्शन, वेदनीय के नाश से बाधा

वे परम पवित्र, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा परम निराकुल हैं वे किसी को न बनाते न बिगाड़ते न किसी को सुखी व दुखी करते हैं। कहा है—

> अट्ठ विय कम्म वियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
> अट्ठ गुण किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा॥
> (गोम्मटसार जीव काण्ड)

भावार्थ— सिद्ध आत्माएं आठ कर्म रहित, परम शीतल, निर्मल, अविनाशी, आठ गुण सहित, कृतकृत्य तथा लोक के अग्रभाग में रहने वाले होते हैं।

(११) मोक्ष का मार्ग रत्नत्रय है

ऊपर कहे हुए मोक्ष के पानेका उपाय सम्यग्दर्शन (सच्चा विश्वास) सम्यग्ज्ञान (सच्चाज्ञान) सम्यक चारित्र (सच्चा आचरण इन तीनों की एकता न होना है* । इसी को रत्नत्रय धर्म कहते हैं। बिना

रहित पना, मोहनीय के नाश से अचल सम्यक्त्व या श्रद्धान, आयु कर्म के नाश से परम सूक्ष्मता, नामकर्म के नाश से अवगाहन गुण, गोत्र कर्म के नाश से हलके भारीपने से रहितपनो और अन्तराय के नाश से अनन्तवीर्य सिद्धों के प्रगट हो जाते हैं। जैसे जला हुआ बीज फिर नहीं उगता है वैसे कर्म बन्ध के कारणों के मिट जाने पर सिद्ध जीव के फिर संसार नहीं होता है। शरीर के छूट जाने पर उन का आकार बना रहता है, वह छोड़े हुये शरीर के प्रमाण होता है।

* सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः॥१॥
(तत्त्वार्थसूत्र १ अ०)

रुचि के ज्ञान पक्का नहीं होता। विना पक्के ज्ञान के पक्का आचरण नहीं होता है। पर्वत के शिखर पर जाने के मार्ग का श्रद्धान ज्ञान होने पर जब उस पर चलेंगे तब ही शिखर पर पहुंच सकेंगे। तीनों के विना कोई कार्य नहीं हो सकता है तब मोक्ष की सिद्धी भी नहीं हो सकती है।

इस रत्नत्रय के दो भेद हैं— (१) निश्चय रत्नत्रय (२) व्यवहार रत्नत्रय। अपने ही आत्मा के असली स्वभाव का श्रद्धान, ज्ञान तथा उसमें लीनता निश्चय रत्नत्रय है तथा जीवादि सात तत्वों का व सच्चे देव, गुरु, धर्म का श्रद्धान तथा साधु या श्रावक गृहस्थ का हिंसादि पापों से छूटना व्यवहार रत्नत्रय है। मोक्ष के लिए साक्षात् साधन निश्चय रत्नत्रय है जब कि उसका निमित्त या सहायक साधन व्यवहार रत्नत्रय है। *

(१२) निश्चयनय व्यवहारनय †

जब तक हम अपने आत्मा को न पहिचानेंगे तब

---

* आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं।
छज्जीवाणं रक्खा भणदि चरित्तं तु ववहारो॥ २६४॥
आदा खु मज्झणाणे आदा मे दंसणे चरित्तेय।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे॥ २६५॥
(समयसार)

भावार्थ— जीवादि का श्रद्धान, आचारांगादि का ज्ञान व पृथ्वी आदि छः कायों की रक्षा व्यवहार रत्नत्रय है। आत्मा ही का ज्ञान, श्रद्धान, चारित्र व वही त्याग रूप है, संवर रूप है, योग रूप है ऐसा स्वानुभव निश्चय रत्नत्रय है।

† निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थं बोध विमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः॥

तक हम आत्मा का ज्ञान व विश्वास नहीं कर सकते। आत्मा का ज्ञान निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों से करना चाहिए। जो पदार्थ का असली स्वभाव वर्णन करे वह निश्चयनय है। जो पदार्थ को किसी कारण से भेद रूप कहे या उसकी अशुद्ध अवस्था का वर्णन करे वह व्यवहारनय है। एक रुई का बना हुआ रूमाल मैला हो गया है। जो निश्चयनय से यह जानता है कि रूमाल रुई का बना स्वभाव से सफ़ेद है और व्यवहारनय से जानता है कि यह मैल चढ़ने से मैला है वही रूमाल को धोकर साफ कर सकता है। उसी तरह से निश्चयनय से अपने आत्मा के स्वभाव को परमात्मा के समान शुद्ध ज्ञानानंदमय अमूर्तीक अविकार जानता है और व्यवहारनय से पाप पुण्य मई कर्मों के बंधन के कारण मेरा आत्मा अशुद्ध है ऐसा जानता है वही आत्मा की शुद्धि का प्रयत्न कर सकता है। इस लिए यह दोनों नय या अपेक्षा ज़रूरी हैं। नाटक में एक ब्राह्मण का पुत्र राजा का पार्ट खेल-

---

व्यवहार निश्चयौयः प्रबुध्य तत्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः सएवफल मविकलं शिष्यः॥

(पुरुषार्थ सिद्धयुपाय ५-८)

भावार्थ—निश्चयनय सत्य असली पदार्थ को व व्यवहारनय अभूतार्थ स्वरूप को बताती है—अर्थात् जो दूसरे निमित्तों से द्रव्य का विभाव परिणाम हुआ है उसको व्यवहारनय बताती है। ये संसारी प्राणी प्रायः सच्चे असली वस्तु के स्वरूप को नहीं जानते हैं। जो कोई व्यवहार निश्चय दोनों को ठीक ठीक समझ कर वीतरागी हो जाता है वही शिष्य जिनवाणी के पूर्ण फल को पाता है।

ते हुए व्यवहारनय से अपने को राजा तथा निश्चयनय से अपने को ब्राह्मण जान रहा है तब ही वह पार्ट होने के पीछे राज पना छोड़ असली ब्राह्मण के समान आचरण करने लगता है।

[१३] प्रमाणनय और स्याद्वाद

जिस ज्ञानसे पदार्थ को पूर्ण जाने वह प्रमाण है व जिस ज्ञान से उस के कुछ अंश को जाने वह नय है।

प्रमाण सम्यग्ज्ञान अर्थात् संशय, विपर्यय (उल्टे) व अनध्यवसाय (वेपरवाही) रहित ज्ञान को कहते हैं, उसके पांच भेद हैं:—

(१) मतिज्ञान—जो स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और कर्ण तथा मन से सीधा पदार्थ को जाने। जैसे कानसे शब्द सुनना, रसना से रोटी को चखना आदि।

(२) श्रुतज्ञान—मतिज्ञान पूर्वक जो जाना है उसके द्वारा अन्य पदार्थ को जानना श्रुतज्ञान है। जैसे रोटी शब्द से आटे को बनी हुई रोटी का ज्ञान। ये दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं क्योंकि इन्द्रियों की तथा मन की सहायता से होते हैं।

(३) अवधिज्ञान—जिस से आत्मा स्वयं द्रव्य क्षेत्रादि की मर्यादा से रूपी पदार्थों और संसारी जीवों को भूत और भविष्य के व दूर क्षेत्र को जान लेता है।

(४) मनःपर्ययज्ञान—जिस से आत्मा स्वयं दूसरे के मन में तिष्ठे किसी सूक्ष्म रूपी पदार्थों को जान लेता है।

(५) केवलज्ञान—जिस से सर्व पदार्थों की सर्व पर्यायों को एक समय में विना क्रम के आत्मा जानता है।

ये पिछले तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं अर्थात् आत्मा बिना पर की सहायता के जानता है। *

नयों के बहुत भेद हैं। लोक में व्यवहार चलाने के लिये सात नय प्रसिद्ध हैं:—

(१) नैगमनय—जो भूत भविष्यत की बात को संकल्प करके वर्तमान में कहे। जैसे कहना कि आज श्रीमहावीर स्वामी मोक्ष गए।

(२) संग्रहनय—जो एक बात से उस जाति के बहुत से पदार्थों का ज्ञान करा दे। जैसे जीव चेतना मय है, इस में सर्व जीवों का कथन हो गया।

(३) व्यवहारनय—संग्रहनयसे जो कहा उसके भेदों का कहना जिस से हो। जैसे जीव संसारी और मुक्त दो तरह के हैं।

(४) ऋजुसूत्रनय—जो वर्तमान अवस्था को कहे। जैसे राजा को राजा कहना।

(५) शब्दनय—जो व्याकरण की रीति से शब्द को कहे। जैसे पुल्लिंग द्वारा शब्द को स्त्री के अर्थ में कहना।

---

* मति श्रुतावधि मनःपर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥९॥ आद्ये परोक्षम् ॥१०॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥११॥ (तत्वार्थ सूत्र अ० १)

(६) समभिरूढनय जो शब्दका अर्थ न घटते हुए भी किसी पदार्थ के लिये ही किसी शब्द को लोक मर्यादा के अनुसार प्रयोग करे। जैसे गायको गौ कहना।

(७) एवं भूतनय-जिस पदार्थ के लिये जितने शब्द हों उनमें से जब वह जिस शब्द के अर्थ के अनुसार क्रिया करता हो तब वहही कहना। जैसे दुबली स्त्री को शब्द अवला कहना। †

स्याद्वाद-स्यात् अर्थात् किसी अपेक्षा से वाद अर्थात् कहना सो स्याद्वाद है। एक पदार्थमें बहुतसे विरोधी सरीखे स्वभाव भी होते हैं उन सबका वर्णन एक समय में हो नहीं सकता, एक एक ही स्वभावका होसकता है तब जिस स्वभाव को कहना हो उसमें स्यात् यानी कथंचित या किसी अपेक्षासे (From Some point of view), यह ऐसा है कहना सो स्याद्वाद है। जैसे एक पुरुष एक ही समय में पिता, पुत्र, भाई, भानजा मामा आदि अनेक रूप हैं तब कहना कि स्यात् पिता हैं अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने पुत्र की दृष्टि से) पिता है, स्यात्पुत्रः-किसी अपेक्षा से (अपने पिता की दृष्टि से) पुत्र है। स्यात् भ्राता-अपने भाई की अपेक्षा भाई है इत्यादि। इसी तरह यह आत्मा अस्ति स्वभाव, नास्ति स्वभाव, नित्य स्वभाव, अनित्य स्वभाव, एक स्वभाव, अनेक स्वभाव, आदि विरोधी सरीखे स्वभावों का धारक है।

---

† नैगम् संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढैवं भूतानयाः ॥ ३ ॥

(तत्वार्थ सूत्र अ० १)

इनमें से हर एक दो स्वभावों को समझाने के लिये इस तरह कहेंगे—

स्यात् अस्ति स्वभावः अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने आत्मामई द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव या स्वरूप की दृष्टि से) आत्मा में अपनी सत्ता या मौजूदगी है।

स्यात् नास्ति स्वभावः अर्थात् किसी अपेक्षा से (पर-द्रव्यों के द्रव्य क्षेत्रादि की दृष्टि से) आत्मा में परद्रव्यों की असत्ता यानी ग़ैर मौजूदगी है।

स्यात् नित्य स्वभावः अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने द्रव्यपने और गुणों के सदा बने रहने के कारण) आत्मा नित्य या अविनाशी स्वभाव है।

स्यात् अनित्य स्वभावः अर्थात् अपनी अवस्थाओं के बदलने की अपेक्षा आत्मा अनित्य या क्षणिक स्वभाव है।

स्यात् एक स्वभावः अर्थात् आत्मा एक अखण्ड है इससे एक स्वभाव है।

स्यात् अनेक स्वभावः अर्थात् आत्मा अनन्तगुणों को सर्वांश रखता है इससे अनेक स्वभाव हैं। इन्हीं दो स्वभावों को समझाने के लिये सातभंग कहे जाते हैं जो शिष्य के सात प्रश्नों के उत्तर हैं। जैसे:—

(१) क्या आत्मा नित्य है? उत्तर—हाँ! आत्मा सदा बना रहता है इससे नित्य है।

(२) क्या आत्मा अनित्य है? उत्तर—हाँ आत्मा अवस्थाओं को बदलता रहता है इससे अनित्य भी है।

(३) क्या आत्मा नित्य अनित्य दोनों है ? उत्तर-हाँ आत्मा एक समय में नित्य अनित्य दोनों स्वभावों को रखता है, जिस समय सोने की अंगूठी तोड़कर बाली बनाई है तब सोना वही है इससे नित्य है परन्तु अंगूठी बदल गई इससे अवस्था क्षणिक है, दोनों एक समय हैं।

(४) क्या हम दोनों को एक साथ नहीं कह सकते ? उत्तर-हाँ शब्दों में शक्ति न होने से दोनों को एक साथ नहीं कह सकते, इसी से आत्मा अवक्तव्य स्वरूप है।

(५) क्या अवक्तव्य होते हुए नित्य है ? उत्तर-हाँ जिससमय अवक्तव्य है उसी समय नित्य भी है।

(६) क्या अवक्तव्य होते हुए अनित्य है ? उत्तर-हाँ जिस समय अवक्तव्य है उसी समय अनित्य भी है।

(७) क्या जिस समय अवक्तव्य है उस समय नित्य अनित्य दोनों है ? उत्तर-हां जिस समय अवक्तव्य है उसी समय नित्य अनित्य भी है इसी को इन शब्दों में कहेंगे:—

(१) स्यात् आत्मा नित्य स्वभावः (२) स्यात् अनित्य स्वभावः (३) स्यात् नित्यानित्य स्वभावः (४) स्यात् अवक्तव्य स्वभावः (५) स्यात् नित्यः अवक्तव्य स्वभावः (६) स्यात् अनित्यः अवक्तव्य स्वभावः (७) स्यात् नित्यानित्यः अवक्तव्य स्वभावः। *

---

* वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यंप्रतिविशेषकः।
स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात्तव केवलिनामपि ॥ १०३ ॥
स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किं वृत्तचिद्विधिः।

अब तक स्याद्वाद से पदार्थ को न समझेंगे तब तक हम पदार्थ को ठीक नहीं समझ सकते। यदि हम ऐसा कहें कि आत्मा बिल्कुल नित्य ही है तब वह जैसा का तैसा रहेगा, रागद्वेषी न होगा। न कर्मों को बाँधेगा; न संसार में भ्रमण करेगा, न मुक्त होगा और यदि कहें कि आत्मा बिल्कुल अनित्य ही है तब क्षणमात्र में नष्ट होने से उसका पाप पुण्य भी नष्ट होगा, वह अपने कार्य के फलको नहीं पासकेगा, फिर यह ज्ञान ही न रहेगा कि मैं बालक था सो ही मैं जवान हूं इस लिये जब ऐसा माना जायगा कि आत्मा द्रव्य व गुणों की दृष्टि से नित्य है परन्तु अवस्था बदलने की अपेक्षा अनित्य है तब कोई विरोध नहीं आसकता है।

सप्त भङ्ग नयापेक्षो हेयादेय विशेषकः ॥ १०४ ॥

(आप्तमीमांसा)

भावार्थ–स्यात् एक अव्यय है जिसके अर्थ किसी अपेक्षा से हैं। यह स्यात् शब्द वाक्यों में जोड़ने से यह दिखलाता है कि इस पदार्थ में अनेक धर्म या स्वभाव हैं तथा वह वाक्य से जिस स्वभाव को कहता है उसकी मुख्यता करता है और स्वभावों को गौण करता है ऐसा आप केवलि महाराजों का मत है। यह स्याद्वाद सिद्धान्त सर्वथा एकान्त का त्याग कराने वाला है अर्थात् वस्तु अनेक धर्म स्वभाव है ऐसा न मानकर एक रूप ही है इस मिथ्याभव को हटानेवाला है। इसी से किसी अपेक्षा से ऐसा है ऐसी बिधि करने वाला है तथा मुख्य गौण की अपेक्षा से सात भँग से कहने वाला है। जिस बात को उस समय समझता है उसको ग्रहण करता है, दूसरी बातों को उस समय छोड़ देता है।

तब ही यह कहना होगा कि यद्यपि मैं बालकपने को छोड़कर युवा न होगया हूं तथापि मैं हूं वही जो बालक था। ऐसा मानने से ही यह आत्मा रागीद्वेषी होता हुआ जब राग द्वेष अवस्था को छोड़ता है तब वीतरागी होकर, आप स्वयं अशुद्धभावों से शुद्धभावमें बदल कर मुक्त होजाता है। नित्या नित्य मानने से ही यह कह सकते हैं कि श्रीमहावीर स्वामीका आत्मा जो गृहस्थ अवस्थामें क्षत्री नाथवंशी था सो अब सिद्ध परमात्मा होगया है। इसी तरह यदि पदार्थ में अपना भाव-पना तथा दूसरों का अभावपना न हो तो हम उस पदार्थ को दूसरों से भिन्न समझ ही नहीं सकते। हम जानते हैं कि हम अमरचन्द हैं किन्तु हम खुशालचन्द, दीनानाथ, कृष्णचन्द्र, लक्ष्मणलाल आदि नहीं हैं-अर्थात् हमारे में अमरचन्दपने का भाव है किन्तु खुशालचन्द आदि का अभाव है। इससे हम भाव अभाव या अस्ति नास्ति स्वरूप एक ही कालमें हैं। "हम आत्मा हैं ऐसा तब ही कह सकते हैं जब यह ज्ञान हो कि हमारे आत्मा में आत्मापने का अस्तित्व है किन्तु अपनी आत्मा के सिवाय अन्य सर्व आत्माओं का व अनात्माओं का हम में नास्तित्व है। पदार्थ का सच्चा ज्ञान कराने के लिये यह सिद्धान्त दर्पण के समान है। जैसा श्री राजवार्तिक में कहा है:-

"स्वपरादानापोहन व्यवस्था पाद्यं खलु वस्तुनो वस्तुत्वम्"

भावार्थ-वस्तु का वस्तुपना यही है जो अपने पने को ग्रहण किये हुए है और तब ही परपने से रहित है।

(१४) स्याद्वाद पर अजैन विद्वानों का मत

कोई २ अजैन शास्त्रों में स्याद्वाद का ठीक स्व-

रूप न बताकर उसको संशय वाद व विपरीतवाद कहकर खण्डन कर दिया है परन्तु जिन आधुनिक अजैन विद्वानों ने इस पर मनन किया है इन्हों ने इस की बहुत प्रशंसा की है। जैसे डा० हर्मनजैकोबी, स्व० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, प्रोफेसर आनन्दशंकर ध्रुव प्रिन्सिपल हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, आनरेबल डा० गंगानाथझा महामहोपाध्याय वाइस चैन्सलर अलाहाबाद यूनीवर्सिटी, महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, पूना के प्रसिद्ध सररामकृष्ण गोपाल, डोक्टर भण्डार कर एम० ए० आदि।

डाक्टर भण्डार कर ऐसा कहते हैं—

There are two ways of looking at things one called DRAVYARTHIKNAYA and the other PARYAYARTHIKNAYA. The production of a jar is the production of something, not previously existing; if we take the latter point of view, i. e. as a Paryaya or modification; while it is not the production of something not previously existing, when we look at it from the former point of view, i. e. as a Dravya or substance.

So when a soul becomes through his merits or demerits, a god, a man or a damizen of hell, from the first point of view, the being is the same, but from the second he is not the second. i. e. different in each case. So that yau can confirm or deny something of a thing at one and the same time.

This leads to the celebrated SAPTABHANGINAYA or the seven modes of assertion.

You can confirm existance of a thing from one point of view (Syad Asti), deny it from another (Syad Nasti), and affirm both existence and non-existance with reference to it at different times (Syad Astinasti). If you should think of affirming both existence and non-existence at the same time from the same point of view, you must say that thing can not be spoken of (Syad Avaktavya)........It is not meant by these modes as that there is no certainty or that we have to deal with probabilities only, as some scholars have thought. All that is implied is that every assertion which is true is true only under certain conditions of space, time etc.

भावार्थ—पदार्थों के विचार करने के दो मार्ग हैं, एक द्रव्यार्थिकनय दूसरा पर्यायार्थिकनय। जैसे मट्टी का घड़ा बना तब जो पहिले न था सो बना ऐसा कहेंगे। जब हम अवस्था की अपेक्षा कहेंगे तथा जब हम हीं द्रव्य की दृष्टि से विचारेंगे तो कहेंगे कि यह पहिले न था सो नहीं है किन्तु वही मिट्टी है। इसी तरह जब कोई जीव अपने पाप पुण्य के कारण देव, मनुष्य या नारकी होता है वह द्रव्य की दृष्टि से वही है किन्तु पर्याय की दृष्टि से भिन्न भिन्न ही है। इस तरह तुम

एक ही समय में किसी वस्तु में विधिनिषेध सिद्ध कर सकते हो। इसको समझाने के लिये सप्तभंगीनय है या कहने के सात मार्ग हैं। तुम किसी अपेक्षा से किसी वस्तु की सत्ता कह सकते हो यह स्यादस्ति है, दूसरी अपेक्षा से उसका निषेध कर सकते हो यह स्यान्नास्ति है। विधि निषेध दोनों क्रमसे कह सकते हो यह स्यादस्तिनास्ति है। यदि दोनों अस्ति नास्ति को एक साथ एक समय में कहना चाहो तो नहीं कह सकते यह स्यादवक्तव्य है ....इन भंगों के कहने का मतलब यह नहीं है कि इन में निश्चयपना नहीं है या हम मात्र संभव रूप कल्पनाऐं करते हैं जैसा कुछ विद्वानों ने समझा है इस सब से यह भाव है कि जो कुछ कहा जाता है वह किसी द्रव्य, क्षेत्र, कालादि की अपेक्षा से सत्य है। (जैन धर्म नी माहिती हीराचन्द नेमचन्द कृत सन् १६११ में छपी पत्र ५६)

डाक्टर जैकोबी कहते हैं " इस स्याद्वाद से सर्व सत्य विचारों का द्वार खुल सकता है" (देखो जैन दर्शन गुजराती जैन पत्र भावनगर सं० १६७० पत्र १३३)

प्रोफेसर फणिभूषण अधिकारी एम० ए० हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस अपने व्याख्यान ता० २६ अप्रैल २५ ई० में कहते हैं--

It is this intellectual attitude of impartiality, whithout which no scientific or philsophical researches can be successful, is what syadvad stands for.

यह निष्पक्ष बुद्धिवाद है जिसके बिना कोई वैज्ञानिक या सैद्धान्तिक खोजें पूर्ण नहीं हो सकती हैं इसीलिए स्याद्वाद है।

Even learned Shankaracharya is not free from the charge of injustice that he has done to the doctrine.........It emphasis the fact that no single view of the universe or of any part of it would be complete by itself.

भावार्थ—विद्वान शंकराचार्य भी उस अन्याय के दोष से मुक्त नहीं हैं जो उन्होंने इस सिद्धान्त के साथ किया है। यह स्याद्वाद इस बात पर ज़ोर देता है कि विश्व की या इसके किसी भाग की एक ही दृष्टि अपने से पूर्ण नहीं है।

There will always remain the possibilities of viewing it from others and points.

उस पदार्थ में दूसरी अपेक्षाओं से देखने की संभावनाएं सदा रहेंगी

(१५) सम्यगदर्शन का स्वरूप

सम्यगदर्शन इस आत्मा का एकगुण है जिसके प्रकट होने पर आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होकर आत्मानन्द का लाभ होता है। जहां आत्मा के स्वरूप के स्वाद की रुची हो जाती है वही निश्चय सम्यगदर्शन है इस की प्राप्ति के लिये मोक्षमार्ग में प्रयोजनीय जीवादि सावतत्वों का श्रद्धान तथा इस श्रद्धान के लिए सच्चे देव, गुरु धर्म या शास्त्र का श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

निश्चय सम्यग्दर्शन के बाधक अनन्तानुबंधी (जो बहुत

गाढ़े चिपके रहने वाले हैं) क्रोध,मान, माया,लोभ तथा मिथ्या दर्शन ऐसे पांच कर्म हैं। जब इनका असर हटता है तब ही निश्चय सम्यग्दर्शन हो जाता है। इस कार्य के लिए तत्वों का विचार उपयोगी है। मुख्यता से आत्म तत्व का विचार करने योग्य है। ×

(१६) जैनों के पूजनीय देव, शास्त्र गुरु

तत्वज्ञान होनेके लिये यह आवश्यक है कि हमको उस आदर्शका ज्ञान हो जो आत्मा तत्वज्ञानकी पूर्ण मूर्ति है। उसीको देव कहते हैं। हम संसारी प्राणियों में अज्ञान और क्रोध, मान, माया, लोभसे दोष लगे हैं। जिनके पास यह दोष नहीं हैं वे ही

× धर्मः सम्यक्त्व मात्रात्मा शुद्ध स्वानुभ वोऽथवा।
तत्फलं सुखमत्यक्ष मक्षयं क्षायिकं चयत् ॥४३२॥
(पंचाध्यायी द्वि०)

भावार्थ—सम्यग्दर्शनमई आत्मा ही धर्म है अथवा वह शुद्ध आत्माका अनुभव है। इसी का फल आत्मीक, अविनाशी सुख का लाभ हैं।

छप्पंचणव विहाणं अत्थाणं जिणवरो वइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेणय सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥५६०॥
(गोमट्टसार जीवकाण्ड)

भावार्थ —छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय व नव पदार्थों का जैसा जिनेन्द्र भगवान ने उपदेश किया है उसी प्रमाण आज्ञा से अथवा प्रमाणनय के द्वारा समझकर श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है। इन सब का स्वरूप आगे कहा जायगा।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी और वीतराग परम शान्त देव हैं। उनके दो भेद हैं; एक सकल या शरीर सहित परमात्मा दूसरे निकल या शरीर रहित परमात्मा सकल परमात्मा को अरहन्त कहते हैं। वे जीवन्मुक्त परमात्मा आयु पर्यन्त धर्मोपदेश करते हैं। जब शरीर रहित हो जाते हैं तब वे शुद्ध आत्मा सिद्ध परमात्मा कहलाते हैं। ‡

अरहन्त शरीर सहित होते हैं तब ही उनसे धर्म का उपदेश मिल सकता है। शरीर रहित परमात्मा वचन रूप उपदेश नहीं दे सकता है।

श्रद्धानं परमार्थानां माप्तागम तपोभृताम्।
त्रिमूढा पोढमष्टांगं सम्यग्दर्शन मस्मयम् ॥ ४ ॥

(रत्न करण्ड श्रावकाचार)

भावार्थ-यथार्थ देव, शास्त्र, गुरु का तीन मूढ़ता, और आठ मद छोड़कर व आठ अंग सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

‡ णट्ठ चदु घाइ कम्मो दंसण सुहणाण वीरियमइयो।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥

(द्रव्यसंग्रह)

भावार्थ—जिन्हों ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्म्मों को नाश कर दिया है और जो अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तबलधारी हैं, परम सुन्दर शरीर में विराजित हैं; वीतराग आत्मा हैं सो अरहन्त हैं ऐसा विचारना चाहिये।

णट्ठट्ठ कम्म देहो लोहालोयस्स जाणओ दट्ठा।

जो परमा मा होने के लिये अज्ञान और कषायों के मेटने का उद्यम करते हों और रात दिन इसी आत्मोन्नति में लीन हों, अपने पास वस्त्र पैसा बर्तन न रखते हों, नग्न हों, मात्र जीव रक्षा के लिये मोर पंख की पीछी और शौच के लिये जल लेने को काठ का कमंडल रखते हों वे ही साधु गुरु हैं। इन में जो अन्य साधुओं को मार्ग में चलाते हैं उन साधुओं को आचार्य कहते हैं। जो साधु शास्त्र ज्ञान कराते हैं उन को उपाध्याय कहते हैं। शेष साधु मात्र कहलाते हैं। ‡

ऐसे साधु की संगति से सच्चा धर्म का उपदेश मिल सकता है। इन साधुओं ने अरहन्त के उपदेश के अनुसार जो शास्त्र रचे हों जिन में आत्मोन्नति का ही उपदेश हो वे ही

पुरुसायारो अप्पा सिद्धो भाएह लोयसिहरत्थो ॥

(द्रव्यसंग्रह)

भावार्थ--जिन्हों ने आठों कर्मों को और शरीर को नष्ट कर दिया है, जो लोक अलोक के ज्ञाता दृष्टा हैं, पुरुषाकार आ मा हैं व लोक के शिखर पर विराजमान हैं सो ही सिद्ध हैं।

‡ विषयाशावशातीतो निरारंभोपरिग्रहः ।
ज्ञान ध्यान तपो रक्त स्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १० ॥

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

भावार्थ—जो पाँचों इन्द्रियों (स्पर्शन रसनादि) की इच्छाओं से दूर है, आरंभ व परिग्रह से रहित है, आत्मज्ञान व आत्मध्यान व तप में लीन है वही तपस्वी गुरु है।

सच्चे शास्त्र हैं। जो उपदेश तीर्थंकरों ने दिया उस को सुन कर उन के मुख्य शिष्य गणधर ऋषि ने उस को बारह अङ्गों में ग्रन्थरूप रचा जिस के नाम ये हैं:—

(१) आचरांग—जिस में मुनियों का आचरण है। इस के १८००० पद हैं।

(२) सूत्रकृतांग—इस में सूत्ररूप से ज्ञान और धार्मिक रीतियों का वर्णन है—पद ३६००० हैं। ।

(३) स्थानांग—एक से ले अनेक भेद रूप जीव पुद्गलादि का कथन है-४२००० पद हैं।

(४) समवायांग—इस में द्रव्यादि की अपेक्षा एक दूसरे में सहयोग का कथन है-१६४००० पद हैं।

(५) व्याख्या प्रज्ञप्ति—इस में ६०००० प्रश्नों के उत्तर हैं। २२०००० पद हैं।

(६) ज्ञातृधर्मकथा—पुराण चरित्र वर्णित हैं-अर्थात् पुण्य जीव पाप जीवों के चरित्र अनेक प्रकार से कहे हैं, इस में ५५६००० पद हैं ।

(७) उपासकाध्ययन—इस में गृहस्थों का चरित्र है, ११७०००० पद हैं।

(८) अन्तकृद्दशांग—इस में हर एक तीर्थंकर के समय दश उपसर्ग सह केवली हुए उन का चरित्र है। २३२८००० पद हैं।

(९) अनुत्तरोपपाददशांग—इस में हर एक तीर्थंकर के

समय १० साधु उपसर्ग सह अनुत्तर विमानों में जन्मे उनकी कथा है, ९२४४००० पद हैं।

(१०) प्रश्नव्याकरणांग—इस में हेतुवाद का अवलम्ब युक्ति प्रत्युक्ति से खंडन मंडन करते हुए लोक और शास्त्र में प्रचलित शब्दों का निर्णय है इस में ९३१६००० पद हैं।

(११) विपाकसूत्रांग—इस में कर्मों के बन्ध व फलादि का कथन है। १८४००००० पद हैं।

(१२) दृष्टिप्रवादांग—इस में ३६३ मतों का निरूपण व खंडन है। पूर्व आदि का कथन है इस में १०८६८५६००५ पद हैं।

जिनवाणी में ३३ व्यञ्जन २७स्वर व ४ अयोगवाह (जिह्वा मूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार और विसर्ग) इस तरह सर्व ६४ अक्षरों को, दो संयोगी तीन संयोगी को आदि लेकर ६४ संयोगी तक जोड़नेसे कुल अक्षरों का जोड़ ६४ हुआ (६४ × २)को आपस में गुणा करने से जो आवे उसमें एक कम करने से जितने अक्षर हों वे अक्षर १८,४४६,७४४,०३,७०९,५५१६-१५ हैं। एक पद के १६,३४८,३०७,८८८ अपुनरुक्त अक्षर हैं इसलिये सर्व अक्षरो को भाग करने से कुल पद ११२८३५-८००५ हैं। इन ही में १२ अंग बांटे गये हैं। शेष ८०१०८१७५ अक्षरों में अंगबाह्य उत्तराध्ययन आदि १४ प्रकीर्णक हैं। यह लिखने में नहीं आ सकते हैं। इन को तो विशिष्ट ज्ञानी को व्युत्पत्ति ही होती है और इसी व्युत्पत्ति के अनुसार अन्तरंग में पाठ भी हो जाता है। जैसे परीक्षा देने वाले छात्र को उत्तर कापी लिखते समय सर्व पुस्तक की व्युत्पत्ति जिह्वा पर

रहती है। लिखित पुस्तक से व्युत्पत्ति अत्यधिक है, अपरिमित है किन्तु इन अंगों का अंश लेकर लाखों शास्त्र रचे जाते हैं-- अर्थात् सम्पूर्ण द्वादशांग तो लिखने में आ नहीं सकता थोड़ा सा लेख्य अंश ही लिखा जाता है। ‡

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में जो आचारांग नाम के अंग हैं वे मूल नहीं हैं। उन की रचना श्रीयुत देवर्द्धिगण ने वीर सं० ६०० के अनुमान बल्लभीपुर (गुजरात) में की थी। दिगम्बर सम्प्रदाय में जिनवाणी चार भेदों में मिलती है।

(१) प्रथमानुयोग--जिस में २४ तीर्थंकर के इतिहास हैं।

(२) करणानुयोग--जिस में गणित, ज्योतिष जीवों के भाव, कर्म बन्ध के भेद आदि का कथन है।

(३) चरणानुयोग--जिसमें गृहस्थों के तथा मुनि के आचरण का वर्णन है।

(४) द्रव्यानुयोग--जिस में छः द्रव्य सात तत्व आदि का कथन है। येही जैनियों के चार वेद हैं।

अबतक जो ग्रन्थ दि० जैनों में मिलते हैं वे विक्रम सं० ४६ में प्रसिद्ध श्री कुंदकुंद महाराजकृत पंचास्तिकाय, प्रवचन-सार, समयसार, नियमसार, अष्ट पाहुड़ आदि हैं व उनके शिष्य सं० ८१ में प्रसिद्ध श्री उमास्वामीकृत तत्वार्थसूत्र मोक्ष

---

‡ यह कथन न्यायाचार्य पं माणिकचन्द जी के द्वारा प्राप्त हुआ है।

शास्त्र अति प्राचीन है। आप्तमीमांसा, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि के कर्ता स्वामी समन्तभद्र व इन दोनों आचार्यों के वचन परम माननीय है।

प्रथमानुयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ श्री जिनसेनाचार्यकृत महापुराण, द्वि० जिनसेनकृत हरिवंश-पुराण, रविषेण आचार्यकृत पद्मपुराण आदि हैं।

करणानुयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ श्री धवल, जयधवल, महाधवल तथा श्री गोम्मटसार त्रिलोकसार आदि हैं।

चरणानुयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ श्री मूलाचार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, चारित्रसार आदि हैं।

द्रव्यानुयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ समयसार, परमात्मप्रकाश, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि हैं। *

ऊपर कहे प्रमाण देवशास्त्र गुरुका विश्वास करना, ऐसा कि जो इन गुणोंसे रहित हो उनको नहीं मानना सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। इसी श्रद्धान के बल से शास्त्राभ्यास करने से

---

* शास्त्र का लक्षण—

आप्तोपज्ञ मनुल्लंघ्यम दृष्टेष्ट विरोधकम्।
तत्वोपदेश कृत्सार्वं शास्त्रं कापथ घट्टनम्॥ ६॥

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

भावार्थ-शास्त्र वह है जो आप्त अरहंत देव का कहा हो, खंडनीय न हो, प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण से बाधित न हो, आत्म-तत्व का उपदेशक हो, सर्व हितकारी हो व मिथ्यामार्ग का खण्डन करने वाला हो।

सात तत्वों का ज्ञान होता है। हमें इन तीनों की भक्ती सच्चे भावों से करना चाहिये। यही मोक्षमार्ग का सोपान है।

(१७) देवपूजा का प्रयोजन

श्री अरहंत और सिद्ध परमात्मा का पूजन करना अर्थात् उनके गुणानुवाद गाना इसलिए नहीं है कि हम उनको प्रसन्न करें। वे भी वीतराग हैं। न हमारी प्रशंसा से राज़ी हो हमें कुछ देते हैं न हमारी निन्दा से नाराज़ हो हमारा बिगाड़ करते हैं। उनका पूजन केवल अपने भावों की शुद्धि के लिये किया जाता है।

यह नियम है कि गुणों के मनन से अपने भाव गुणमयी होते व औगुणों के मनन से अपने भाव दोषी होते हैं। हमारे भावों से ही हमारा भला बुरा होता है। ये देव परमवीतराग हैं। इनकी भक्तिसे हमारे भावोंमें भी शान्ति आती है, भक्तिमई शान्तभाव से हमारे पाप कटते हैं और पुण्य का लाभ होता है। वास्तव में जैनियों की देवपूजा वीर पूजा Hero Worship है।

पूजा के दो भेद हैं-द्रव्यपूजा, भावपूजा।

जल चन्दनादि द्रव्यों का आश्रय लेकर भेट चढ़ाना द्रव्य पूजा है। गुणों का विचारना भाव पूजा है। गृहस्थों के लिये द्रव्य पूजाके द्वारा भाव पूजाका होना सुगम है। गृहस्थों का चित्त सांसारिक वाधाओं में खिंचा रहता है इसलिये उनके मनको देव भक्तिमें जोड़ने के लिये आठ द्रव्यों के द्वारा आठ प्रकार भावनायें करनी योग्य हैं। जैसे—

(१) जल-आगे भेटरूप चढ़ाकर यह भावना करनी कि जन्म, जरा, मरण का रोग दूर हो।

(२) चंदन-से भवकी आताप शान्त हो।

(३) अक्षत-से अविनाशी गुणों का लाभ हो।

(४) पुष्प-से काम विकार का नाशहो।

(५) नैवेद्य-से क्षुधा रोग की शान्ति हो।

(६) दीप-से मोह अंधेरे का नाश हो।

(७) धूप-से आठों कर्मों का नाश हो।

(८) फल-से मोक्षरूपी फल प्राप्त हो।

यद्यपि पूजा की सामग्री धोने में कुछ आरम्भ करना होताहै परन्तु इस आरम्भ का गृहस्थी त्यागी नहीं है। इस आरम्भ के दोष के मुकाबले में भावों की निर्मलता बहुत गुणी होती है। जैसे किसी गाने वाले का मन बाजे की सुरताल की सहायता से लगता है तब बाजों को बजाने का आरम्भ गान-विद्यामें मन लगने की अपेक्षा बहुत कम है। *

---

* न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्त वैरे।
तथापि ते पुण्य गुणस्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः ॥५७॥

पूज्यं जिनं त्वार्चयतोजनस्य, सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिका विषस्य नदूषिका शीत शिवाम्बु राशौ ॥५८॥

(स्वयंभूस्तोत्र)

भावार्थ—आप वीतराग हैं, आपको हमारी पूजासे कोई अर्थ (प्रयोजन) नहीं है। हे नाथ! आप वैर रहित हैं इससे हमारी निन्दा से आपमें द्वेष नहीं होसकता तो भी आपके

(१८) मूर्तिस्थापन का हेतु

जो गृहस्थ देव पूजा करें और जिसकी पूजा करें उसकी उपस्थिति न हो तो पूजामें उचितभाव नहीं लग सकता। भक्ति विना भक्ति योग्य वस्तु (Object of devotion) के भीतर से उमड़ती नहीं है। यदि जीवन्मुक्त परमात्मा या अरहंत साक्षात् मिलें तो हमें उनकी सेवा में पूजा करनी चाहिये। यदि वह नहीं मिलें तो उनकी वैसीही ध्यानाकार मूर्ति स्थापित कर उस मूर्तिके द्वारा परमात्मा की भक्ति करनी चाहिये। हमारे भावों में जैसा असर साक्षात् अरहंत के ध्यान मय वीतराग शरीर के दर्शन से होगा, वैसाही असर उनकी ध्यानमय प्रतिष्ठित वीतराग मूर्तिके दर्शन से होगा। वास्तवमें ध्यान कैसा होता है व ध्यान के समय शान्ति कैसी होती है इसको साक्षात् बताने वाली जैन लोगों की वस्त्राभरण रहित शान्त मूर्ति है। जैसे जलादि द्रव्य भेट देना भावों की उज्वलता में कारण है वैसे यह मूर्तिभी साधक है। *

पवित्र गुणोंका स्मरण हमारे मनको पापरूपा मैलों से साफ कर देताहै। जो पूजने योग्य जिनेन्द्र की पूजा द्रव्य द्वारा करता है उसका अल्प आरम्भी दोष बहुत पुण्य के बंध होने की अपेक्षा बहुत ही अल्प है हानिकर नहीं है-जिस तरह विष की कणी क्षीर समुद्र के जलको विषमय नहीं कर सकती।

* इत्यपृच्छदसौ चाह सत्यमिति वचस्तदा।
शृणु राजन! जिनेन्द्रस्य चैत्यं चैत्यालयादिवा ॥४८॥
भवत्य चेतनं किंतु भव्यानां पुण्य बंधने।
परिणाम समुत्पत्ति हेतुत्वात्कारणं भवेत् ॥४९॥

(१६) मूर्ति स्थापना सदा से है नवीन नहीं

लोक में किसी को पहिंचानने के लिये नाम रखना ज़रूरी है। वैसे उस के पास न होते हुये उसके स्वरूप को जानने के लिये उस को मूर्ति या तस्वीर ज़रूरी है। मकान बनाना, चित्रपट खींचना, पत्र लिखना ये सब बातें जगत में जहां २

रागादि दोष हीनत्वादायुधा भरणादि कात्।
विमुख्यस्य प्रसन्नेन्दु कांति हासि मुखश्रियः ॥५०॥

अपतिताक्षसूत्रस्य लोका लोक विलोकिनः।
कृतार्थत्वात्परित्यक्तजटादेः परमात्मनः ॥५१॥

जिनेन्द्रस्यालयांस्तस्य प्रतिमाश्चप्रपश्यतां।
भवेच्छुभाभिसंधानप्रकर्षो नान्यतस्तथा ॥ ५२ ॥

कारण द्वय सान्निध्यात्सर्व कार्य समुद्भवः।
तस्मात्तत्साधु विज्ञेयं पुण्य कारण कारणम् ॥५३॥

(उत्तरपुराण पर्व ७३)

भावार्थ—प्रतिमा सम्बन्धी प्रश्न करने पर मुनि कहने लगे हे आनन्दराजा यद्यपि यह जिनेन्द्र की प्रतिमा व मन्दिर अचेतन हैं तोभी शुभ भावों की उत्पत्ति में निमित्त होने से पुण्यबंधमें कारण हैं। जिनेन्द्र रागादि दोष रहित हैं, शस्त्र आभूषण वर्जित हैं, प्रसन्न चंद्रसमान मुख की शोभा को रखते हैं, इन्द्रियों के ज्ञान से रहित हैं, लोक अलोक को देखने वाले हैं, कृतकृत्य हैं, जटा आदि से रहित हैं ऐसे परमात्मा की प्रतिमा का व मंदिर का दर्शन करने से जैसे भावों की उत्कृष्टता

व जब जब कर्मभूमि होती हैं, आवश्यक हैं। जगत में सदा ही से क्षत्रिय, व वैश्यादि के कर्म हैं इस लिये सांकेतिक चिन्हों की भी प्राप्ति सदा ही से है। घट को लिखा देख कर घट का बोध हो जाता है। यदि पहिले नक़शा न खींचा जाय तो मकान नहीं बन सकता है। दूर देश में बैठे हुये स्त्री पुरुषों के स्वरूप का ज्ञान चित्रों से होता रहता है। इस लिये जब भक्ति मार्ग सदासे है तब भक्ति योग्य Object of Worship भी सदासे है कोई नवीन कल्पना नहीं है। सं० ८१ में प्रसिद्ध श्री उमा स्वामी महराज ने लोक व्यवहार के लिये स्थापना को "नाम स्थापना द्रव्य भाव तस्तन्यासः" (तत्वार्थ सूत्र अ० १ सूत्र ५) इस सूत्र से स्वीकार किया है। संवत् लेख रक्षित प्राचीन जैन मूर्तियां भूमि से निकला करती हैं। मथुरा से पहिली शताब्दी से पहिले की दिगम्बर जैन मूर्तियां मथुरा व लखनऊ के अजायबघर में हैं, खंडगिरि, उदयगिरि (उड़ीसा) की हाथी गुफामें सन् १५० वर्ष पहिले का जैन राजा खारवल या मेघवाहन द्वारा अङ्कित लेख है। उसकी १२ वीं व तेरहवीं लाइन में है कि राजा ने मगध देश के नन्द राजा से ऋषभदेव जैनियों के प्रथम तीर्थंकर की मूर्ति को ला कर अपने बनाये मन्दिर में स्थापित किया।* इस से यह सिद्ध है कि इस के पहिले से ऋषभदेव की प्रतिमा बनती थीं। बंगाल विहार

होती है वैसी अन्य मूर्ति आदि से नहीं होती। सर्व कार्य अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग, दो कारणों से होते हैं इस लिये यह अच्छी तरह समझ लो कियह मूर्ति पुण्य प्राप्ति के कारण शुभभावों के होने में निमित्त कारण है।

* बंगाल विहार उड़ीसा प्रचीन स्मारक पृ० १३८

में अनेक स्थानों में हज़ारों वर्ष की प्राचीन दि० जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। स्वरूप के ज्ञान के लिये ऐसी सहकारी वस्तु का होना किसी विशेष काल में कल्पित नहीं है।

(२०) सात तत्त्व व उन की संख्या का महत्व

जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की श्रद्धा कर के भक्ति करता है उस को शास्त्रों के द्वारा सात तत्वों को जान कर श्रद्धान करना आवश्यक है क्योंकि इन के द्वारा निश्चय आत्मरुचि मई सम्यग्दर्शन का लाभ होता है। उन के नाम हैं (१) जीव (२) अजीव (३) आस्त्रव (४) बन्ध (५) संवर (६) निर्जरा (७) मोक्ष। ※

इन का ही ज्ञान मोक्षमार्ग का ज्ञान कराने वाला है। जीव से यह बोध होता है कि हम चैतन्यरूप आत्मा हैं। अजीव से ज्ञान होता है कि हमारे शरीरादि अचेतन पदार्थ सब मुझसे भिन्न अजीव हैं। क्योंकि वह निश्चय से शुद्ध हो करके भी व्यवहार से कर्म बन्ध के कारण अशुद्ध हैं इस लिये हम को यह जानना ज़रूरी है कि कर्मों के पिण्ड जो जड़ अचेतन हैं किस तरह आत्मा के पास आते हैं और ठहर जाते हैं। इन दो को बनाने वाले आस्त्रव (आना) और बन्ध (बन्धना या ठहरना) हैं। हम अपनी अशुद्धि को कैसे मेटें। इस के लिये संवर बतलाता है कि नवीन बन्ध को रोकने का उपाय

※ जीवा जीवास्त्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्षास्तत्वम् (तत्वार्थ सूत्र अ० १ सूत्र ४)

करो। निर्जरा तत्व बतलाता है कि बांधे हुये कर्मों को शीघ्र कैसे दूर कर दिया जाय। सर्व कर्मों से छूट कर मुक्त होने पर शुद्ध आत्मा अपने स्वरूप में बना रहता है इस को बताने वाला मोक्ष तत्व है। जैसे नाव में पानी आकर ठहरता है तब नाव समुद्र में ही गोते खाती है और जब पानी आने का छिद्र बन्द कर के भरे हुए पानी को उलचा जाता है तब नाव शीघ्र समुद्र पार पहुंच जाती है। जीव नाव है, अजीव जल है, आस्रव जल के आने का छिद्र है, बन्ध जल का ठहरना है संवर छेद को बन्द करना है, निर्जरा जल को उलचना है, मोक्ष नाव का छूट कर द्वीप में पहुंचना है। अर्थात् सिद्ध जीवका सबसे ऊपर पहुंचजाना है। इन सात तत्वोंसे हमको अपने उद्धार का उपाय प्रकट हो जाता है इस लिये इन का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इन में हमें व्यवहार नय से जीव. संवर, निर्जरा, और मोक्ष को गृहण करने योग्य और शेष तीन को त्यागने योग्य मानना चाहिये तथा निश्चय नय से आत्म तत्वको ही ग्रहण योग्य मानना चाहिये क्योंकि इन सात तत्वों में जड़ चेतन दो ही पदार्थ हैं। निश्चय से जड़ से चेतन भिन्न है, यही श्रद्धान ठीक है।

(२१) जीव तत्व का स्वरूप

जीव उसे कहते हैं जिसमें चेतनपना (Consciousness) हो। चेतना इस का लक्षण है। जो कोई चेतता है- अर्थात् देखता जानता है वही जीव है। इस जीव के सम्बन्ध में नौ बातें जानने योग्य हैं :—

(१) यह अपने प्राणों से सदा जीता रहता है। निश्चय-नय से इसके एक ज्ञान चेतना प्राण है जो कभी नहीं मिटता

है। व्यवहारनय से संसारी जीव की अपेक्षा इसके चार प्राण होते हैं, जिनके कारण एक शरीर में जीता रहता है व जिन के वियोग का नाम मरण कहलाता है वे चारप्राण हैं। १ आयु, १ श्वासोछ्वास, पाँच इन्द्रियां (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण) तीनबल (मन, वचन, काय), ये सब दश हो जाते हैं।

संसार में जीव छः प्रकार के हैं :—

(१) एकेन्द्रिय स्थावर-जैसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक। इनके शरीर आदि रूप होते हैं। भीतर जीव होता है। जब तक ये बढ़ते रहते हैं व फलते फूलते रहते हैं तब तक ये सजीव या सचित कहलाते हैं, जब ये सूख जाते हैं या हवा न पाकर मुरझा जाते हैं तब ये अजीव और अचित कहलाते हैं। खान की व खेत की गीली मिट्टी, कुए का पानी आदि सचित हैं। सूखी मिट्टी, गर्म पानी अचित हैं। वर्तमान सायंस ने पृथ्वी व वनस्पति (Vegetable) में जीवपने की सिद्धि करदी है। अभी तीन में नहीं की है सो यदि विज्ञान की उन्नति हुई तो यह भी प्रमाणित हो जायगी। जैन सिद्धान्त जो कहता है वह इस तरह पर है कि इनके चारप्राण होते हैं। १ स्पर्शनइन्द्रिय जिससे छूकर जानते हैं। १ कायबल १ आयु १ श्वासोछ्वास।

(२) द्वीन्द्रिय जीव-जैसे लट, शंख, कौड़ी आदि। इनके छः प्राण होते हैं। १ रसनाइन्द्रिय १ वचनबल अधिक हो जाता है।

(३) तेन्द्रिय जीव-जैसे चींटी- खटमल आदि । इनके सात प्राण हैं । घ्राण इन्द्रिय अधिक होजाती है ।

(४) चौइन्द्रिय जीव-जैसे मक्खी, भौंरा, पतंग आदि । इनके आठ प्राण हैं । चक्षु इन्द्रिय अधिक होजाती है ।

(५) पंचेन्द्रियमन रहित-जैसे समुद्र के कोई २ जाति के सर्प । इनके ९ प्राण होते हैं । एक कर्ण इन्द्रिय अधिक होजाती है ।

(६) पंचेन्द्रिय मन सहित-जैसे हिरण, गाय, भैंस, बकरा कबूतर, काक, चील, मच्छ, सब आदमी, नारकी व देव । इनके १० प्राण होते हैं । एक मन बल अधिक होजाता है । जिससे तर्क वितर्क किया जावे व कारण कार्य का विचार किया जावे वह मनहै । जो संकेत समझ सके व शिक्षा ग्रहण कर सके मनवाला पंचेन्द्रिय जीव है ।

(२) यह जीव उपयोगवान है, ज्ञान दर्शन स्वरूप है । निश्चयनय से शुद्ध ज्ञान दर्शन को रखता है, व्यवहारनय से मतिज्ञान आदि पांच ज्ञान, मति, श्रुत, विभंग तीन अज्ञान तथा चक्षु-अचक्षु अवधि, केवल ये चार दर्शन रखता है, इसी से हम जीव को पहिचानते हैं जैसे जो शास्त्र पढ़ता है वह श्रुतज्ञान का काम कर रहा है इस से जीव है ।

सामान्यपने अवलोकन को दर्शन कहते हैं, विशेष जानने को ज्ञान कहते हैं । आंख से देखना चक्षु दर्शन है । आंख को छोड़ कर शेष चार इन्द्रिय व मन से देखना अचक्षु दर्शन है । आत्मा स्वयं रूपी पदार्थ को जिस से देखे वह अवधि दर्शन है । जिस से सब देखा जावे वह केवल दर्शन है । जब इन्द्रिय और

पदार्थ की भेट होती है तब दर्शन होता है फिर जो जाना जाय वह ज्ञान है।

(३) यह जीव कर्ता है–निश्चयनय से यह अपने ज्ञान भाव व वीतराग भाव का ही कर्ता है, व्यवहारनय से यह राग-द्वेप मोहादिभावों का कर्ता व उन भावों के निमित्त से पाप पुण्यमई कर्मोंका बांधने वाला है व घटपट आदिका कर्ता है।

(४) यह जीव भोक्ता है–निश्चयनय से अपने शुद्ध-ज्ञानानन्द का भोगता है, व्यवहारनय से पापपुण्य के फल रूप सुख दुःखों को भोगता है।

(५) यह जीव अमूर्तीक है–निश्चयनय से इसमें कोई स्पर्श, रस, गंध, वर्ण (जो गुण परामाणुओं में होते हैं) नहीं हैं इससे यह अमूर्तीक है परन्तु जड़ कर्म का बन्धन हर एक संसारी आत्मा के अंश में है इस लिये व्यवहारनय से यह मूर्तीक है।

(६) यह जीव आकारवान है–इस आकाश में जो कोई वस्तु जगह पायगी उसका आकार होना चाहिये आकार लम्बाई चौड़ाई आदि को कहते हैं। जीव भी एक पदार्थ है इस लिये आकारवान है परन्तु यह आकार चेतनमई है, जड़ रूप नहीं है। निश्चयनय से एक जीव असंख्यात प्रदेश रखता है अर्थात् तीन लोक के बराबर है। प्रदेश क्षेत्रका सब से छोटा अंश है जिसको एक अविभागी परमाणु घेरे। व्यव-हारनय से यह शरीर के प्रमाण आकारवान है। छोटे शरीर में छोटा व बड़ेमें बड़ा हो जाता है। इसमें कर्मके फल के निमित्त से सकुड़ना फैलना होता है। शरीर में रहते हुए कभी शरीर से बाहर फैलकर आत्मा का आकारफैलता व फिर सकुड़

कर शरीर प्रमाण होजाता है, ऐसी दशा को समुद्घात कहते हैं। वेदना कषाय, आदि के निमित्त से कभी ऐसा होता है। क्यों कि हम को सर्वांग स्पर्श का ज्ञान होता है व शरीर से बाहर स्पर्श का ज्ञान नहीं होता है, इससे सिद्ध है कि हमारा आत्मा शरीर प्रमाण है।

समुद्घात सात होते हैं:—

(१) वेदना-कष्ट को भोगते हुए शरीर से बाहर फैल कर हो जाना।

(२) कषाय-क्रोधादि के निमित्त से फैलना।

(३) मारणान्तिक-कोई मरने के पहिले जहां जाना हो उस को फैल कर स्पर्श कर आता है फिर मरता है।

(४) वैक्रियिक-देव नारकी आदि अपने शरीर को छोटा बड़ा कर लेते व देव गण एक शरीर के अनेक शरीर बना कर आत्मा को फैला कर प्रवेश कराते और काम लेते हैं।

(५) तैजस-किसी मुनि के क्रोध वश बाएँ कन्धे से बिजली का शरीर आत्मा सहित निकलता है जो नगरादि को भस्म करता है; यह अशुभ तैजस है। किसी मुनि के दया वश दाहिने कन्धे से शुभ तैजस निकलता है जो दु:ख के कारणों को मेट देता है यह शुभ तैजस है।

(६) आहारक-किसी तपस्वी मुनि के मस्तक से एक स्वेत सूक्ष्म पुरुषाकार शरीर आत्मा सहित निकल कर शंका दूर करने व असंयम दूर करने के लिये किसी केवली व श्रुतकेवली के पास जाता है।

(७) केवल-जिस अरहन्त परमात्मा के आयु कर्म की स्थिति कम हो व नाम, गोत्र वेदनीय की स्थिति बहुत हो तो उन को स्थिति को आयु की स्थिति के समान करने के लिये आत्मा के प्रदेश तीन लोक में फैलते हैं।

(७) यह जीव आप ही अपने पाप पुण्य के अनुसार संसार भ्रमण किया करता है।

(८) यही जीव यदि पुरुषार्थ करे तो स्वयं सिद्ध भी हो सकता है।

(६) यह जीव शरीर छोड़ने पर यदि शुद्ध हो तो अग्नि की शिखा के समान ऊपर को जाता है और लोक के अग्रभाग में ध्यानाकार विराजमान रहता है परन्तु संसारी जीव कर्म बन्ध के कारण चार विदिशाओं को छोड़ कर ऊपर नीचे, पूर्व पश्चिम, दक्षिण उत्तर, ६ दिशाओं में अपनी २ गति में जाते हैं। टेढ़े नहीं जाते हैं मरण के पीछे दूसरे शरीर में जाते हुए टेढ़े नहीं जाते, सीधे ही जाते हैं। तीन दफ़े से अधिक नहीं मुड़ते। ‡

---

‡ नौ विशेषण की गाथा

जीवो उवओो गमओो अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भुत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्स सोड्ढगई ॥ २ ॥
जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥ १२२ ॥

(द्रव्य संग्रह, पंचास्तिकाय)

भावार्थ-यह जीव सर्व पदार्थों को देखता जानता है। यह संसारी जीव सुख चाहता है, दुःखों से डरता है अपना स्वयं भला या बुरा करता है व स्वयं उन का फल भोगता है।

ये जीव अनन्तानन्त है। हर एक जीव की सत्ता यानी मौजूदगी भिन्न २ रहती है। कोई किसी का खण्ड नहीं है न कोई किसी से मिलता है। जीवों के दो भेद हैं-संसारी और मुक्त। दोनों ही अनेक हैं *

जैन सिद्धान्तों में जीव एक द्रव्य है।

(२२) द्रव्य का स्वरूप

जो सत् हो अर्थात् जिस की सत्ता अर्थात् मौजूदगी सदा बनी रहे उस को द्रव्य कहते हैं। सत् उसे कहते हैं जिस में एक ही समय में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य पाये जावें-अर्थात् जिस में पिछली अवस्था का नाश हो कर नई अवस्था जन्मे तो भी मूल द्रव्य बनी रहे। जैसे स्वर्ण का कड़ा तोड़ कर कुण्डल बनाया इस में कड़े की अवस्था का नाश होकर ही कुण्डल जन्मा है परन्तु स्वर्ण बना ही रहा। अथवा जैसे कोई बालक युवान हुआ, यहां बालक अवस्था का व्यय, युवान अवस्था का जन्म तथा ध्रौव्य वह मनुष्य जीव है। एक चने के दाने को जिस समय मसल कर चूरा जाता है उसी समय चनेपन का नाश, चूरेपन का जन्म होता है व जो परमाणु चने के थे वे उस के आटे में मौजूद हैं।

हर एक द्रव्य द्रवणशील है, परिणमन शील है। अर्थात् अवस्थाओं को बदलता है। जिसमें अवस्था नहीं बदले वह द्रव्य किसी काम को नहीं करसकता। यदि जीव कूटस्थ नित्य हो तो अशुद्ध से कभी शुद्ध नहीं होसकता व यदि परमाणु कूटस्थनित्य हो तो उससे मिट्टी, पानी, हवा, वनस्पति आदि

---

* संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥ (तत्वा० सू० अ० २)

नहीं बन सकते। यदि अवस्था बदलते हुए मूल वस्तु नष्ट होजावे तो कोई भी वस्तु नहीं ठहर सके। इस कारण द्रव्य को गुणपर्यायवान् भी कहते हैं।

गुण द्रव्यके भीतर व्यापक उसके साथ सदा पाये जाते हैं। उनहीं गुणों में जो अवस्थाऐं बदलती हैं उनका पर्याय कहते हैं जो क्रम क्रमसे होती हैं। गुणों का और उनके समुदायरूप द्रव्यका सदा ध्रौव्य या अविनाशीपना रहता है किंतु पर्यायों में उत्पाद व्यय होता रहता है। †

ऐसे मूल द्रव्य इस लोकमें छः प्रकार के हैं। जीव, पुद्गल धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काय, इनमें जीव चेतन शेष पांच अचेतन हैं।

(२३) द्रव्यों के सामान्यगुण

इन छः प्रकार के द्रव्यों में कुछ गुण ऐसेहैं जो हरएक द्रव्य में पाये जाते हैं उनको सामान्य गुण (Common qualities) कहते हैं। उनमें से प्रसिद्ध छः हैं।

(१) अस्तित्वगुण–जिससे द्रव्य अपनी सत्ता सदा रखता है।

---

† दव्वं सल्लक्खणियं उप्पाद व्ययधुवत्त संजुत्त।
गुण पज्जा सयं वा जंतं भणंति सव्वण्हू ॥ १० ॥

(पंचास्तिकाय)

भावार्थ—द्रव्य का लक्षण सत् है सो उत्पाद, व्यय, ध्रुव, पनेकर सहित है उसीको गुणपर्यायवान् सर्वज्ञ देव कहते हैं।

(२) वस्तुत्वगुण-जिस शक्तिके निमित्त से द्रव्यमें अनेक गुण व पर्याय निवास करते हैं।

(३) द्रव्यत्वगुण-जिससे द्रव्य परिणमन किया करता है। या अवस्थाएं बदलता है।

(४) प्रदेशत्वगुण-जिससे द्रव्य कोई न कोई आकार रखता है।

(५) अगुरुलघुत्वगुण-जिससे द्रव्य अपने स्वभाव को कभी हीन व अधिक नहीं करता है। जितने गुण हैं उनको अपने में बनाये रखता है व जिसके कारण एक गुण या पर्याय दूसरे गुण या पर्याय रूप नहीं होसकता।

(६) प्रमेयत्वगुण-जिससे द्रव्य किसी के द्वारा जाना जासके।

(२४) जीव द्रव्यके विशेष गुण

जीव द्रव्य के विशेष गुण चेतना अर्थात् ज्ञान दर्शन, सुख, वीर्य्य, चारित्र या वीतरागता, सम्यक्त्व या सच्चा श्रद्धान आदि हैं।

हरएक जीव स्वभाव से सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनंतसुखी, अनन्तवली, परमशान्त, परमश्रद्धावान है। *

---

* सुद्ध सचेयण बुद्ध जिण, केवलणाण सहाउ।
सो अप्पा अणुदिण मुणहु, जइ चाहउ सिवलाहु ॥ २६ ॥

(योगसार)

भावार्थ—आत्मा शुद्ध चेतनामय, बुद्ध, वीतरागी, केवल ज्ञान स्वभाव है। जो मोक्ष चाहते हो तो रातदिन इसीका मनन करो।

ये गुण सिवाय जीवों के और किसी पांच द्रव्यों में नहीं पाये जाते हैं। संसारो जीवों में कर्मों के बंधन होने के कारण ये विशेष गुण पूर्ण प्रकट नहीं होते।

(२५) जीवकी तीन प्रकार अवस्था

इस जगत में जीवों की तीन अवस्थाएं होती हैं—

(१) बहिरात्मा जो शरीर आदि रूप, व क्रोधादिरूप व अज्ञान व अल्प ज्ञानरूप अपने आत्मा को जानते हैं तथा जो संसार के सुखों में रागी हैं, सच्चे परमात्मा या आत्मा को नहीं जानते हैं।

(२)-अंतरात्मा—जो अपने आत्मा को पहिचानते हैं, अतीन्द्रिय स्वाधीन आनन्द के खोजी हैं, संसार शरीर भोगों से विरक्त हैं। यदि गृह में रहते हैं तो जल में कमल समान उदासीन रहते हैं। यदि साधु होजाते हैं तो सर्व धनादि परिग्रह छोड़ आत्मध्यानरूपी यज्ञमें कर्मोंका होम करते हैं। इनही को महात्मा कहते हैं।

(३) परमात्मा-जो शुद्ध आत्मा है, जगत के प्रपंच जाल व चिंता से रहित हैं, जिनके ज्ञानमें सर्व द्रव्यों की सर्व पर्यायें झलक रही हैं तोभी दीप शिखाके समान किसी से प्रीति अप्रीति नहीं करते निरंतर स्वात्मानन्द में मग्न रहते हैं। ‡

---

‡ बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्व देहिषु।
उपेयांस्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत् ॥ ४॥
बहिरात्मा शरीरादो जातात्मभ्रान्तिरन्तरः।

(२६) परमात्मा अनन्त हैं

परमात्मा एक नहीं है किन्तु अनन्त हैं क्योंकि इस अनादि अनन्त जगत में जो कोई आत्मा अपने को शुद्ध कर लेता है वही परमात्मा के पद में पहुंच जाता है। इस लिये अनन्त परमात्मा भिन्न२ अपने २ ज्ञानानंद में इस तरह मग्न रहते हैं जिस तरह अनेक साधु एक स्थल पर बैठे आत्मध्यान कर रहे हों। यद्यपि गुणों की अपेक्षा सब बराबर हैं। सबही अनन्तज्ञानी, वीतरागी, परमसुखी हैं तथापि अपनी २ सत्ता की अपेक्षा भिन्न २ हैं। भक्त जन एक परमात्मा को या अनेक परमात्माओं को लक्ष्य कर भक्ति करे उसके भावों में शुद्धिरूप फल समान होगा क्योंकि गुणोंकी ही भक्ति से गुणों की निर्मलता होती है। †

चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्मातिनिर्मलः॥५॥

(समाधिशतक)

भावार्थ—आत्माके तीन भेद हैं, बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा। इनमें से अन्तरात्मा होकर व बहिरात्मापना त्याग कर परमात्मा होने का यत्न करो।

जो शरीरादि में आत्मा का भ्रम रखता है वह बहिरात्मा है, जो रागादि से भिन्न आत्मा को जानता है वह अन्तरात्मा है, जो परम शुद्ध है वह परमात्मा है।

† णट्ठट्ठकम्मबंधा अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा।
लोयग्गठिदा णिच्चा सिद्धा जे एरिसा होंति॥ ७२॥

(नियमसार)

(२७) जगत का कर्ता व सुख दुःख फल का दाता परमात्मा नहीं होसकता

परमात्मा शुद्ध स्वात्मानन्द में लय रहते हैं। उनके भावमें संकल्प विकल्प उठ ही नहीं सकते क्योंकि जहां विचार की तरंगे होंगी वहां आत्मसमाधि नहीं रहेगी न आत्मानन्द का भोग होगा।

संकल्पादि मनके द्वारा होते हैं। परमात्मा के न मन है न वचन है न काय। तव फिर "जगत को बनाऊँ व किसी को सुख दुःखदूं" यह भाव कैसे शुद्ध, निरंजन आत्मा में उठ सकता है?

परमात्मा कृतार्थ है। उसके कोई शुभ अशुभ कामना नहीं उठ सकती है। यदि परमात्मा को कर्ता माना जावे तो किसी समय जगत के प्रवाह का अभाव मानना पड़ेगा-क्योंकि जो नहीं होता है वही किया जाता है सो अनादि अनंत चलने वाला जगत अपनी विचित्रता को छोड़ कर कभी एकरूप नहीं था न होसकता है।

जो परमात्मा को जगत कर्ता मानते हैं वे उसको सर्व-व्यापक और निराकार मानते हैं। सर्वव्यापक में हलन चलन नहीं होसकता; निराकार से विना कारण के काम नहीं होसकता। निर्विकारके इच्छा नहीं होसकती। इसी तरह परमात्मा

भावार्थ-आठों कर्म रहित व आठ महागुण सहित अविनाशी अनंत सिद्ध लोकके अग्रभाग में विराजित रहते हैं।

को न्याय करके सुखदुःख देनेकी भी जरूरत नहीं है। जो ऐसा मानते हैं वे परमात्मा को राजा के समान व अपने को प्रजा के समान मानकर कहते हैं। यदि कोई सर्व शक्तिमान, न्यायी, दयावान व सर्व व्यापक सर्वज्ञ परमात्मा राजाके समान जगत का शासन करे तो जगत में कोई कुमार्ग में नहीं जासकता क्योंकि वह ज्ञानबल से प्रजाके मनकी बात जानकर अपनी विचित्र शक्ति से उसके मनको फेर देवे। जैसे राजा किसी को यह जानकर कि यह प्रजा द्रोही है तुरंत उसको रोक देते हैं। यदि वह दयावान व शक्तिशाली होकर रोके नहीं पीछे दण्ड देवे तो यह बात राज्यधर्म के विरुद्ध है। क्योंकि कुमार्ग का प्रचार जगत में बहुत अधिक है इससे सिद्ध होताहै कि परमात्मा हमारे बीचमें अपने को नहीं उलझाता है। हम जैसे स्वयं अग्नि उठाते व स्वयं जलते हैं, स्वयं नशा पीते व स्वयं बेहोश हो जाते हैं वैसे संसारी जीव स्वयं पाप पुण्य बांधते व स्वयं उनका फल पाते रहते हैं। परमात्मा न कर्ताहै न भोगादि दण्ड देता है। ‡

---

‡ स्वयंसृजति चेत्प्रजाः किमितिदैत्यविध्वंसनं
सुदुष्टजन निग्रहार्थमिति चेदसृष्टिर्वरम्।
कृतात्म करणीयकस्य जगतां कृतिर्निष्फला
स्वभावइति चेन्मृषा सहि सुदुष्ट एवाऽप्यते ॥ ३३ ॥
(पात्रकेसरि स्तोत्र)

भावार्थ—यदि परमात्मा स्वयं प्रजाको पैदा करता है तो फिर असुरों का विध्वंस क्यों करता है? यदि कहो कि दुष्टों के निग्रह व सुष्टों के पालन के लिये तो यही ठीक था कि वह उनको रचना ही नहीं करता। जो कृतकृत्य होते हैं उनसे जगत

(२८) अजीवतत्व-पांचद्रव्य

जिसमें चेतना नहीं है वह अजीव है। अजीवतत्व में पांच द्रव्य गर्भित हैं- १ पुद्गल २ धर्मास्तिकाय ३ अधर्मास्तिकाय ४ आकाश और ५ काल। इनमें केवल पुद्गल ही मूर्तीक है। शेष चार अमूर्तीक हैं।

१- जिसमें रूखा, चिकना, ठंडा, गर्म, हलका, भारी, नरम, कठोर ये आठ स्पर्श व सफेद, काला, पोला, लाल नीला ऐसे पांच वर्ण व खट्ठा, मीठा, चर्परा, तीखा, कषायला ये ५ रस व सुगंध दुर्गंध, यह दो गंध, ये बीस गुण की अवस्थाएं पाई जावें उसको पुद्गल कहते हैं। ये ही स्पर्श, रस गंध, वर्ण, पुद्गल के विशेष गुण हैं।

जो कुछ हम अपनी पांचों इन्द्रियों से गृहण करते हैं सब पुद्गल हैं। ये पांचों इन्द्रियां और यह हमारा शरीर भी पुद्गल है, कर्मों का बंधन भी पुद्गलरूप है। बहुत से सूक्ष्म पुद्गल इन्द्रियों से नहीं गृहण में आते हैं।

२- धर्मास्तिकाय-यह लोक व्यापी अमूर्तीक द्रव्य है जिसका विशेष गुण जब जीव और पुद्गल अपनी शक्ति से गमन करें तब बिना प्रेरणा के उनकी सहाय करना है।

३-अधर्मास्तिकाय-एक लोक व्यापी अमूर्तीक द्रव्य है

का बनना यह बेमतलब काम है। कोई बुद्धिमान प्रयोजन बिना कोई काम नहीं करता। यदि कहो कि उसका स्वभाव है यह भी मिथ्याही है क्योंकि सर्जन, पालन, नाश, बिना रागादि दोषके नहीं होसकता सो परमात्मा में संभव नही हैं।

जिसका विशेष गुण जब जीव पुद्गल अपनी शक्तिसे ठहरते हैं तब बिना प्रेरणा के उनकी सहाय करना है।

४-आकाश-एक सबसे बड़ा अनन्त अमूर्तीक द्रव्य है जिस का विशेष गुण सर्व द्रव्यों को उदासीन भाव से स्थान देना है।

५-कालद्रव्य-अमूर्तीक एक परमाणु या प्रदेश के बराबर, गणना में असंख्यात हैं। इनको कालाणु भी कहते हैं। इनका विशेष गुण सब द्रव्यों की अवस्थाओं के पलटने में उदासीन भावसे सहायक होना है। समय, विपल, पल आदि इस काल द्रव्य की पर्यायें या अवस्थाऐं हैं जिनको व्यवहार काल कहते हैं।

जीव और पुद्गलतो हमको प्रत्यक्ष प्रगट हैं परन्तु चार द्रव्यों का ज्ञान होने के लिये हमको इस सिद्धान्तपर विचार करना चाहिये कि जगतमें हर एक काम के लिये उपादान और निमित्त दो कारणों की आवश्यकता पड़ती है। जो स्वयं कार्य में परिणमन करता है उसे उपादान कारण व जो उसके सहायक होते हैं उनको निमित्त कारण कहते हैं। जैसे सुवर्ण की मुद्रका बनी इसमें सुवर्ण उपादान कारण है और सुनार के औज़ार आदि निमित्त कारण हैं।

जीव और पुद्गल हलन चलन करते हैं और ठहरते हैं, स्थान पाते हैं तथा अवस्थाओं को बदलते हैं। जैसे एक आदमी या एक पक्षी चलता है, चलते २ रुकता है, जगह पाता है व हर समय अवस्था बदलता है। धूल कभी उड़ता है कभी ठहरता है, जगह पाता है या अवस्था को बदलता है। ये चार काम वे दोनों अपनी ही शक्ति से करते हैं। इस

लिये इनके उपादान कारण तो ये स्वयं हैं निमित्त कारण चार भिन्न २ कार्यों के चार द्रव्य हैं सो क्रम से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल हैं। लोकाकाश मर्यादा रूप है। आकाश अनन्त है। यदि धर्म अधर्म द्रव्य न माने जावें तो जीव और पुद्गल एक लोक की मर्यादा में न रह कर अनन्त आकाश में बिखर जावेंगे। * क्योंकि आकाश अनन्त होने से वे जीव तथा पुद्गल चलते २ अनन्त आकाश में जा सकते हैं। परन्तु वे नहीं जाते क्योंकि जहां तक जगत है वहां तक ही धर्म अधर्म द्रव्य हैं इस लिये जगत में ही चलते व ठहरते हैं।

(२९) पाँच अस्तिकाय--विभाववान् और क्रियावान दो द्रव्य

हर एक द्रव्य में एक सामान्य गुण प्रदेशत्व है जिससे हर एक द्रव्य का कुछ न कुछ आकार होता है। द्रव्यों का आकार नापने के लिये प्रदेश एक माप है। जितने आकाशको

---

* स्पर्श रसगन्ध वर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ अ० ५ ॥
गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयो रुपकारः ॥ १७ ॥
आकाशस्यावगाहः ॥ १८ अ० ५ ॥
वर्तनापरिणाम क्रिया परत्वापरत्वेच कालस्य ॥ २२ अ० ५ ॥
(तत्वार्थ सूत्र)

भावार्थ--जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध वर्ण हों वे पुद्गल हैं। गमन कराना धर्म का व स्थिति कराना अधर्मका व अवकाश

पुद्गल का वह परमाणु जिसका दूसरा भाग नहीं हो सकता रोकता है, उसको प्रदेश कहते हैं। इस माप से नापा जावे तो हर एक जीव में असंख्यात प्रदेश, धर्म द्रव्य में असंख्यात, अधर्म में असंख्यात और आकाश में अनन्त प्रदेश हैं। लोक के भी असंख्यात प्रदेश हैं। इसी के बराबर धर्म अधर्म व एक जीव के प्रदेश हैं।

पुद्गल का सबसे छोटा हिस्सा परमाणु होता है परन्तु बहुत से परमाणु मिलकर स्कन्ध बनते हैं। वे स्कन्ध कोई संख्यात कोई असंख्यात कोई अनन्त परमाणुओं के होते हैं, इससे पुद्गल के तीन प्रकार प्रदेश होते हैं। क्यों कि जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश में एक से अधिक प्रदेश होते हैं। इस लिये इन पांच को जैन सिद्धान्त में अस्तिकाय कहते हैं।

काल द्रव्य लोक के एक एक प्रदेश में अलग अलग रत्नों के समान फैले हुए हैं इसलिये वे सब एक प्रदेशी ही हैं, यद्यपि गणना में असंख्यात हैं। अतएव काल द्रव्य को काय में नहीं गिना है। यह ध्यान में रहे कि जैन सिद्धान्त में माप २१ तरह की बताई है। किसी हद तक संख्यात के जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट भेद समाप्त हो जाते हैं फिर असंख्यात के ९ भेद फिर अनन्त के ९ भेद होते हैं। सबसे बड़ी संख्या उत्कृष्ट अनन्तानन्त है।

देना आकाश का गुण है, पलटाना काल का गुण है। अवस्था चाल तथा व मती बढ़ती समय लगने से व्यवहार काल का ज्ञान होता है।

इन छः द्रव्यों में धर्म अधर्म, आकाश एक एक हैं, काल असंख्यात हैं, जीव और पुद्गल अनन्त हैं। चार द्रव्य स्थिर रहते हैं केवल जीव पुद्गल में ही हलन चलन क्रिया होती है इसलिये ये ही क्रियावान हैं तथा इनहीं में वैभाविक शक्ति है। संसारी जीव कर्मबन्ध के निमित्त से रागद्वेषादि विभाव भावों में परिणमन कर जाते हैं। जैसे स्फटिक मणि लाल, पीले डांक के सम्बन्ध से लाल, पीले रंग रूप परिणमन कर जाती है तथा पुद्गल जीव के रागद्वेषादिभावों का निमित्त पाकर आठ कर्मरूप होजाते हैं व पुद्गल के परमाणु चिकनापन रूखापन तथा परस्पर मिलने रूप कारणों से स्कन्ध रूप हो जाते हैं, स्कन्ध टूटकर फिर परमाणु होजाते हैं। इस तरह जीव पुद्गल में ही विभावपना होता है, शेष चार द्रव्य अपने स्वभाव में ही स्वभाव रूप सदृश परिणमन करते हुए ही रहते हैं। यदि जीव पुद्गल में विभाग रूप होने की शक्ति नहीं होती तो संसार न होता न संसार का त्याग कर मोक्ष होता। ❀

❀ प्रदेश

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणु वट्टद्धं।

तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाण दाणरिहं॥

भावार्थ-जितने आकाश को अविभागी पुद्गल परमाणु घेरे उसको प्रदेश जानो। इसमें सूक्ष्म अनेक परमाणु भी समा सकते हैं। जैसे जहां एक दीप प्रकाश हो वहाँ अनेक दीप प्रकाश भी समा सकते हैं।

प्रदेश की संख्याः—

(३०) पुद्गलके अनेक भेद कैसे बनते हैं

पुद्गल के मूल भेद दो हैं। परमाणु और स्कन्ध। परमाणु अविभागी होता है उस में एक समय में ५ विशेष गुण झलकते हैं। ठण्डा गर्म में से एक, रूखा चिकना में से एक, एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण। दो या अधिक परमाणुओं के मिलने पर स्कन्ध या बड़े स्कन्ध से छूटकर छोटे स्कन्ध बनते रहते हैं। परमाणु या स्कंध जब दूसरे परमाणु या स्कंध से बँधते हैं तब रूखे या चिकने गुण के कारण से बँधते हैं।

होंति असंखा जीवे धम्मा धम्मे अनंत आया से।

मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो णतेण सो काओ॥

भावार्थ--एक जीव, धर्म, अधर्म में असंख्य, आकाश में अनन्त, पुद्गल में तीन प्रकार प्रदेश होते हैं। काल का एक ही प्रदेश है इससे काय नहीं है।

(द्रव्यसंग्रह)

भाववन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीव पुद्गलौ।

तौच शेष चतुष्कंच षडेते भाव संस्कृताः॥ २५॥

भावार्थ--जीव पुद्गल क्रियावान (चलनरूप) भी हैं और परिणमन शील भी हैं। शेष चार केवल भाववान हैं क्रियावान नहीं हैं।

अस्ति वैभाविकी शक्तिस्तत्रद् द्रव्योप जीविनी॥ ७४॥

(पंचाध्यायी अ० ८)

भा० पुद्गल जीवमें वैभाविकी शक्ति है।

जब चिकनाई या रूखापन का अँश एक दूसरे से दो अँश अधिक होगा तब रूखा रूखे से चिकना चिकने से व रूखा चिकने से बँधकर एक मेल होजायगा व जिस में अधिक गुण होंगे वह दूसरे को अपने रूप कर लेगा। एक अँश चिकनाई या रूखापन जिस परमाणु में जिस समय रहेगा वह किसी से बँधेगा नहीं। जैसे किसी स्कन्ध में ७६० अंश चिकनाई है दूसरे में ७६२ अंश है तब ही ये दोनों मिलकर एकबन्ध रूप होजायंगे। †

इसी बन्धके नियम से अनेक जाति के स्कन्ध बनते रहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के परमाणु भिन्न २ नहीं हैं। मूल पुद्गल परमाणुओं से बने हुए ही यह विचित्र स्कन्ध है तथा यह परस्पर बदलजाते हैं। जैसे हैड्रोजन, आक्सीज़न हवा मिलकर जल होजाता है व जलसे हवा होजाती है, पानी जम कर सख़्त वर्फ होजाता है, वर्फका पानी होजाता है। मेघ की बूँद सीपके पेटमें पड़कर पृथ्वीकाय मोती बन जाता है इत्यादि

---

† वर्तमान सायंसको यह पता लगाना है कि चिकनाई या रूखे पने के अंशों की जाँच कैसे की जावे। स्वाभाविक नियम जैन शास्त्रों में ऐसा कहा है।

णिद्धावा लुक्खा वा अणु परिणामा समावा विसमा वा।
समदो दुराधिगाजदि वज्झन्तिहि आदि परिहीणा॥

(प्रवचनसार अ० २ गा० ७३)

भावार्थ--चिकने या रूखे परमाणु सम या विसम हों दो गुण अधिक होने से बंध जाते हैं। जघन्यगुण वाला नहीं बँधता है। आठ दश आदि सम, नौ सात आदि विसम हैं।

हर एक स्कन्ध में एक समय में ७ गुण पाये जाते हैं। हलका या भारी, रूखा या चिकना, ठण्डा या गर्म, नर्म या कठोर, ऐसे ४ स्पर्श, रस १, गन्ध १ वर्ण १। इस बन्ध के नियमानुसार हमें ६ तरह के स्कन्ध प्रगट दीखते हैं।

१—स्थूल स्थूल (Solid) जो टुकड़े होने पर विना तीसरी चीज़ के न मिलें। जैसे पत्थर, लकड़ी, कागज़।

२—स्थूल द्रव्यपदार्थ (Liquids) जो अलग करने पर मिल जावें। जैसे दूध, पानी, शरवत।

३—स्थूल सूक्ष्म-जो आंखों से दीखे परन्तु हाथों से न पकड़ा जासके। जैसे धूप, छाया, प्रकाश।

४—सूक्ष्म स्थूल-जो आँखों से न दीखे परन्तु और इन्द्रियों से जाना जावे। जैसे, हवा, शब्द आदि।

५—सूक्ष्म-जो किसी भी इन्द्रिय से न जाना जावे। उनके कार्यों से उनका अनुमान किया जाय। जैसे तैजस वर्गणा (Electric Molecule), कार्माण वर्गणा (Karmic Molecule) आदि।

६—सूक्ष्मसूक्ष्म भेद पुद्गल का परमाणु है।*

---

* बादर बादर बादर बादर सुहमंच सुहम थूलंच।
सुहमंच सुहम सुहमं धरादियं हो द छब्भेयं ॥ ६०२ ॥

(गोम्मटसार जीवकाण्ड ६२)

इस गाथा का अर्थ ऊपर आगया।

सद्दो बन्धो सुहमो थूलो संठाण भेद तम छाया।
उज्जोदादव सहिया पुग्गल दव्वस्स पज्जाया ॥ (द्रव्य संग्रह)

इन्हीं स्कन्धों के २२ भेद गोमटसार में कहे हैं, उनमें से पाँच प्रकार के स्कन्धों से हमारा ख़ास सम्बन्ध है जिनका वर्णन आगे है।

(३१) पुद्‌गलमय पाँच शरीरों के कार्य

संसारी जीवों के निम्नलिखित पांच तरह के शरीर होते हैं:—

औदारिक—जो मनुष्य और एकेन्द्रिय से ले पंचेन्द्रिय तक तिर्यंचों (पशुओं) के स्थूल शरीर हैं।

वैक्रियिक—जो बदला जासके, यह देव और नारकियों का स्थूल शरीर है। किसी किसी मनुष्य तिर्यंच के भी यह शरीर होता है।

आहारक—यह श्वेत रंग का पुरुषाकार एक हाथ ऊँचा किसी तपस्वी मुनि के दशम द्वार मस्तक से निकल कर केवली महाराज के दर्शन को जाकर लौट आता है।

ये तीन शरीर आहारक वर्गणाओं से बनते हैं।

तैजस—एक बिजली मई शरीर सूक्ष्म है जो सर्व संसारी जीवों के पाया जाता है। यह तैजस वर्गणाओं से बनता है।

कार्मण—यह पाप पुण्यरूप आठकर्म मई सूक्ष्मशरीर सर्वसंसारी जीवों के कार्मण वर्गणा से बनता रहता है।

भावार्थ—शब्द, बँध, सूक्ष्म, स्थूल, शरीराकार, खण्ड, अन्धकार, छाया, उद्योत, आतप ये दश पुद्गल की अवस्थाओं के दृष्टान्त हैं।

इस समय हमारे पास तीन शरीर हैं औदारिक जिस के छूटने का नाम ही मरण है, तैजस और कार्मण ये प्रवाहरूप से साथ २ रहते हैं, मुक्ति होते हुए ही छूटते हैं।

ये पांचों शरीर एक दूसरे से सूक्ष्म हैं परन्तु परमाणु अधिकर हैं। तैजस कार्मण दो शरीरों को लिये हुए जीव एक स्थूल शरीर से दूसरे में एक, दो या तीन समयके बीचमें लगा कर बिना किसी रुकावट के तुरन्त पहुंच जाते हैं। सबसे छोटे कालको समय कहते हैं। जितनी देर में एक परमाणु एक कालाणु से पासवाली कालाणु पर मन्दगति से जाता है वह समय है। एक पलक मारने में असंख्यात समय बीत जाते हैं। ‡

(३२) मन और वाणी का निर्माण

जीवों के शब्द व वचन भी भाषावर्गणा जाति के स्कन्धों से बनते हैं। ये स्कन्ध भी सर्वत्र फैले हुए हैं। हमारे होठ तालु के सम्बन्ध से भाषावर्गणा से शब्द बनजाते हैं तथा

---

‡ औदारिक वैक्रियिकाहारक तैजस कार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥
परं परं सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥
प्रदेशतो ऽसंख्येय गुणम् प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥
अनन्त गुणे परे ॥ ३९ ॥
अप्रतीघाते ॥ ४० ॥
अनादि सम्बन्धेच ॥ ४१ ॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥
(त० सू० अ० २)

उनकी तरंगें वहां तक जाती हैं जहां तक धक्का अपना बल रखता है। शब्द भी मूर्तीक जड़ है क्योंकि वह रुक जाता है ऐसा ही सायंस ने भी सिद्ध किया है। मन आंख कान की तरह एक विशेष कमल के आकार हृदय के स्थान में मनोवर्गणा जाति के पुद्गल स्कन्धों से बनता है जो बहुत सूक्ष्म हैं व लोक में भरे हैं। जिन जीवों के यह मन होता है वे ही इसके द्वारा तर्क वितर्क कर सकते हैं व शिक्षादि ग्रहण कर सकते हैं। *

---

* शरीर वाङमनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १७ ॥

(त० सू० अ० ५)

भावार्थ-शरीर, वाणी, मन, स्वासोछ्वास बनाना पुद्गलों का काम है।

विकसिताष्टदल पद्माकारेण हृदयान्तर्भागे भवति,
तत्परिणमण कारण मनो वर्गणा स्कंधानाम् आगमनात्।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा २२६ संस्कृत टीका)

द्रव्य मन खिले हुए आठ पत्तों वाले कमल के आकार हृदय के अन्दर होता है। उस मन से बनने के कारण मनोवर्गणा जाति के स्कन्ध आते हैं।

द्रव्यमनःपुद्गलाः मनस्त्वेन परिणताइति पौद्गलिकम्।

(सर्वार्थसिद्धि अ० ५ सू० १६)

जो पुद्गल मनरूप से परिणमन करते हैं उन को द्रव्य मन कहते हैं। ऐसा ही कथन राजवार्तिक में इसी सूत्र की व्याख्या में है।

(३३) आस्रव तत्व

जिन आत्माके भावों से व हरकतों से पाप पुण्य मई कार्मण वर्गणा खिचकर बंध के लिये आती हैं उनको भावास्रव कहते हैं और कर्मवर्गणाओं का जो आगमन है उसको द्रव्यास्रव कहते हैं। ‡

भावास्रव के पांच मुख्य भेद हैं—

(१) मिथ्यात्व--झूठा विश्वास। इसके पांच भेद हैं:—

१ एकान्त—पदार्थ में नित्य अनित्य दो स्वभाव होने पर भी एक ही मानना। आत्मा को सर्वथा शुद्ध या सर्वथा अशुद्ध ही मानना।

२ विनय—सत्य असत्य का ज्ञान न करके सर्वही विरोधी सिद्धान्तों से अपना लाभ मानके उनकी विनय करना, जैसे विना विचारे अरहंत, बुद्ध, कृष्ण, शिव सबही को पूजना।

३ संशय—यह शंका रखनी कि जैन सिद्धान्त ठीक है या बौद्ध या सांख्य या नैयायिक। किसीका भी विश्वास न होना।

४ विपरीत—बिल्कुल धर्म विरुद्ध बात में धर्म मान लेना। जैसे पशुओं की बलि से पुण्य होना।

---

‡ आसवदि जेणकम्मंपरिणामेणप्पणो स विएणेओ।
भावासवो जिणुत्तो दव्वासवणं परो होदि॥
(द्रव्यसंग्रह)

५ अज्ञान--धर्म के सिद्धान्त को समझने की चेष्टा न करके देखा देखी मूर्खता से धर्म में चलना। यह पांच तरह का मिथ्यात्व प्रगट है तथा शुद्ध ज्ञानानन्दमई आत्मा का विश्वास न करके सांसारिक विषय सुख को श्रद्धा रखनी भी मिथ्यात्व है।

(२) अविरति—पांच प्रकार है-हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, पदार्थों में ममता या परिग्रह।

(३) प्रमाद—आत्महित में अनादर, इस प्रमाद के भेद १५ भेदों से ८० प्रकार बनते हैं-५ इन्द्रिय, ४ क्रोधादि कषाय, ४ विकथा (स्त्री, भोजन, देश, राजा), १ निद्रा, १ स्नेह।

इनको परस्पर गुणा करने से ८० भेद होते हैं। १ प्रमाद भाव में १ इन्द्रिय, १ कषाय, १ विकथा तथा निद्रा और स्नेह ये पांचों पाये जावेंगे। जैसे किसी ने जिह्वा के लोभ से चोरी करनेका भाव किया, इसमें जिह्वा इन्द्रिय, लोभ कषाय, भोजन विकथा, निद्रा व स्नेह पाँचों हैं।

(४) कषाय-क्रोध, मान, माया, लोभ चार प्रकार हैं।

(५) योग-तीन प्रकार मन, वचन, काय का हलन चलन।

इस तरह भावास्रव के ३२ भेद हैं। *

वास्तव में आत्मा में एक योग शक्ति है जो पुद्गलों को खींचती है। जिस समय मन, वचन, काय की क्रिया होती है

---

* मिच्छत्ता विरदि पमाद जोग कोहादओऽथ विण्णेओ।
पण पण पण दह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स॥

(द्रव्य संग्रह)

उसी समय आत्मा सकम्प हो जाता है तब ही योग शक्ति मिथ्यात्व आदि के कारण से विशेषरूप होती हुई कर्मों को और नो कर्मों (औदारिक आदि के बनने योग्य स्कंधों) को खींच लेती है।

(३४) बन्धतत्व

जिन आत्मा के भावों व हरकतों से कर्म वर्गणाएं जो बंधने को आई हैं आत्मा के पूर्व में बंधे हुए कर्मों के साथ मिलकर आत्मा के प्रदेशों में ठहर जाती हैं उनको भाव बंध व कर्मों का बंधरूप होकर ठहर जाने को द्रव्य बंध कहते हैं। *

इस बंध के चार भेद हैं। (१) प्रकृति बंध-जो कर्म बंधते हैं उनमें अपने काम करने का स्वभाव पड़ना। ऐसी प्रकृतियां मूल आठ हैं व उनके भेद १४८ हैं। (२) प्रदेश बंध-जो कर्म जिस प्रकृति के बंधें उनमें वर्गणाओं की संख्या होना। (३) स्थिति बंध-कर्मों का बंध किसी काल की मर्यादा के लिये होना। (४) अनुभाग बंध-फल देते समय तीव्र या मन्द फल देना। मन, वचन, काय योगों के निमित्त से आत्मा के सकंप होते हुए योग शक्ति के द्वारा तो पहले दो बंध और क्रोधादि

---

* बज्झदि कम्मं जेणदु चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो॥

(द्रव्यसंग्रह)

कषाय की तीव्रता या मन्दता के अनुसार पिछले दो बन्ध होते हैं। *

(३५) आठ कर्म प्रकृति व १४८ भेद

मूल कर्म प्रकृतियां आठ हैं—(१) ज्ञानावरण जो आत्मा के ज्ञान गुण को ढके (२) दर्शनावरण जो आत्मा के दर्शन (सामान्यपने देखने) गुण को ढके (३) वेदनीय जो सांसारिक सुख दुःखों की सामग्री जोड़कर सुख दुःख का भोग करावे। (४) मोहनीय जो आत्मा के श्रद्धान और चारित्र (शान्ति) को बिगाड़े (५) आयु जो किसी शरीर में आत्मा को रोक रक्खे (६) नाम जो शरीर की अच्छी बुरी रचना करे। (७) गोत्र जो ऊँच नीच कुल में जन्म करावे। (८) अन्तराय जो लाभ, भोग, उपभोग, दान व आत्मा के उत्साह या वीर्य में विघ्न करे।

इनमें से नं १, २, ४, व ८ को घातिया कर्म कहते हैं क्यों कि ये चारों आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सम्यग्दर्शन और चारित्र तथा आत्मबल के गुणों का नाश करते हैं। शेष चार बाहरी सामग्री जोड़ते हैं इस लिये वे अघातिया हैं।

इन के १४८ भेद इस तरह से हैं:—

---

* पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेसबंधादु चदुविधो बन्धो।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंदि॥
(द्रव्यसंग्रह)

[१] ज्ञानावरण के पांच भेद-(१) मति ज्ञानावरण (२) श्रुत ज्ञानावरण (३) अवधि ज्ञानावरण (४) मनःपर्यय ज्ञानावरण (५) केवल ज्ञानावरण। ये क्रम से मति आदि ज्ञानों को ढकती हैं।

[२] दर्शनावरण की ९ प्रकृतियां-(६) चक्षुर्दर्शनावरण जो आंख से सामान्य निराकार दर्शन को रोके (७) अचक्षुर्दर्शनावरण जो आंख के सिवाय अन्य इन्द्रिय और मन द्वारा सामान्य अवलोकन को रोके (८) अवधि दर्शनावरण जो अवधिज्ञान के पहले होने वाले दर्शन को रोके (९) केवल दर्शनावरण जो पूर्ण दर्शन को रोके (१०) निद्रा जिससे कुछ नींद हो (११) निद्रानिद्रा जिससे गाढ़ी नींद हो (१२) प्रचला जिससे बैठे २ ऊँघे [१३] प्रचला प्रचला जिससे खूब ऊँघे मुँह से राल बहे [१४] स्त्यानगृद्धि जिससे नींद में कोई काम करलेवे और सो जावे।

[३] वेदनीय की २ प्रकृतियां—[१५] सातावेदनीय जो साताभोग करावे [१६] असाता वेदनीय जो दुःख भोग करावे।

[४] मोहनीय की २८ प्रकृतियां—

[१] दर्शन मोहनीय की तीन-[१७] मिथ्यात्व जिससे सत्य तत्वों में श्रद्धा न हो [१८] सम्यग्मिथ्यात्व या मिश्र जिससे सत्य असत्य तत्वों में मिश्रित श्रद्धा हो [१९] सम्यक्त्व जिससे सत्य श्रद्धा में कुछ मल लगे।

[२] चारित्र मोहनीय की २५ प्रकृतियां—१६ कषाय-[२०] अनन्तानुबंधी क्रोध जिससे सम्यग्दर्शन और स्वरूप में आचरणरूप चारित्र का घात हो। ऐसे ही [२१] अनंतानुबन्धी मान [२२] अनन्तानुबन्धी माया [२३] अनन्तानुबन्धी लोभ। [२४] अप्रत्याख्यानावरण क्रोध जिससे श्रावक

गृहस्थ के व्रत न हो सकें। ऐसे ही [२५] अप्रत्याख्याना-वरण मान [२६] अप्रत्याख्यानावरण माया [२७] अप्रत्या-ख्यानावरण लोभ। [२८] प्रत्याख्यानावरण क्रोध, जिससे साधु के व्रत न होसकें। ऐसे ही [२९] प्रत्या० मान [३०] प्रत्या० माया [३१] प्रत्या० लोभ। [३२] संज्वलन क्रोध जिससे पूर्ण यथाख्यात चारित्र न होसके। ऐसे ही [३३] संज्वलनमान [३४] संज्वलन माया [३५] संज्वलन लोभ। नो कषाय या अल्प कषाय ९—[३६] हास्य जिससे हंसी आवे [३७] रति जिससे इन्द्रिय विषयों में प्रीति हो [३८] अरति जिससे कुछ न सुहावे [३९] शोक जिससे सोच करे [४०] भय जिससे डरे [४१] जुगुप्सा जिससे ग्लानि करे [४२] स्त्री वेद जिससे पुरुषसे रमने की चाह हो [४३] पुरुष वेद जिससे स्त्री से रमने की चाह हो [४४] नपुंसक वेद जिससे दोनों से रमने की चाह हो।

[५] आयुकर्म की चार प्रकृतियां—[४५] नरक आयु जिससे नारकी के शरीर में रहे [४६] तिर्यंच आयु जिससे एकेन्द्री से पंचेन्द्री पशु के शरीर में रहे [४७] मनुष्य आयु जिससे मानवदेह में रहे [४८] देव आयु जिससे देव शरीर में रहे।

[६] नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियां-(४९) नरकगति जिससे नरक में जाकर नारकी की अवस्था पावे (५०) तिर्यग्गति-जिससे तिर्यंच की दशा पावे (५१) मनुष्यगति-जिससे मनुष्य की दशा पावे (५२) देवगति-जिससे देव की दशा पावे (५३) एकेन्द्रिय-जाति-जिससे स्पर्शन इन्द्रिय वाले जीवों की किस्म में जन्मे (५४) द्वीन्द्रिय जाति-स्पर्शन रसना दो इन्द्रिय वालों की जाति में जन्मे (५५) तेइन्द्रिय जाति-जिससे स्पर्शन, रसना, घ्राण,

तीन इन्द्रिय वालों की जाति पावे (५६) चतुरिन्द्रिय जाति-जिससे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु चार इन्द्रिय वालों की जाति हो (५७) पंचेन्द्रिय जाति-जिससे कर्ण सहित पांचों इन्द्रिय वाली जाति पावे। (५८) औदारिक शरीर-जिससे औदारिक शरीर बनने योग्य वर्गणा लेकर वैसा शरीर बने (५९) वैक्रियिक शरीर—जिससे वैक्रियिक शरीर बने (६०) आहारक शरीर-जिससे आहारक शरीर बने (६१) तैजस शरीर-जिस से तैजस शरीर बने (६२) कार्मण शरीर-जिससे कार्मण शरीर बने (६३) औदारिक आङ्गोपाङ्ग-जिससे औदारिक शरीर में आंगोपांग बने-१ मस्तक, १ पेट, १ पीठ, दो बाहु, दो टांग, १ कमर के नीचेका स्थान ये आठ अंग होते हैं, इनके अंशों को उपांग कहते हैं। (६४) वैक्रियिक आंगोपांग-जिससे वैक्रियिक शरीर में आंगोपांग बनें (६५) आहारक आंगोपांग—आहारक शरीर में आंगोपांग बनें (६६) स्थान निर्माण-जिससे आंगोपांग का स्थान बने (६७) प्रमाण निर्माण-जिससे उनकी माप बने (६८) औदारिक शरीर बंधन-जिससे औदारिक शरीर बनने योग्य पुद्गल का परस्पर मेल हो (६९) वैक्रियिक शरीर बंधन-जिससे वैक्रियिक शरीर के बनने योग्य पुद्गल का मेल हो (७०) आहारक शरीर बंधन-जिससे आहारक शरीरके बनने योग्य पुद्गलका मेल हो (७१) तैजस शरीर बन्धन-जिससे तैजस शरीरके पुद्गलका मेल हो (७२) कार्मण शरीर बन्धन-जिस से कार्माण शरीर के पुद्गल का मेल हो (७३) औदारिक शरीरसंघात-जिस से औदारिक शरीर की रचना में छिद्र रहित पुद्गल हो जावें (७४) वैक्रियिक शरीर संघात-जिससे वैक्रियिक शरीर में पुद्गल काय रूप हो (७५) आहारक शरीर संघात-जिससे आहारक शरीर में पुद्गल काय रूप हो [७६]

तैजस शरीर संघात-जिस से तैजस शरीर में पुद्गल काय रूप हों। [७७] कार्मण शरीर संघात-जिससे कार्मण शरीर में पुद्गल काय रूप हों [७८] समचतुरस्र संस्थान जिस से शरीर का आकार सुडौल हो [७९] न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान जिस से आकार वड़ के सामान ऊपर बड़ा और नीचे छोटा हो [८०] स्वाति संस्थान-जिससे सांपकी बंबईके समान ऊपर छोटा और नीचे बड़ा आकार हो [८१] कुब्जक संस्थान-जिससे कुबड़ा आकार हो [८२] वामन संस्थान-जिससे बहुत छोटा बौना आकार हो [८३] हुंडक संस्थान-जिस से वेडौल आकार हो [८४] वज्र वृषभ नाराच संहनन-जिस से नसों के जाल हड्डियों की कीलें व हड्डियां वज्र के समान दृढ़ हों [८५] वज्र नाराच संहनन-जिस से कीलें और हड्डी वज्र के समान हों [८६] नाराच संहनन-जिस से हड्डियां दोनों तरफ कीलों से दृढ़ हों [८७] अर्ध नाराच संहनन-जिस से हड्डियां एक तरफ कीलदार हों [८८] कीलक संहनन-जिस से हड्डियां एक दूसरे में कील दी हों [८९] असंप्राप्तसृपाटिका संहनन-जिस से हड्डियां मांस से जुड़ी हों [९०] कर्कश स्पर्श-जिस से शरीर का स्पर्श कठोर हो [९१] मृदु स्पर्श-जिस से शरीर को स्पर्श कोमल हो [९२] गुरु स्पर्श-जिस से स्पर्श भारी हो [९३] लघु स्पर्श-जिस से स्पर्श हलका हो [९४] स्निग्ध स्पर्श-जिस से स्पर्श चिकना हो [९५] रूक्ष स्पर्श-जिस से स्पर्श रूखा हो [९६] शीत स्पर्श-जिस से स्पर्श ठंडा हो [९७] उष्ण स्पर्श-जिस से स्पर्श गर्म हो [९८] तिक्त रस-जिससे शरीर के पुद्गलों का स्वाद कडुआ हो [९९] कटुक रस-जिस से चरपरा हो [१००] कषायरस-जिस से कषायला हो [१०१] आम्ल रस-जिस से स्वाद

खट्टा हो [१०२] मधुररस-जिस से मीठा हो [१०३] सुरभिगन्ध -जिससे गन्ध सुहावनी हो [१०४] असुरभि गन्ध-जिससे गन्ध बुरी हो [१०५] शुक्ल वर्ण जिस से शरीर का रंग सफेद हो [१०६] कृष्ण वर्ण-जिस से रंग काला हो [१०७] नील-वर्ण-जिससे वर्ण नीला हो [१०८] रक्तवर्ण—जिससे वर्ण लाल हो (१०९) पीतवर्ण-जिससे वर्ण पीला हो (११०) नरकगत्यानुपूर्वी-जिससे नरकगति को जाते हुए पूर्व शरीर के आकार आत्मा विग्रहगति अर्थात् एक शरीर से दूसरे शरीर में जाते हुए रहे (१११) तिर्यंचगत्यानु पूर्वी-जिससे तिर्यंचिगति को जाते हुए पूर्वाकार रहे। (११२) मनुष्य गत्यानुपूर्वी-जिससे मनुष्य गति में जाते हुए पूर्वाकार हो (११३) देवगत्यानुपूर्वी-जिससे देव गतिमें जाते हुए पूर्वाकार हो (११४) अगुरु लघु-जिससे न शरीर बहुत भारी हो न बहुत हलका हो (११५) उपघात-जिससे अपने अंग से अपना घात करे (११६) परघात- जिससे परका घात करे (११७) आतप-जिससे शरीर मूल में ठण्डा हो परन्तु उसकी प्रभा गरम हो, जैसा सूर्यविमान के पृथ्वी कायिक जीवोंमें है। (११८) उद्योत-जिससे शरीर प्रकाशरूप हो, जैसा चन्द्रविमान के पृथ्वीका-यिक जीवों में, व पटबीजना आदि द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतु-रिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवों में है। (११९) उच्छ्वास-जिससे श्वांस चले (१२०) विहायोगति-जिससे आकाश में गमन शुभ व अशुभ हो (१२१) प्रत्येक शरीर-जिससे एक शरीर का स्वामी एक जीव हो (१२२) साधारण शरीर-जिससे एक शरीर के स्वामी अनेक जीव हो (१२३) त्रस-जिससे द्वीन्द्रियादि में जन्मे (१२४) स्थावर-जिससे एकेन्द्रिय में जन्मे (१२५) सुभग-जिससे दूसरा शरीर से प्रेम करे (१२६)

दुर्भग-जिस से दूसरा अप्रीति करे (१२७) सुस्वर-जिस से स्वर सुहावना हो (१२८) दुःस्वर-जिससे स्वर असुहावना हो (१२९) शुभ—जिससे सुन्दर शरीर हो (१३०) अशुभ-जिससे कुरूप हो (१३१) सूक्ष्म-जिससे ऐसा शरीर हो जो कहीं भी न रुके न किसी से मरे (१३२) बादर-जिससे शरीर रुक सके व बाधा पावे व दूसरेको रोके (१३३) पर्याप्ति-जिससे आहार, शरीर, इन्द्रिय, उछ्वास, भाषा व मन इन छहों के बनने की योग्यता नवीनगति में अन्तर्मुहूर्त में पा सके (१३४) अप-र्याप्ति-जिससे आहारादि बनने की योग्यता न पाकर अन्त-र्मुहूर्त में ही मरण करजावे (१३५) स्थिर-जिससे शरीर में वायु पित्त कफादि स्थिर हों (१३६) अस्थिर-जिससे पित्तादि स्थिर न हों (१३७) आदेय-जिससे प्रभावान शरीर हो (१३८) अनादेय—जिससे प्रभा रहित शरीर हो (१३९) यशःकीर्ति—जिससे यश हो (१४०) अयशःकीर्ति-जिससे अयश हो। (१४१) तीर्थंकर-जिससे तीर्थंकर होकर धर्म मार्ग फैलावे।

[७] गोत्र कर्म की २ प्रकृतियां—(१४२) उच्चगोत्र जिससे लोक माननीय कुल में जन्मे (१४३) नीच गोत्र जिससे लोकनिंद्य कुल में जन्मे।

[८] अन्तराय कर्मकी ५ प्रकृतियां-(१४४) दानान्तराय जिससे दान करना चाहे पर न कर सके (१४५) लाभान्त-राय जिससे लाभ लेना चाहे वह न ले सके (१४६) भोगा-न्तराय जिससे भोगना चाहे पर न भोग सके (१४७) उप-भोगान्तराय जिससे वार बार भोगना चाहे पर न भोग सके (१४८) वीर्यान्तराय जिससे उत्साह करे पर कुछ कर न सके।*

---

* आद्योज्ञान दर्शनावरण वेदनीय मोहनीयायुर्नाम गोत्रान्तरायाः ॥ ४ ॥

(३६) आठ कर्मों में पुण्यपाप भेद

मूल आठ कर्मों में सातावेदनीय, उच्चगोत्र, शुभनाम, शुभ आयु पुण्यकर्म हैं शेष सब पापकर्म हैं ।

१४८ में पुण्यकर्म

३ आयुकर्म की— तिर्यंच, मनुष्य, देव ।

६३ शुभ नामकर्म की—(१) मनुष्यगति (२) देवगति, (३) पञ्चेन्द्रिय जाति (४-१८) औदारिकादि ५ शरीर बन्ध संघात (१९-२१) तीनआंगापांग (२२) समचतुरस्र संस्थान (२३) वज्र वृषभनाराच संहनन (२४-४३) शुभ स्पर्शादि (४४-४५) मनुष्य देव गत्यानुपूर्वी (४६) अगुरुलघु (४७) परघात (४८) उच्छ्वास (४९) आतप (५०)

मतिश्रुतावधि मनः पर्यय केवलानां ॥ ६ ॥ चक्षुरचक्षुरवधि केवलानां निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचलास्त्यान गृद्धयश्च ॥ ७ ॥ सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥ दर्शन चारित्र मोहनीयाकषाय कषाय वेदनीयाख्यास्त्रि द्विनव षोडश भेदाः सम्यक्त्व मिथ्यात्व तदुभयान्य कषायकषायौ हास्य रत्यरति शोकभय जुगुप्सा स्त्री पुं नपुंसक वेदाः अनन्तानुबन्ध्य प्रत्याख्यानप्रत्याख्यान संज्वलन विकल्पाश्चैकशः क्रोधमान मायालोभाः ॥ ९ ॥ गति जाति शरीरांगोपांग निर्माण बन्धन संघात संस्थान संहनन स्पर्श रसगन्ध वर्णानुपूर्व्य गुरुलघूपघात परघाता तपो द्योतोच्छ्वास विहायोगतयः प्रत्येक शरीर त्रस सुभग सुस्वर शुभ सूक्ष्म पर्याप्ति स्थिरादेय यशःकीर्ति सेतराणि तीर्थंकरत्वंच ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥ दान लाभ भोगोपभोग वीर्याणाम् ॥ १३ ॥

(तत्त्वार्थसूत्र अ० ८)

उद्योत (५१) विहायोगतिशुभ (५२) त्रस (५३) बादर (५४) पर्याप्ति (५५) प्रत्येक शरीर (५६) स्थिर (५७) शुभ (५८) शुभग (५९) सुस्वर (६०) आदेय (६१) यशःकीर्ति (६२) निर्माण (६३) तीर्थंकर।

१ उच्चगोत्र, १ सातावेदनीय सर्व प्रकृतियां ६८ पुण्यरूप हैं शेष ४७ घातिया कर्मों की, १ असाता वेदनीय, १ नीच गोत्र, १ आयु व ५० नामकर्म की कुल १०० पाप प्रकृतियां हैं।

यहां स्पर्शादि २० को दो जगह गिनने से १६८ प्रकृतियां होती हैं।

नोट—ऊपर कर्म के भेदों में निर्माण को दो व विहायो गति को एक गिना था यहाँ पुण्य पाप में विहायोगति को शुभ व अशुभ दो रूप गिन के निर्माण को एक गिना है।*

[सर्वार्थसिद्धिः]

(३७) प्रदेश–स्थिति–अनुभागबंध

हर एक संसारी जीवके जबतक वह अर्हंत पदवीके निकट न पहुंचे सातों कर्मों के बंधने योग्य अनन्त कार्मण वर्गणाएं हर समय में आती रहती हैं, आयु कर्म के योग्य हर समय में नहीं आतीं। इस कर्म भूमि के मनुष्य तिर्यंचों के लिये आयु कर्म के बंध का यह नियम है कि जितनी आयु हो उसके दो तिहाई बीतने पर अन्तर्मुहूर्त के लिये आयु बंध का समय

---

* सद्वेद्य शुभायुर्नाम गोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

[तत्वा० अ० ८]

आता है उसमें बांधे या न बांधे फिर शेष आयु में दो तिहाई बीतने पर दूसरा अवसर आता है। इसी तरह आठ अवसर आते हैं। यदि कोई इनमें भी न बाँधे तो मरण के अन्तर्मुहूर्त पहले आगे के लिये आयु कर्म अवश्य बांधा जाता है। जैसे किसी की आयु ८१ वर्ष की है तो ५४ वर्ष बीतने पर पहला फिर २७ में से १८ वर्ष बीतने पर दूसरा अवसर आयगा; इसी तरह समझ लेना।

उन कर्म वर्गणाओं का जो एक समय में आती हैं जितनी प्रकृतियें बंधती है उनमें हिस्सा होजाता है-यह प्रदेशबंध है। आत्मा से कर्म सब तरफ बंधते हैं किसी एक खास भाग में नहीं। ‡

जितनी कर्म प्रकृतियां बँधती हैं उनमें काल की मर्यादा पड़ती है यह स्थिति बंध उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य क्रोधादि कषायों के आधीन पड़ता है। आठों कर्मों की उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति इस तरह है, मध्य के अनेक भेद हैं।

कर्म	उत्कृष्ट	जघन्य
१ ज्ञानावरणीय	३०कोड़ाकोड़ीसागर	अन्तर्मुहूर्त
२ दर्शनावरणीय	३० " "	"
३ वेदनीय	३० " "	१२ मुहूर्त
४ मोहनीय	७० " "	अन्तर्मुहूर्त
५ आयु	३३ सागर	अन्तर्मुहूर्त

‡ नाम प्रत्ययाः सर्वतो योग विशेषात्सूक्ष्मैक क्षेत्रावगाह स्थिताः सर्वात्म प्रदेशेष्वनन्तानंत प्रदेशाः ॥२४॥

[तत्वा० अ० ८]

६ नाम	२० कोड़ाकोड़ी सागर	आठ मुहूर्त
७ गोत्र	२० " "	" "
८ अन्तराय	३० " "	अन्तर्मुहूर्त

कोई कर्म वर्गणाएं अपनी स्थिति से अधिक बंधी हुई नहीं रह सकती हैं, अवश्य झड़ जायँगी।*

इन्हीं बंधते हुए कर्मोंमें कषाय के निमित्त से तीव्र या मंद फल देने की शक्ति होजाती है उसे अनुभाग कहते हैं।

ज्ञानावरणीय आदि चार घातिया कर्मों का अनुभाग लता (बेल), दारु (काष्ठ), अस्थि (हड्डी), पाषाण के समान मन्दतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर पड़ता है। अघातिया कर्मों में जो असाता आदि पाप कर्म हैं उनका अनुभाग नीम, कांजी, विष, हलाहलके समान मंदतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर कटुक पड़ता है। अघातिया कर्मों में साता आदि पुण्य कर्मों का अनुभाग गुड़, खांड, शर्करा, अमृत के समान मंदतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर मधुर पड़ता है, आयुकर्मको छोड़कर सात कर्मोंकी स्थिति यदि कषाय अधिक होगी तो अधिक पड़ेगी, कम होगी तो कम पड़ेगी परंतु पाप कर्मोंका अनुभाग तीव्र कषायसे अधिक पड़ेगा, मंद कषाय से कम पड़ेगा। पुण्य कर्मों का अनुभाग मंद कषाय से अधिक व तीव्र कषाय से अल्प पड़ेगा। मंद कषाय से शुभ आयु की स्थिति अधिक होगी, तीव्र कषाय से कम। ऐसे ही

---

* आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम कोटी कोट्यः परास्थितिः ॥ १४ ॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः॥ १७ ॥ अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥ शेषाणामंतर्मुहूर्ता ॥ २० ॥

(तत्वा० अ० ८)

तीव्र कषाय से अशुभ आयु की स्थिति अधिक होगी मंद से कम। ‡

(३८) आठों कर्मों के बंधके विशेष भाव

यद्यपि शुभ या अशुभ भावों से हर समय हर एक जीवके आठ या सात कर्म की प्रकृतियोंका बंध होता है तथापि जिस जाति के विशेष भाव होते हैं उन भावों से उस विशेष कर्म में अधिक अनुभाग पड़ता है। वे विशेषभाव नीचे प्रकार जानना चाहिये :—

१ ज्ञानावरण और दर्शनावरण के लिये विशेष भाव—

१. सच्चे ज्ञान व ज्ञानियों से द्वेष भाव २. आप ज्ञानी हो करके भी अपने ज्ञान को छिपाना ३. ईर्षा से दूसरों को ज्ञान दान न करना ४. ज्ञान की उन्नति में विघ्न करना ५. ज्ञान व ज्ञानी का अविनय करना ६. उत्तम ज्ञान का भी कुयुक्ति से खण्डन करना।

२ असाता वेदनीय कर्म के भाव—

अपने को आप या दूसरों को या आप पर दोनों को (१) दुःख देना (२) शोकित करना (३) पश्चाताप कराना (किसी वस्तु के छूटने पर व न मिलने पर पछताना) (४) रुलाना (५) मारना (६) ऐसा रुलाना कि दूसरों को दया आजावे।

---

‡ विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

३ साता वेदनीय कर्म के भाव—

(१) सर्व प्राणीमात्र पर दयाभाव (२) व्रती धर्मात्माओं पर विशेष दयाभाव (३) आहार, औषधि, विद्या व अभय या प्राणदान ऐसे चार दानकरना (४) साधु का धर्म प्रेम सहित पालना (५) श्रावक गृहस्थ का धर्म पालना (६) समताभाव से दुःख सहलेना (७) तपस्या करना (८) ध्यान करना (९) क्षमाभाव रखना (१०) पवित्रता या संतोष रखना।

४ दर्शन मोहनीय बंध के विशेष भाव—

[१] केवली अरहंत भगवान की मिथ्या बुराई करना [२] सच्चे शास्त्रों में झूठा दोष लगाना [३] मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका के संघ में मिथ्या दोष लगाना [४] सच्चे धर्म की बुराई करना [५] देवगति के प्राणियों की मिथ्या बुराई करना कि देवतागण मांस खाते हैं आदि।

५ चारित्रमोहनीय बंध के भाव—

क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय भावों में बहुत तीव्रता रखना।

६ नरक आयुबंध के विशेष भाव—

मर्यादा से अधिक बहुत आरंभ व्यापार करना और संसार के पदार्थों में ममत्व रखना।

७ तिर्यंच आयुबंध के भाव—

परिणामों में कुटिलाई या मायाचार रखना।

८ मनुष्य आयुवंध के भाव—

मर्यादारूप थोड़ा आरंभ व्यापार करना और थोड़ा ममत्व रखना, तथा स्वभाव से कोमल और विनयरूप रहना।

९ देवआयु के बंध के विशेष भाव—

(१) सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्चे तत्वों में विश्वास रखना (२) साधु का संयम (३) श्रावक का संयम (४) समताभाव से दुख सहना (५) तपस्या करना आदि।

१० अशुभ नाम कर्म के भाव—

१. मनको कुटिल रखना २. वचन मायाचार रूप कुटिल बोलना ३. शरीर को कुटिलता से व वक्रता से वर्ताना ४. कलह लड़ाई करना।

११ शुभ नाम कर्मके भाव—

१. मनमें सीधापन रखना २. वचन सीधा हितकारी बोलँना ३ कायको सरल कुटिलता रहित वर्ताना ४. झगड़ा न करके प्रेम रखना।

१२ तीर्थंकर नाम कर्म के विशेष भाव—

नीचे लिखी १६ प्रकार की भावनाओं को बड़े भाव से करना—

१. दर्शन विशुद्धि-हमारी श्रद्धा निर्मल रहे २ विनय सम्पन्नता, हम धर्म व धर्मियों में आदर करें ३. शील व्रतेष्वनती-

चार, हम शील और व्रतों में दोष न लगावें ४ अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, हम सदा ज्ञान का अभ्यास करें ५. संवेग, हम संसार शरीर भोगों से वैराग्य रखें ६. शक्तितस्त्याग, हम शक्ति न छिपाकर दान करते रहें ७. शक्तितस्तप, हम शक्ति न छिपाकर तप करते रहें ८. साधु समाधि, हम साधुओं का कष्ट दूर करते रहें ९. वैयावृत्य, हम गुणवानों की सेवा करते रहें १०. अर्हद्भक्ति, हम अरहंतों की भक्ति पूजा में रत रहें ११. आचार्य भक्ति, हम गुरु महाराजों की भक्ति करते रहें १२ उपाध्याय भक्ति, हम ज्ञानदाता साधुओं की भक्ति में रत रहें १३. प्रवचन भक्ति, हम शास्त्रकी भक्ति में दत्त चित्त रहें १४. आवश्यकापरिहाण, हम अपने नित्य धर्म कृत्य को न छोड़ें १५. मार्ग प्रभावना, हम सच्चे धर्मकी उन्नति करते रहें १६. प्रवचनवात्सल्य, हम सर्व धर्मात्माओं से प्रेम रखें।

१३ नीच गोत्र बंधके विशेष भाव—

१. दूसरों की निन्दा करनी २. अपनी प्रशंसा करनी ३. दूसरों के होते हुए गुणों को ढकना ४. अपने न होते हुए गुणों को प्रकट करना।

१४ ऊँच गोत्र बंध के भाव—

१. दूसरों की प्रशंसा करनी २. अपनी निन्दा करनी ३. दूसरों के गुणों को प्रकट करना ४. अपने गुणों का ढकना ५. विनय से बर्ताव करना ६. उद्धतता या मान नहीं करना।

१५ अन्तराय कर्म बन्ध के भाव—

१. दान देते हुए को मना करना २. किसी को कुछ लाभ

होता हो उस में विघ्न कर देना ३. किसी के खाने पीने आदि भोगों में अन्तराय करना ४. किसी के वस्त्र, मकान; स्त्री आदि बार बार भोगने योग्य पदार्थों का वियोग करा देना ५. किसी अच्छे काम के उत्साह को भंग कर देना। †

(३९) आश्रव और बंध का एक काल

जिस समय कर्म वर्गणायें आती हैं उसी समय बंध जाती हैं। आश्रव और बन्ध के लिए कारण एक ही हैं जिन मिथ्या-दर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, योगों से आश्रव होता है- उन ही से बन्ध होता है । जैसे जिस नाव के छेद से पानी आता है वहीं ठहरता जाता है। पानीके आने व ठहरने का एक ही द्वार है। इसी तरह कर्मों के आने और बंधने का एक ही कारण है। कार्य दो हैं जैसे पानी का आना और ठहरना, वैसे कर्म वर्गणाओं का आना और उन का ठहरना । जिस समय जो आस्रव रुकता है उसी समय वह बन्ध भी रुकता है। जैसे जब छेद सेपानी आवेगा नहीं तो नाव में ठहरेगा भी नहीं।

(४०) कर्मों के फल देने की रीति

कर्मों में जो स्थिति पड़ जाती है उस के भीतर ही वे अपना फल देकर गिरते जाते हैं। जिस समय कर्म बंधते हैं उस के कुछ ही देर पीछे वे अपना फल देना प्रारंभ करते हुए जहां तक मर्यादा पूरी न हो फल दिया करते हैं ।

---

† इस के लिए देखो तत्वार्थ सूत्र अध्याय छठा

जितनी वर्गणायें जिस कर्म प्रकृति की बंधती हैं वे बट जाती हैं और थोड़ी २ हर समय फल प्रगट कर गिरती जाती हैं। जिस समय तक फल नहीं देतीं उस समयका नाम आबाधा काल है। इसका हिसाब यह है कि यदि स्थिति एक कोड़ा कोड़ी सागर की बांधी हो तो सौ वर्ष का आवाधा काल है। यदि अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर की स्थिति हो जो एक करोड़ सागर से ऊपर है तो आवाधा केवल एक अन्तर्मुहुर्त आवेगी यदि हज़ार सागर की हो व एक सागर की हो तो बहुत ही कम समय आयगा। कम से कम एक आवली (पलक मारने के समान) काल पीछे ही कर्म अपना फल दे सकेंगे। जैन सिद्धान्त में यह नियम नहीं है कि पूर्व जन्म का ही फल इस जन्म में हो व इस जन्म का आगे में हो। इस जन्म का बांधा कर्म इस जन्म में फल देता है व आगामी भी देगा व पूर्व जन्म में बांधा हुवा पहले भी फल देचुका है व अब भी दे रहा है व जबतक स्थिति पूरी न होगी देता रहेगा। यह बात ध्यान में रहे कि जैसा बाहरी निमित्त होगा वैसा कर्म फल देगा और जिस कर्म का बाहरी निमित्त न होगा वह कर्म अपने समय पर विना फल दिखाये चला जायगा। जैसा हमारे साथ क्रोध, मान, माया लोभ, चारों कषायोंका फल हर समय होना चाहिये अर्थात् इन कषायोंकी वर्गणाएँ हर समय गिरनी चाहिये। हम यदि १० मिनट तक आत्मध्यान में लय हो गये तो वे कर्म तो गिरते जायँगे परन्तु हमारे में क्रोधादिभाव न झलकेंगे, अथवा यह प्रगट है कि क्रोधभाव, मानभाव, मायाभाव, लोभभाव एक साथ नहीं होते--आगे पीछे होते हैं, जिस समय क्रोधभाव होरहा है तब क्रोधकी वर्गणाएँ तो फल देकर और शेष तीन कषायों की वर्ग-

णायें बिना फल देकर झड़ रही हैं। किसी जीव के साता वेदनीय असातावेदनीय दोनों अपने समय पर गिर रही हैं, यदि हम संकट में पड़े हैं व भूख से दुखी हैं तब असाताफल देकर व साता बिना फल दिये झड़ रही है। जिन कर्मों में वहुत तीव्र अनुभाग होता है वे अपने निमित्त अपने अनुकूल कर के फल देते हैं परन्तु जिनमें उतना तीव्र अनुभाग नहीं होता है वे निमित्त अनुकूल न होने पर यों ही झड़ जाते हैं। कर्मों के फल देने में हमको अपने स्थूल औदारिक शरीर का दृष्टान्त सामने रख लेना चाहिये। हम आपही नित्य भोजन, पान, हवा लेते हैं, आपही उससे रुधिर वीर्यादि वनाते हैं, आप ही उससे शरीर में वल पाते हैं और काम करते रहते हैं। कोई रोगकारी पदार्थ खा लिया था उसके परमाणुओं को राग पैदा करना चाहिये परन्तु हम पीछे ऐसे संयोगों में हैं जिनमें रोग नहीं हो सकता तो वे रोग पैदा करने वाले परमाणु योंही गिर जावेंगे अथवा कोई पौष्टिक औषधि खाई थी उससे पुष्टि होनी चाहिये, हम किसी समय निर्वलता के संयोगों में पड़ गये—मान लो दो दिन तक और भोजन न मिला तो वह पुष्ट औषधि के परमाणु उस समय पुष्टि न वनाकर यों ही गिर जावेंगे। जैसे कोई औषधि चार दिन, कोई चार मास कोई चार वरस में फल दिखाती है ऐसे ही कर्मों में हैं।

हम पहिले बता चुके हैं कि कोई परमात्मा हमको फल देने के झगड़े में नहीं पड़ता—स्वाभाविक नियम से ही हम आप ही कर्म वांधते आप ही फल भोगते हैं जैसे हम आप ही मदिरा पीते हैं आप ही वेहोश हो जाते हैं।

एक दफ़े कर्म वांध लेने के पीछे हम अपने अशुभ भावों से उन कर्मों की स्थिति व पाप कर्मों के अनुभाग को बढ़ा सक-

ते व पुण्य कर्मों के अनुभाग को कम कर सकते व पुण्य कर्मों को पाप कर्मों में बदल सकते हैं वैसे ही निर्मल भावों से स्थिति को घटा देते, पुण्य कर्मों में अनुभाग बढ़ा लेते तथा पाप कर्मों का अनुभाग कम करते तथा पाप कर्मों के पुण्य में बदल सकते हैं। जैसे एक दफ़े रोग का एक पदार्थ खाया हो फिर उसका विरोधी खालें तो उसके असर को हटा देते व कम कर देते हैं। कभी जो कर्म देरमें फल देने वाले थे वे बाहरी निमित्त पाकर जल्दी भी फल दे देते हैं। मुख्य हमारा पुरुषार्थ है।

(४१) पुरुपार्थ और दैव का स्वरूप

आत्मा के गुणों को कर्मों के दब जाने से व नाश हो जाने से जितनी प्रगटता होती है उसको पुरुपार्थ कहते हैं तथा जितना कर्म अपना फल देता रहता है उस फल को दैव कहते हैं। वास्तव में पुरुषार्थ आत्मा का गुण है, दैव ही पुण्य पाप है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का कुछ न कुछ असर सब जीवों के कम रहता है अर्थात् इनका क्षयोपशम होता है इसलिए आत्मा में ज्ञान, दर्शन, वीर्य की थोड़ी या अधिक प्रगटता रहा करती है। यही पुरुपार्थ है। अज्ञानी के मोहनीय कर्म दबता नहीं है। ज्ञानी के जितना दबता व नाश होता है उतना निर्मल श्रद्धान व शान्त भाव अर्थात् सम्यक्त्व और चारित्र गुण आत्मा का प्रगट होता है। यह भी पुरुषार्थ है।

चार अघातिया कर्म जबतक बिल्कुल नाश नहीं होते फल ही देते रहते हैं। इस लिये वे बिल्कुल दैव कहलाते हैं।

हमारा कर्तव्य यह है कि जितना ज्ञान व आत्मबल हमारा प्रगट है उससे विचार कर हम व्यवहार करें। जैसे हमने किसी व्यापार को विचार के साथ किया उसमें यदि साता वेदनीय का उदय होगा व अन्तराय का न होगा तो धन का समागम हो जायगा। यदि लाभ न हो तो समझना चाहिये कि असातावेदनीय और अन्तराय कर्म रूपी दैव का फल है। अपना पुरुषार्थ न करके दैव के भरोसे बैठना मूर्खता है, क्यों कि अघातिया कर्म निमित्त होने पर ही अपना फल देसकते हैं। यदि हम कोई व्यापार न करें. खाली बैठे रहें तो साता वेदनीय से जो धन आता सो बिना कारण के नहीं आसकेगा। एक बात याद रखना चाहिये कि जिस किसी के बहुत तीव्र पुण्य व पाप कर्मका उदय होता है उसके अकस्मात् लाभ या अलाभ भी होजाता है। जैसे कोई बालक गरीब के यहां पैदा हुवा और किसी धनवान की गोद चलागया व धनवान के यहां पैदा हुवा और पैदा होते ही पिता निर्धन होगया।

अपने भावों को कषाय रहित करने का पुरुषार्थ हम को सदा करते रहना चाहिये अर्थात् वीतराग मई जैनधर्म का साधन करते रहना चाहिये इससे हम अपने फल देने वाले दैवको बुरे से अच्छा कर सकेंगे व बहुत से पापों का नाशभी कर सकेंगे। धर्म पुरुषार्थ से हमें कभी बेखबर न रहना चाहिये।

(६२) संवर तत्व

हम आश्रव और बंध तत्व के कथन में यह बात दिखाचुके हैं कि आत्मा किस तरह अशुद्ध या बद्ध हुवा करता है अब यह उपाय बतलाना है कि हम बंधन से मुक्त कैसे हों। जैसे नावमें

पानी जिस छेद से आता हो उसको बंद करने से पानी न आवेगा, वैसे जिन भावों से कर्म आते हैं उनको रोक देने से कर्म न आवेंगे। इस लिये जिनभावों से आश्रवभावों को रोका जाता है वह भाव संवर है और वर्गणाओं का रुकजाना सो द्रव्य संवर है। †

सामान्य से मिथ्यात्व के रोकने के लिये सम्यग्दर्शन, अविरति के लिये व्रतों का पालन, प्रमाद हटाने के लिये अप्रमत्त भाव, कषाय के लिये वीतराग भाव, योग चंचलता के मिटाने के लिये मन, वचन, काय का निरोध, भाव संवर हैं।

विशेषता से भाव संवर पांच व्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दशलाक्षण धर्म, बारह भावना, बाईस परीषह जीतना व पांच प्रकार के चारित्र से होता है। * यह भी जानना चाहिये कि यह पुरुषार्थ जितना २ आश्रव भाव हटाता जायगा उतना २ संवर होता जायगा। जैसे किसी ने मिथ्यात्व व अनन्तानुबंधी कषाय हटा दिया तो मिथ्यात्व आदि के कारण जो कर्म बंधते थे सो न बंधेंगे, शेष अविरति आदि चार कारणों से बंधते रहेंगे।

---

† चेदण परिणामोजो कम्मस्सा सव णिरोहणे हेदु।
सो भावसंवरो खलु दव्वासव रोहणो अण्णो॥

[द्रव्यसंग्रह]

*वद समिदी गुत्तीओ धम्माणु पेहा परीसहजओय।
चारित्तंबहुभेयं णायव्वा भावसंवर विसेसा॥

[द्रव्य संग्रह]

(४३) पांच व्रत

१. अहिंसाव्रत--प्रमाद या कषाय सहित भाव से अपने या दूसरों के भाव प्राण चेतना, शान्ति आदि और द्रव्य प्राण इन्द्रिय बल आदि का नाश करना व उनको पीड़ित करना हिंसा है--इसका अभाव सो अहिंसा है। जिस समय हमारे में क्रोध भाव हुआ उसी समय हमने अपने भावप्राण ज्ञान व शांति को बिगाड़ा और शरीर के बल को घटा कर अपने द्रव्य प्राणघाते, फिर क्रोधवश हमने दूसरे को हानि पहुंचाई तब दूसरे ने यदि कुछ भी न गिना तो उसके भावप्राण रक्षित रहे पर शरीर व धन को हानि करने से द्रव्यप्राणों में हानि हुई परन्तु हम तो हिंसक हो चुके। हमारी लाठी मारने से दूसरा बच गया तो भी हम हिंसक होगये। जिसके द्रव्यप्राण अधिक हैं व अधिक उपयोगी हैं उसके घात में कषायभाव भी प्रायः अधिक होगा इससे हम हिंसा के भागी अधिक होंगे। जैसे मनुष्य के दशप्राण हैं व उपयोगी हैं इससे मनुष्य घात से विशेष पाप होगा। जलादि एकेन्द्रिय जीवों के आरम्भ बिना काम नहीं चल सकता इससे इनकी हिंसा से कषाय कम होने से पाप कम है। वास्तव में जहां कषाय है वहां भाव व द्रव्यप्राण की हिंसा है। जहां कषाय नहीं वहां भाव व द्रव्य हिंसा नहीं है।* जितनी हिंसा छोड़ेंगे उतना संवर होगा।

---

* प्रमत्त योगात्प्राण व्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

(तत्वा० अ० ७).

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

(पुरुषार्थः)

(२) सत्यव्रत-प्रमाद सहित होकर हानिकारक वचन कह देना सो असत्य है। असत्य का त्याग सो सत्य है।

(३) अचौर्य्यव्रत-प्रमाद सहित होकर दूसरेकी वस्तु गिरी पड़ी भूली विसरी उठा लेना व विन दी हुई लेना चोरी है। चोरी का त्याग अचौर्यव्रत है।

(४) ब्रह्मचर्य-मैथुन करना अब्रह्म है। अब्रह्म का त्याग ब्रह्मचर्य है।

(५) परिग्रह त्याग-चेतन अचेतन पर पदार्थों में मूर्च्छा ममत्व करना परिग्रह है। उसका त्याग परिग्रह त्यागव्रत है। क्योंकि धन धान्यादि परिग्रह के कारण हैं इस लिये इनके भी त्यागने से परिग्रह त्याग होता है। इन पांचों व्रतों को जितना पालेगा उतना संवर होगा। *

(४४) पांच समिति

अहिंसा की रक्षा के लिये साधु जन नीचे लिखी पांच समितियों को पालते हैं:—

१. ईर्यासमिति-दिन में जन्तु रहित भूमि पर चार हाथ आगे देखकर चलना २. भाषा समिति-शुद्धवचन निर्दोष

अर्थात्—प्रमाद सहित मन, वचन, काय से प्राणों का पीड़न हिंसा है। निश्चय से रागादि भावों का न प्रगट होना अहिंसा है तथा उनही का पैदा होजाना हिंसा है यह जैन शास्त्र का खुलासा है।

*असदभिधानमनृतम् ॥१४॥ अदत्तादानं स्तेयं ॥१५॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥१७॥ (तत्वा० ७)

बोलना ३. एषणासमिति–शुद्धभोजन जो गृहस्थ ने अपने कुटुम्ब के लिये तैयार किया हो उसमें से भिक्षारूप आकर भक्ति से दिये जाने पर लेना ४. आदान निक्षेपण समिति--अपना शरीर व अन्य वस्तु जो कुछ भी उठाना व रखना सो देख कर झाड़कर उठाना रखना ५. उत्सर्गसमिति–मल मूत्रादि जीव रहित स्थान परकरना। *

(४५) तीन गुप्ति

१. मनोगुप्ति--मनकी चंचलता का रोककर धर्म ध्यान में लीन रखना, सांसारिक भावनाओं से अलग रखना।

२. वचनगुप्ति–मौन रहना

३. कायगुप्ति--शरीर को निश्चल रखना। ‡

(४६) दशलाक्षण धर्म

[१] उत्तम क्षमा—दूसरे से कष्ट दिए जाने पर भो निर्बल हो या सबल हो बिलकुल क्रोध न कर के शान्त व प्रसन्न रहना।

[२] उत्तम मार्दव—ज्ञान तप आदि में श्रेष्ट होने पर सत्कार व अपमान किए जाने पर भी कोमल व विनयवान रहना–मान न करना।

---

* ईर्याभाषैषणादान निक्षेपणोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥

(तत्वा० अ० ९)

‡ सम्यग्योग निग्रहोगुप्तिः ॥ ४ ॥

(तत्वा० अ० ९)

[३] उत्तम आर्जव—मन, वचन, काय की सरलता रख कर कपट के भाव को न आने देना।

[४] उत्तम सत्य—अपने आत्मोद्धार के लिए सप्त तत्वों का श्रद्धान व ज्ञान रखते हुए सत्य वचन ही बोलना।

[५] उत्तम शौच—लोभ का त्याग कर मन में सन्तोष व पवित्रता रखनी।

[६] उत्तम संयम—भले प्रकार पांच इन्द्रिय व मन को वश रखना तथा पृथ्वी आदि छः प्रकार के जीवों की रक्षा करनी।

[७] उत्तम तप—अनशन. उपवास आदि बारह प्रकार तप के पालने में उत्साही रहना।

[८] उत्तम त्याग—मोह ममत्व न कर के सर्व प्राणी मात्र को अभय दान देना तथा पर प्राणियों को ज्ञान दान देना व अन्य प्रकार से उपकार करना।

[९] उत्तम आकिंचन्य—सर्व परिग्रह त्याग कर यह भाव रखना कि मेरा मेरे आत्मा सिवाय कोई परमाणु मात्र भी नहीं है।

[१०] उत्तम ब्रह्मचर्य—सर्व कामों के भावों को त्याग कर अपने ब्रह्म स्वरूप आत्मा में लीन होना व स्वस्त्री व परस्त्री का त्याग करना।

इन दश धर्मों को साधु जन भले प्रकार पालते हैं। *

---

* उत्तम क्षमा मार्दवार्जव सत्य शौच संयम तपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥ (तत्वा० अ० ९)

(४७) बारह भावना

जिन को बराबर चिन्तवन किया जावे उन को भावना कहते हैं वे बारह तरह की हैं।

[१] अनित्य—इस जगत में घर, पैसा, राज्य, स्त्री, पुत्र, मित्र, कुटुम्ब सब नाशवन्त हैं, इस से मोह न करना चाहिए।

[२] अशरण—जब पाप का तीव्र फल होता है या मरण आता है तो कोई मन्त्र, यन्त्र, वैद्य, रक्षक बचा नहीं सकते।

[३] संसार—चार गति रूप संसार में प्राणी इन्द्रिय विषयों की तृष्णा में फँसा हुआ रोग, शोक, वियोग के अपार कष्टों को भोगता हुआ सुख शान्ति नहीं पाता है।

[४] एकत्व—इस मेरे जीव को अकेला ही जन्मना, मरना व दुःख भोगना पड़ता है, मेरा आत्मा सब से निराला एक आनन्द मई अमूर्तीक है।

[५] अन्यत्व—मेरे आत्मा से शरीरादि व सर्व ही अन्य आत्मायें व अन्य पांचों द्रव्य बिलकुल भिन्न हैं।

[६] अशुचि—यह शरीर मल से बना है व कृमि मल मूत्र, हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओं से भरा है, रोएँ २ से मल बहता है, पवित्र जलादि को स्पर्श मात्र से अपवित्र कर देता है। इस तन से उदास रह आत्मोन्नति करना चाहिए।

[७] आश्रव—मन, वचन, काय के बर्तन से कर्म आते हैं जिससे प्राणी पराधीन हो जाते हैं।

[८] संवर—कर्मों के आने को रोकना ही जीव को हित है जिस से स्वाधीनता प्राप्त हो।

[९] निर्जरा—पूर्व में बांधे कर्मों को ध्यानादि तप कर के दूर करना ही श्रेष्ठ है।

[१०] लोक—यह लोक अनादि अनन्त अकृत्रिम है, छः द्रव्यों से भरा है। इस में एक सिद्ध क्षेत्र ही वास करने योग्य परम सुखदाई है।

[११] बोधिदुर्लभ—आत्मोद्धार का मार्ग जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र है उस का लाभ बड़ा कठिन है, अब हुआ है तो इसे रक्षित रखना योग्य है।

[१२] धर्म—धर्म आत्मा का स्वभाव है, यह मुनि व श्रावक के भेदसे दो तरह है। दश लक्षण रूप है, अहिंसा मई है, यही हितकारी है। *

(४८) बाईस परीषह जय

जिन को शान्त मनसे सहा जावे उनको परीषह कहते हैं। कष्टों के सहने से धर्म में दृढ़ता होती है व कर्मों का नाश होता है व संवर होता है। वे परीषह बाईस होती हैं। जिनको साधु महाराज ही विजय करते हैं—

---

* अनित्याशरण संसारैकत्वान्यत्वाशुच्याश्रव संवर निर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यात तत्वानु चिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

(तत्वा० ९)

(१) क्षुधा-भूख की बाधा (२) पिपासा-प्यास की बाधा (३) शीत-शरदी का कष्ट (४) उष्ण-गर्मी की बाधा (५) दंशमशक-डांस मच्छरों के काटने की बाधा (६) नाग्न्य-नग्न रहने की लज्जा (७) अरति-अमनोज्ञ पदार्थ मिलने पर अप्रीति (८) स्त्री-स्त्रियों के हाव भाव विलास का जाल (९) चर्या-मार्ग में पैदल चलने का कष्ट (१०) निषद्या-आसन से बैठने का कष्ट (११) शय्या-भूमि पर सोने की बाधा (१२) आक्रोश-गाली सुनने पर विकार (१३) वध-मारे पीटे जाने का दुःख (१४) याचना-मांगने की इच्छा (१५) अलाभ-भोजनादि में अन्तराय का खेद (१६) रोग-शरीर में रोगों की पीड़ा (१७) तृण स्पर्श-आते जाते कठोर तृणों का स्पर्श (१८) मल-शरीर मैला रहने का भाव (१९) सत्कार पुरस्कार-आदर सत्कार न होने से खेद (२०) प्रज्ञा-बहुत ज्ञानी होने का मद (२१) अज्ञान-ज्ञान न बढ़ने का खेद (२२) अदर्शन-तप माहात्म्य न प्रकट होने पर तप में अश्रद्धा ।

इन २२ परिषहों को जीत कर आत्म रस पान करते हुए शान्त मन रखने से परिषह जय होता है

(४९) पांच प्रकार चारित्र

[१] सामायिक—राग द्वेष त्याग कर समता भाव से आत्मा के ध्यान में चित्त को मग्न करना तथा शत्रु, मित्र, तृण कञ्चन, मान अपमान में समान भाव रखना। मुनियों का यह परम धर्म है।

[२] छेदोपस्थापना—सामायिक भावसे गिर कर फिर अपने को सामायिक भाव में स्थिर करना व साधु व्रत में

कोई दोष लगने पर उस की शुद्धि कर के फिर स्थिर होना ।

[३] परिहार विशुद्धि—एक विशेष चारित्र जो तीर्थंकर भगवान की संगति से साधु को प्राप्त होता है जिस से जीव रक्षा में बहुत सावधानी हो जाती है ।

[४] सूक्ष्म सांपराय—एक ऐसी आत्म मग्नता जिस में बहुत ही सूक्ष्म लोभ का उदय रहता है ।

[५] यथाख्यात—जैसे चाहिए वैसा सर्व कषाय रहित निर्मल वीतराग भाव । *

(५०) निर्जरातत्व

जिन आत्मा के परिणामों से कर्म फल देकर या बिनाफल दिये हुए आत्मा से झड़जाते हैं वह भावनिर्जरा है और कर्मों का झड़ना सो द्रव्य निर्जरा है । जहां कर्म फल देकर झड़ते हैं उसको सविपाक निर्जरा कहते हैं, जहां विना फल दिये हुए झड़ते हैं वह अविपाक निर्जरा है । वास्तव में पहले बांधे हुए कर्मों का विनाफल दिये हुए तप आदि वीतरागभावों के द्वारा झड़ने को ही निर्जरातत्व कहते हैं । यही मोक्ष का कारण है ।

तप बारह तरह का है जिसका पालन साधु महात्मा उत्तम प्रकार से करते हैं । ‡

---

* देखो तत्वार्थसूत्र अ० ६

‡ जह कालेण तवेणय भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।
भावेण सडदि णेया तस्सडनं चेदि णिज्जरा दुविहा ।

(द्रव्यसंग्रह)

(५१) बारह तप

इस तपके दो भेद हैं बाह्य और अन्तरंग। जो प्रगट दीखें व जिसका असर शरीर पर मुख्यतासे पड़े वह बाह्य तप है व जिसका असर मुख्यता से भावों पर पड़े सो अन्तरंगतप है। हर एकके छः २ भेद हैं—

बाह्यतप के छः भेद

(१) अनशन—खाद्य जिससे पेट भरे, स्वाद्य जो स्वाद सुधारे इलायची आदि। लेह्य जो चाटने में आवे, चटनी आदि, पेय जो पीने योग्यहो जलादि। इन चार प्रकार के आहार का जन्म पर्यन्त या एक दो दिन आदि की मर्यादा से त्यागकर इन्द्रिय विषय और कषायों से अलग रहकर धर्म-ध्यान में लीन रहना सो अनशन है।

(२) अवमोदर्य—इन्द्रियों की लोलुपता कम करते हुए सदा आहार कम करना, जिससे ध्यान व स्वाध्याय में आलस्य न हो।

(३) वृत्तिपरिसंख्यान—भोजन के लिये जाते हुए कोई प्रतिज्ञा लेलेना और बिना किसी के कहे हुए उसके अनुसार भोजन मिलने पर लेना नहीं तो उपवास करना, जैसे किसी साधुने यह नियम लिया कि कोई पुरुष बिल्कुल सादी धोती और दुपट्टा ओढ़े हुए यदि भक्ति से भोजन देगा सो लेंगे, न प्रण पूर्ण होने पर भिक्षासे लौट आना व समता भाव रखना।

(४) रसपरित्याग—दूध, दही, घी, शक्कर (मिष्टरस), तैल, निमक इन छह रसों में से एक व अनेक का जन्मपर्यन्त व मर्यादा रूप त्यागना तथा रससे मोह न कर केवल उदर भरने को भोजन करना।

(५) विविक्त शय्यासन—ध्यान की सिद्धि के लिये एकान्तमें सोना बैठना।

(६) कायक्लेश—शरीर के सुखियापने को हटाने के लिये शरीर को कठिन २ क्लेश देकर भी मनमें दुःख न मानकर हर्षित होना। जैसे धूपमें खड़े हो ध्यान करना, कंकड़ों पर लेट जाना आदि।

छः अन्तरंग तप

[१] प्रायश्चित—दोष होनेपर उसका दंड लेकर दोष को मेटना। यह दण्ड नौ तरह का होता है।

(१) आलोचना—गुरु के पास सरल भावसे दोष निवेदन करदेना।

(२) प्रतिक्रमण—एकान्त में बैठकर दोष का पश्चाताप करना।

(३) तदुभय—ऊपर के दोनों कामों को करना।

(४) विवेक—किसी पदार्थ का जैसे दूध, घी, आदि का कुछ काल के लिये त्याग देना।

(५) व्युत्सर्ग—काय से ममता त्याग एक या अनेक कायोत्सर्ग रूपसे ध्यान करना। नौ णमोकारमंत्र २७ श्वा-

सोच्छ्‌वास में कहनेमें जो समय लगे, वह एक कायोत्सर्ग का काल है।

(६) तप—एक व अनेक उपवास आदि ग्रहण करना।

(७) छेद—मुनिदीक्षा का समय घटा देना।

(८) परिहार—मुनि संघसे कुछ काल के लिये अलग करना।

(९) उपस्थापन—फिरसे दीक्षा देकर शुद्ध करना।

[२] विनय—भीतर से बड़ा आदर रखना-यह चार तरह का है—

(१) ज्ञानविनय—बड़े भावसे ज्ञानको बढ़ाना।

(२) दर्शनविनय—बड़ी भक्ति से सच्चे तत्वों में श्रद्धा स्थिर रखना।

(३) चारित्र विनय—बड़े आदर से साधु का या श्रावक का चारित्र पालना।

(४) उपचार विनय—देव, गुरु, शास्त्र आदि पूजनीय पदार्थों का मुखसे स्तवन व काय से नमन आदि करना।

[३] वैय्यावृत्य—बिना किसी स्वार्थके सेवा करना। दश प्रकार के साधु होते है उनकी सेवा सदा करनी चाहिये-

(१) आचार्य (२) उपाध्याय (३) तपस्वी (४) शैक्ष्य-नवीन शिष्य मुनि (५) ग्लान-रोगी (६) गण-एक विशेष संघ (७) कुल-एक ही गुरु के शिष्य (८) संघ-मुनि समूह (९) साधु-

बहुत काल के साधक (१०) मनोज्ञ-सुन्दर विद्वान सुप्रसिद्ध साधु।

[४] स्वाध्याय—शास्त्रों का मनन-यह पांच तरह से होता है। (१) वांचना-पढ़ना सुनना (२) पृच्छना-शंकाको साफ करने के लिए प्रश्न कर निर्णय करना (३) अनुप्रेक्षा-जाने हुये पदार्थों का बार बार चिन्तन करना (४) आम्नाय-शुद्ध शब्द व अर्थ कंठ करना (५) धर्मोपदेश करना।

[५] व्युतसर्ग—बाहरी और भीतरी परिग्रह से ममता त्यागना-ऐसा दो प्रकार है।

[६] ध्यान—चित्तको एक किसी पदार्थ में रोक कर तन्मय हो जाना। ‡

(५२) ध्यान

ध्यान चार तरह का होता है (१) आर्त (२) रौद्र (३) धर्म (४) शुक्ल। इन में पहले दो पाप बन्ध-के कारण हैं। धर्म शुक्ल में जितनी वीतरागता है वह कर्मों की निर्जरा करती है व जितना शुभराग है वह पुण्य बंध का कारण है।

आर्तध्यान चार तरह का होता है:—

(१) इष्ट वियोगज-इष्ट स्त्री, पुत्र, धनादिके वियोग पर शोक करना।

(२) अनिष्ट संयोगज-अनिष्ट दुखदाई सम्बन्ध होने पर शोक करना।

---

‡ अनशनावमौदर्य वृत्ति परिसंख्यान रस परित्याग विविक्त शय्यासन कायक्लेशाः बाह्यं तपः ॥ १९ ॥
प्रायश्चित्त विनय वैय्यावृत्य स्वाध्याय व्युतसर्ग ध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥ (तत्वा० अ० ६)

(३) पीड़ा चिन्तवन-पीडा रोग होने पर दुःखी होना।

(४) निदान-आगामी भोगों की चाह से जलना।

रौद्रध्यान चार तरह का होता है :—

(१) हिंसानन्द-हिंसा करने कराने में व हिंसा हुई सुनकर आनन्द मानना।

(२) मृषानन्द-असत्य बोलकर, बुलाकर व बोला हुआ जान कर आनन्द मानना।

(३) चौर्यानन्द-चोरी करके, कराके व चोरी हुई सुनकर हर्षित होना।

(४) परिग्रहानन्द-परिग्रह बढ़ाकर, बढ़वाकर व बढ़ती हुई देखकर हर्ष मानना।

धर्मध्यान चार प्रकार का है :—

(१) आज्ञाविचय-जिनेन्द्र की आज्ञानुसार आगम के द्वारा तत्वों का विचार करना।

(२) अपाय विचय-अपने व अन्य जीवों के अज्ञान व कर्म के नाश का उपाय विचारना।

(३) विपाक विचय-आपको व अन्य जीवों को सुखी या दुःखी देखकर कर्मों के फल का स्वरूप विचारना।

(४) संस्थान विचय—इस लोक का तथा आत्मा का आकार व स्वरूप का विचार करना। इसके चार भेद हैं :—

(१) पिंडस्थ (२) पदस्थ (३) रूपस्थ (४) रूपातीत

(५३) पिंडस्थ ध्यान
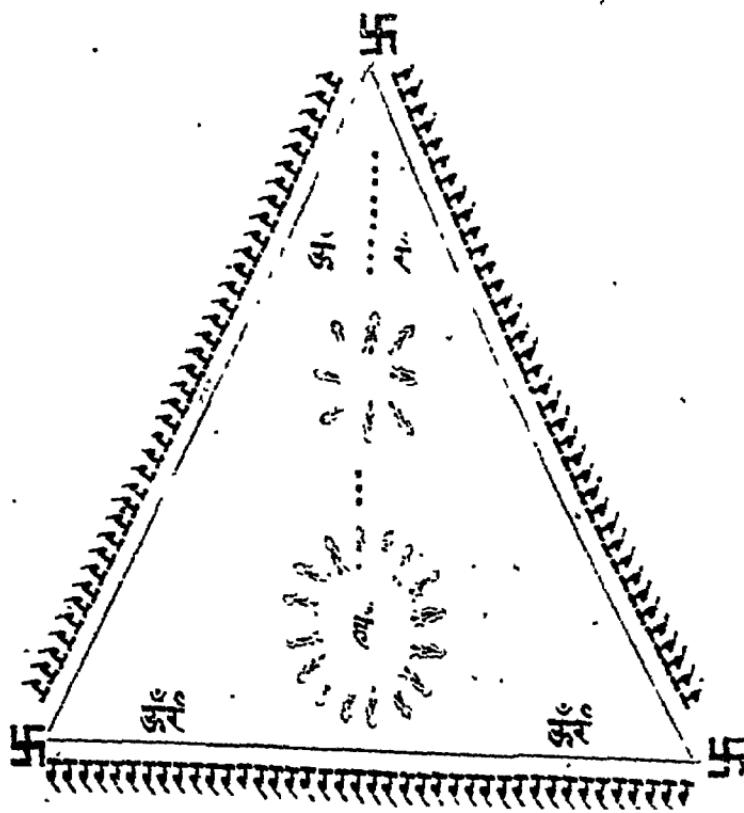
ध्यान करने वाला मन वचन, काय शुद्धकर एकान्त स्थान

में जाकर पद्मासन या खड़े आसन व अन्य किसी आसन से तिष्ठ कर अपने पिंड या शरीर में विराजित आत्मा का ध्यान करेसो पिंडस्थ ध्यान है। इसकी पांच धारणाएं हैं :—

[१] पार्थिवीधारणा—इस मध्यलोक को क्षीर समुद्र के समान निर्मल देखकर उसके मध्यमें एक लाख योजन व्यास वाला जम्बूद्वीप के समान ताए हुए सुवर्ण के रंग का एक हज़ार पाँखड़ी का एक कमल विचारे। इस कमल के मध्य सुमेरुपर्वत समान पीत रंग को ऊँची कर्णिका विचारे। फिर इस पर्वत के ऊपर पाण्डुक वनमें पाण्डुक शिला पर एक स्फटिक मणि का सिंहासन विचारे और यह देखे कि मैं इसी पर अपने कर्मों को नाश करने के लिये बैठा हूं। इतना ध्यान बारबार करके जमावे और अभ्यास करे। जब अभ्यास हो जावे तब दूसरी धारणा का मनन करे।

[२] अग्निधारणा—उसी सिंहासन पर बैठा हुआ ध्यान करनेवाला यह सोचे कि मेरे नाभि के स्थान में भीतर ऊपर मुख किये खिला हुवा एक १६ पाँखड़ी का श्वेत कमल है। उसके हर एक पत्ते पर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसे १६ स्वर क्रम से पीले लिखे हैं व बीच में हँ पीला लिखा है। इसी कमल के ऊपर हृदय स्थान में एक कमल औंधा खिला हुवा आठ पत्ते का काले रंग का विचारे जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ऐसे आठ कर्म रूप हैं ऐसा सोचे। पहले कमल के हँ के से धुआं निकल कर फिर अग्नि शिखा निकल कर बढ़ी, सो दूसरे कमल को जलाने लगी, जलाते हुए शिखा अपने मस्तक पर आगई और फिर वह अग्नि

शिखा शरीर के दोनों तरफ रेखारूप आकर नीचे दोनों कोनों से मिल गई और शरीर के चारों ओर त्रिकोणरूप हो गई। इस त्रिकोण की तीनों रेखाओं पर र र र र र र र अग्निमय वेष्टित हैं तथा इसके तीनों कोनों में बाहर अग्निमय स्वस्तिक हैं भीतर तीनों कोनों में अग्निमय ऊँर्र लिखे हैं ऐसा विचारे। यह मण्डल भीतर तो आठकर्मों को और बाहर शरीर को दग्ध करके राख रूप बनाता हुआ धीरे २ शान्त हो रहा है और अग्निशिखा जहां से उठी थी वहीं समागई है ऐसा सोचना सो अग्निधारणा है। इस मण्डल का चित्र इस तरह पर है :—

[३] पवन धारणा—दूसरी धारणा का अभ्यास होने के पीछे यह सोचे कि मेरे चारों ओर पवन मंडल घूम कर राख को उड़ा रहा है। उस मंडल में सब ओर स्वाय स्वाय लिखा है। ॐ

[४] जल धारणा—तीसरी धारणाका अभ्यास होनेपर फिर यह सोचे कि मेरे ऊपर काले मेघ आ गए और खूब पानी बरसने लगा। यह पानी लगे हुए कर्म मैल को धोकर आत्मा को स्वच्छ कर रहा है। प प प प जल मंडल पर सब ओर लिखा है। †

[५] तत्व रूपवती धारणा—चौथी का अभ्यास हो जावे तब अपने को सर्व कर्म व शरीर रहित शुद्ध सिद्ध समान अमूर्तीक स्फटिकवत निर्मल आकार देखता रहे, यह पिंडस्थ आत्मा का ध्यान है।
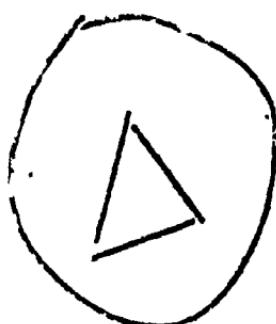
(५४) पदस्थध्यान

पदस्थ ध्यान भी एक भिन्न मार्ग है। साधक इच्छानु-

सार इसका भी अभ्यास कर सकता है। इसमें भिन्न२ पदोंको विराजमान कर ध्यान करना चाहिये। जैसे हृदय स्थान में आठ पांखड़ी का सुफ़ेद कमल सोच कर उसके आठ पत्तों पर क्रम से आठ पद पीले लिखे—

(१) णमो अरहंताणं (२) णमो सिद्धाणं (३) णमो आइरीयाणं [४] णमो उवज्झायाणं [५] णमो लोएसव्वसाहूणं [६ । सम्यग्दर्शनायनमः [७] सम्यग्ज्ञानायनमः [८] सम्यक् चारित्रायनमः और एक एक पद पर रुकता हुवा उसका अर्थ विचारता रहे। अथवा अपने हृदय पर या मस्तक पर या दोनों भौंहों के मध्यमें या नाभिमें ह्रँ या ॐ को चमकता सूर्य सम देखे व अरहंत सिद्ध का स्वरूप विचारे। इत्यादि

(५५) रूपस्थ ध्यान

ध्याता अपने चित्त में यह सोचे कि मैं समवशरण में साक्षात् तीर्थंकर भगवान को अन्तरीक्ष ध्यानमय परम वीतराग, छत्र चमरादि आठ प्रातिहार्य सहित देख रहा हूं। १२ सभाएं हैं जिनमें देव देवी, मनुष्य, पशु, मुनि आदि बैठे हैं, भगवान का उपदेश होरहा है। अथवा ध्याता किसी भी अरहन्त की प्रतिमा को अपने चित्त में लाकर उसके द्वारा अरहन्त का स्वरूप विचारे।

(५६) रूपातीत ध्यान

ध्याता इस ध्यान में अपने को शुद्ध स्फटिकमय सिद्ध भगवान के समान देख कर परम निर्विकल्प रूप हुवा ध्यावे।

(५७) शुक्ल ध्यान

धर्म ध्यानका अभ्यास मुनिगण करते हुए जब सातवें दर्जे (गुणस्थान) से आठवें दर्जे में जाते हैं तब से शुक्ल ध्यान को ध्याते हैं। इसके भी चार भेद हैं। पहले दो साधुओं के अन्तके दो केवलज्ञानी अरहन्तों के होते हैं।

(१) पृथक्त्व वितर्क वीचार—

यद्यपि शुक्ल ध्यान में ध्याता बुद्धि पूर्वक शुद्धात्मा में ही लीन है तथापि उपयोग की पलटन जिसमें इस तरह होवे कि मन, वचन, कायका आलम्बन पलटता रहे, शब्द पलटता रहे व ध्येय पदार्थ पलटता रहे वह पहला ध्यान है। यह आठवेंसे ११ वें गुणस्थान तक होता है।

(२) एकत्व वितर्कअवीचार—

जिस शुक्ल ध्यान में मन, वचन, काय योगों में से किसी एक पर, किसी एक शब्द व किसी एक पदार्थके द्वारा उपयोग स्थिर हो जावे सो दूसरा शुक्ल ध्यान १२ वें गुणस्थान में होता है।

(३) सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति—

अरहन्त का काय योग जब तेरहवें गुणस्थान के अन्त में सूक्ष्म रह जाता है तब यह ध्यान कहलाता है।

(४) व्युपरत क्रिया निवर्ति—

जब सर्व योग नहीं रहते व जहां निश्चल आत्मा हो जाता

है तब यह चौथा शुक्ल ध्यान चौदहवें गुणस्थान में होता है। यह सर्व कर्म बंधन काटकर आत्मा को परमात्मा या सिद्ध करदेता है। *

(५८) मोक्षतत्त्व

जब कर्म बंध के कारण मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग सब बंद होजाते हैं व पहले बांधे हुए सर्व कर्मों की निर्ज़रा होजाती है तब यह जीव सूक्ष्म व स्थूल शरीरों से छुटा हुवा पूर्ण शुद्ध होकर अन्तिम देह के आकार से कुछ कम सीधा ऊपर को गमन करता है और लोकाकाश के अन्त में सिद्ध क्षेत्र पर ठहर जाता है। वहां उसी ध्यानाकार चैतन्यमई भाव में अन्य आत्माओं से भिन्न अपने सर्व गुणों को पूर्ण विकसित करता हुवा अनन्त अतींद्रिय सच्चे आनन्द में मग्न रह कर परम निराकुल व परम कृतकृत्य हो जाता है। न यह किसी में मिलता है न यह फिर कभी अशुद्ध होकर जन्म धारण करता है। इसी को परमात्मा, परमब्रह्म, परमप्रभु, ईश्वर, सर्वज्ञ, वीतराग, परमसुखी, कहते हैं। ‡

---

* ध्यान का विशेष स्वरूप श्री शुभचन्द्राचार्यकृत ज्ञानार्णव ग्रन्थ में देखो।

‡ अभावाद्बंध हेतूनां बंध निर्जरयातथा।
कृत्स्न कर्म प्रमोक्षोहि मोक्ष इत्यभिधीयते ॥ २ ॥
दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्मबीजेतथा दग्धे न रोहति भवांकुरः ॥ ७ ॥
आकारभावतोऽभावो न च तस्य प्रसज्यते।

आत्मा जैसा अंतिम शरीर छोड़ते समय होता है वैसा ही उसका चैतनामय आकार सिद्ध क्षेत्र में रहता है। शरीर की मापमें नख केशादि को माप भी आजाती है। जिनमें आत्मा व्यापक नहीं है, इतनी नाप कम होजाती है।

(५६) चौदह गुणस्थान

संसारी जीवों के मोहनीय कर्म और योगों के निमित्त से चौदह दर्जे होते हैं जिनमें यह आत्मा भावों के क्रमसे अशुद्धि कम करता हुआ पूर्ण परमात्मा हो जाता है। इनका गुण स्थान कहते हैं—

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान—जिस में सात तत्वों का

अनन्तर परित्यक्त शरीराकार धारिणः ॥ १५ ॥
संसार विषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्यावाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः ॥ ४५ ॥

(तत्वार्थसार)

भावार्थ—बंध कारणों के चले जाने से व बंध को निर्जरा हो जाने से सर्व कर्मों से छूटने का नाम मोक्ष है। जैसे बीज भुन जाने पर फिर उसमें अंकुर नहीं फूट सकता वैसे कर्म बीज के जलजानेपर संसार अंकुर नहीं होता।

सिद्धपरमात्मा के आकार का अभाव नहीं है। वह पिछले छूटे हुए शरीर के प्रमाण आकार धारी हैं। सिद्धों के संसार के इन्द्रिय विषयों से भिन्न; बाधा रहित, अविनाशी, उत्कृष्ट सुख पैदा होता है ऐसा परमर्षियों ने कहा है।

देव, गुरु, धर्म व आत्मा का सच्चा श्रद्धान न हो, आत्मानन्द की पहिचान न हो। संसार सुख ही सुहावे। इस में प्रायः सर्व संसारी जीव हैं।

(२) सासादन गुणस्थान—पहिले दर्जे से एक दम चौथे अविरत सम्यक्त्व में जाकर अनन्तानुबंधी कषाय के उदय से गिर कर इस में आता है फिर तुर्त ही मिथ्यात्व में चला जाता है।

(३) मिश्र गुणस्थान—जहां मिथ्या व सत्य श्रद्धान के मिले हुये भाव होते हैं, जैसे दही मीठे का मिला हुआ स्वाद। यहां दर्शन मोह की सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का उदय होता है।

(४) अविरत सम्यक्त्व—अनादि मिथ्यादृष्टि जीव आत्मा अनात्मा के विवेक होने पर निर्मल भावों से तत्व का मनन करते हुए जब अनन्तानुबन्धी कषाय चार और मिथ्यात्व प्रकृति इन पांच का उपशम कर देता है अर्थात् इन के उदय को अन्तर्मुहूर्त के लिए दवा देता है तव पहले से झट चौथे में आकर उपशम सम्यक्त्वी हो जाता है। तव मिथ्यात्व कर्म के तीन टुकड़े कर देता है, कुछ सम्यक् प्रकृति रूप, कुछ मिश्र रूप, कुछ मिथ्यात्व रूप। तव इस की सत्ता में सम्यग्दर्शन की बाधक सात प्रकृतियें हो जाती हैं।

यह जीव अन्तर्मुहूर्त के भीतर कुछ समय रहते हुए यदि अनन्तानुबन्धी का उदय पा लेता है तव सासादन में गिरता है, यदि अन्तर्मुहूर्त पीछे मिथ्यात्व का उदय हो जाता है तो फिर चौथे से पहिले में आ जाता है। यदि सम्यक् प्रकृति का उदय

हुआ तो चौथे में ही रह कर क्षयोपशमसम्यग्दृष्टि हो जाता है। क्षयोपशम सम्यक्त्व से गिर कर मिश्र प्रकृति के उदय होने पर तीसरे में आ सकता है।

इस क्षयोपशम सम्यक्त्व का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर काल है। यहीं यदि सातों प्रकृतियों का क्षय कर डालता है तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। फिर अनन्त काल तक कभी मिथ्यात्वी नहीं होता है और तीसरे या चौथे भव में मोक्ष पा लेता है।

जो सम्यग्दर्शन से गिर कर पहले में आता है उस को सादि मिथ्यादृष्टि कहते हैं, उस को फिर चौथे में जाने के लिए सात प्रकृतियों का व कभी केवल चार कषाय व एक मिथ्यात्व का ही उपशम करना पड़ता है; जब मिश्र और सम्यक् प्रकृति दोनों सत्ता में से खिर जाती हैं।

(५) देश विरत—सम्यग्दृष्टि जीव श्रावक गृहस्थ के व्रतों को रोकने वाली अप्रत्याख्यावरण चार कषाय के उपशम होने पर इस दर्जे में आकर श्रावक के बारह व्रतों को ग्यारह श्रेणियों या प्रतिमाओं के द्वारा उन्नति करता हुआ पालता है।

इस के आगे के दर्जे साधुओं के हैं।

(६) प्रमत्त विरत—प्रत्याख्यानावरण कषाय जो मुनिव्रत को रोकती थी उसके उपशम होने पर यह दर्जा होता है। यह सातवें से गिरकर होता है, पाँचवें से सातवें में जाता है। छठा सातवाँ बार बार होता रहता है।

इस के आगे के दर्जों में प्रमाद भाव नहीं रहता है।

(७) अप्रमत्त विरत—यहां संज्वलन चार व नौ नो कषाय का भेद उदय होने पर धर्म ध्यान में निर्विकल्परूप से मग्न रहता है

इस के आगे दो श्रेणियां हैं—एक उपशम दूसरी क्षपक। जहां अनन्तानुबन्धी चार के सिवाय २१ कषायों का उपशम किया जावे वह उपशम व जहां क्षय किया जावे वह क्षपक श्रेणी है। उपशम के ८, ९, १० व ११ तथा क्षपक के ८, ९, १० व १२ ऐसे चार दर्जे हैं। उपशम वाला ११ वें से अवश्य गिरता है। क्षपक १० वें से १२ वें में जाकर चार घातिया कर्म रहित होकर १३ वें में जाकर अरहन्त परमात्मा हो जाता है।

(८) अपूर्व करण—जहां अनुपम शुद्ध भाव हो-यहां साधु के पहला शुक्ल ध्यान होता है।

(९) अनिवृत्ति करण—जहां ऐसे शुद्ध भाव हों कि साधु सर्व अन्य कषायों का उपशम या क्षय कर डाले, केवल अन्त में सूक्ष्म लोभ रह जावे।

(१०) सूक्ष्म साम्पराय—जहां केवल सूक्ष्म लोभ रह जावे व साधु ध्यान मग्न ही बना रहे।

(११) उपशान्त मोह—जहां सर्व कषायों का उपशम होकर साधु वीतरागी हो जावे।

(१२) क्षीण मोह—जहाँ सर्व कषायों का क्षय हो कर साधु वीतरागी बना रहे, गिरे नहीं। यहां दूसरा शुक्ल ध्यान होता है।

(१३) सयोगकेवली—यहां ज्ञानावरणादि ४ घातिया कर्मों से रहित हो अरहन्त परमात्मा, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तबली व अनंत सुखी हो जाता है व शरीर में रहते हुए जिसके विना इच्छा के विहार व उपदेश होता है। यहां आत्मा के प्रदेश सकम्प होते हैं इससे सयोग कहलाते हैं। यहां अन्त में तीसरा शुक्लध्यान होता है।

(१४) अयोगकेवली—जहां आत्म प्रदेश सकम्प न हों, निश्चल आत्मा रहे। यहां चौथा शुक्लध्यान होता है जिससे सर्व कर्मों का नाश कर गुणस्थानों से बाहर हो सिद्ध परमात्मा होजाता है।

इसका ठहरने का काल उतना है जितनी देर में अ, इ, उ, ऋ, लृ, ये पांच अक्षर कहे जावें। १३ वें का व ५ वें का उत्कृष्ट काल लगातार एक कोड़पूर्व ८ वर्ष व अन्तर्मुहूर्त कम है। दूसरे का छः आवली। *

चौथे का तेतीस सागर कुछ अधिक। तीसरे का व छटे से लेकर १२ वें तक का प्रत्येक का अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल नहीं है। पहले का काल अनन्त है। यह काल की मर्यादा एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट कही गई है। †

---

* आवली असंख्यात समयों की होती है। पलक मारने में जो समय लगे उसके लगभग।

† मिथ्यादृक् सासनो मिश्रो, संयतो देशसंयतः।
प्रमत्त इतरोऽपूर्वानिवृत्ति करणौ तथा ॥ १६ ॥

(६०) गुणस्थानों में कर्मों का बंध, उदय, और सत्ता का कथन

१४८ कर्मों में से १२० बंधमें व १२२ उदय में गिनाई गई हैं। ५ बंधन, ५ संघात, पांच शरीरोंमें तथा स्पर्शादि २० केवल मूल चार स्पर्शादि में, मिश्र व सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व में गर्भित हैं। इस तरह बंधमें १०+१६+२ अर्थात् २८ कम व उदय में १०+१६ केवल २६ ही कम हुई, केवल मिश्र व सम्यक् प्रकृति नहीं।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व से मिथ्यात्व कर्म के तीन खण्ड हो जाते हैं-मिथ्यात्व, मिश्र व सम्यक्त्व, इसलिये बंध एक का और उदय तीन का होता है।

जितने कर्म नये बन्धते हैं उनको बन्ध, जितने फल देते हैं व बिना फल दिये निमित्त बिना गिरते हैं उनको उदय जो बिना फल दिये व गिरे बैठे रहें उनको सत्ता कहते हैं।

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान में—

बंध—१२० में से ११७ का। यहां तीर्थंकर आहारक शरीर व आहारक आङ्गोपाङ्ग का बन्ध नहीं होता है।

सूक्ष्मोपशान्त संक्षीणकषाया योग्ययोगिनौ।
गुणस्थान विकल्पाः स्युरितिसर्वे चतुर्दश ॥ १७ ॥

(तत्वार्थसार अ० २)

उदय—१२२ में से ११७ का। यहां तीर्थंकर आहारक दो सम्यक् प्रकृति व सम्यक् मिथ्यात्व, इन पांच का उदय नहीं।

सत्ता—१४८ की ही।

(२) सासादन गुणस्थान में—

बंध—११७ में से १६ कम यानी १०१ का। वे १६ ये हैं-
मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकआयु, नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिक संहनन, एकेन्द्रिय से चौंद्रिय चार जाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

उदय—११७ में से ६ निकालकर १११ का। वे छः ये हैं-
मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकगत्यानुपूर्वी।

सत्ता—१४५ की। १४८ में से तीर्थंकर, आहारक दो कम होती हैं।

(३) मिश्र गुणस्थान में—

बंध—१०१ में से २७ कम करके ७४ का। वे २७ ये हैं-
स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, अनन्तानुबन्धी क्रोधादि ४, स्त्रीवेद, तिर्यंच आयु, तिर्यंचगति, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोध से वामन चार संस्थान, वज्रनाराच से ले कीलक चार संहनन, मनुष्यायु और देवायु।

उदय—१०० का। १११ में से अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय से चौंद्रियतक ४ जाति, स्थावर, तिर्यंच, मनुष्य, देव गत्यानुपूर्वि ३, ऐसे १२ घटाने व एक सम्यक्‌मिथ्यात्व मिलाने से ११ घटती हैं।

सत्ता—१४७ को तीर्थंकर के सिवाय।

(४) अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में—

बंध—७७ का। तीसरे को ७४ में मनुष्यायु, देवायु, तीर्थंकर तीन मिलाने पर।

उदय—१०४ का। तीसरेकी १०० में से सम्यक् मिथ्यात्व, को घटाकर ९९ रहीं, उनमें चार गत्यानुपूर्वी व एक सम्यक् प्रकृति मिला देने पर।

सत्ता—१४८ को। यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो तो एक सो इकतालीस की ही सत्ता होगी।

(५) देशविरत गुणस्थान में—

बंध—६७ का। चौथे की ७७ में से १० घटाने पर। वे १० ये हैं:—

अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपांग, वज्र वृषभनाराच संहनन।

उदय—८७ का। चौथे की १०४ में से १७ घटाने पर। वे १७ ये हैं:—

अप्रत्याख्यानावरण कषाय ४, नरकायु, देवायु, नरकादि ४ आनुपूर्वी, नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपांग, दुर्भग, अनादेय, अयश।

सत्ता—१४७ की नरकायु के विना परन्तु क्षायिक के केवल १४० की ही।

(६) प्रमत्तविरत गुणस्थान में—

बंध—६७ में से प्रत्याख्यानावरण कषाय चार घटाने पर ६३ का।

उदय—८१ का। ८७ में से प्रत्याख्यानावरण कषाय ४. तिर्यञ्च आयु, तिर्यंचगति, उद्योत, नीच गोत्र घटाने व आहारक शरीर व आहारक आङ्गोपांग मिलाने से।

सत्ता—१४७ में से तिर्यंचायु घटाने पर १४६ की परन्तु क्षायिक के केवल १३९ की।

(७) अप्रमत्तविरत गुणस्थान में—

बंध—५७ का। ६३ में से अरति, शोक, असातावेदनीय, अस्थिर, अशुभ, अयश घटाने व आहारक शरीर व आहारक आङ्गोपांग मिलाने पर।

उदय—७६ का। ८१ में से आहारक दो, निद्रानिद्रा, प्रचलप्रचला, स्त्यानगृद्धि घटाने पर।

सत्ता—१४६ की परन्तु क्षायिक के १३९ की।

(८) अपूर्वकरण गुणस्थान में—

बंध—५९ में से देवायु घटाकर ५८ का।

उदय—७२ का। ७६ में से सम्यक् प्रकृति, अर्धनाराच, कीलक व असंप्राप्तासृपाटिक संहनन घटाने पर।

सत्ता—१४६ में से अनन्तानुबन्धी चार कषाय घटाने पर १४२ की परन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टिके १३९ की तथा क्षपक श्रेणी वाले के देवायु घटाकर १३८ की।

(९) अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में—

बंध—२२ का। ५८ में से ३६ घटानेपर। वे ३६ ये हैं—

निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, देव गति, देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उछ्वास, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय।

उदय—७२ में से हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगप्सा घटानेपर ६६ का।

सत्ता—आठवेंके अनुसार १४२, १३९ या १३८ की।

(१०) सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में—

बंध—१७ का। २२ में से संज्वलन क्रोधादि ४ व पुरुष वेद घटाने पर।

उदय—६० को। ६६ में से संज्वलन कषाय लोभ सिवाय ३, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद ३ घटाने पर।

सत्ता—उपशम श्रेणी में १४२ की व क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १३९ की तथा क्षपक श्रेणी में १०२ की। १३८ में से ३६ घटानेपर। वे ३६ ये हैं—

निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानगृद्धि, अप्रत्याख्यानावरण कषाय ४, प्रत्याख्यानावरण कषाय ४, संज्वलन क्रोध, मान, माया ३, नो कषाय ९, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय से चौंद्रिय ४, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर।

(११) उपशांतमोह गुणस्थान में—

बंध—१ सातावेदनीय का। १७ में से १६ घटानेपर। वे १६ ये हैं—

ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, उच्च गोत्र, यश।

उदय—५९ का। ६० में से संज्वलन लोभ घटाने पर।

सत्ता—दशवें की तरह १४२ की व क्षायिक के १३९ की।

(१२) क्षीणमोह गुणस्थान में—

बंध—११ वें की तरह १ साता वेदनीय का ही।

उदय—५७ का। ५९ में से वज्र नाराच व नाराच घटाकर।

सत्ता—१० वें की क्षपक श्रेणी में १०२ में से संज्वलन लोभ घटाकर १०१ की।

(१३) सयोग केवली गुणस्थान में—

बंध—एक साता का।

उदय—५७ में से १६ घटानेपर ४१ का व तीर्थंकर के तीर्थंकर प्रकृति सहित ४२ का। वे १६ ये हैं—

ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, निद्रा, प्रचला, अन्तराय ५।

सत्ता—८५ की। १०१ में से ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, निद्रा, प्रचला, अन्तराय ५ ऐसी १६ घटाने पर।

(१४) अयोग केवली गुणस्थान में—

बंध—० कोई नहीं।

उदय—१२ का। ४२ में से ३० घटानेपर। वे ३० ये हैं-

१ कोई वेदनीय, वज्र वृषभ नाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपांग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थानादि ६ संस्थान, स्पर्शादि ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रत्येक। जो उदय में रहीं वे १२ ये हैं:—

१ वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश, उच्चगोत्र, तीर्थंकर।

नोट—जो तीर्थंकर नहीं होते उनके ११ का ही उदय रहता है।

सत्ता—८५ की थी परन्तु अन्त समय के पहले समय में ७२ फिर अन्तमें १३; इस तरह कुल ८५ का क्षय कर १४ वें गुणस्थान से छूटते ही कर्मों की सत्ता से छूट जाते हैं और सिद्ध परमात्मा निजानन्दी हो जाते हैं।

यह कथन अनेक जीवों की अपेक्षा है। एक कोई जीव मनुष्य हो या पशु हो या देव हो या नारकी हो व एकेन्द्रिय द्वेन्द्रिय आदि हो उसका कथन श्री गोम्मटसार कर्मकाण्ड से देखना चाहिये।

उपरोक्त कथन निम्न नक़शेसे स्पष्ट समझ लेना चाहिये—

नक़शा

नाम गुणस्थान	बंध	उदय	सत्ता
मिथ्यात्व	११७	११७	१४८
सासादन	१०१	१११	१४५
मिश्र	७४	१००	१४७
अविरतसम्यग्दृष्टि	७७	१०४	१४८ या १४१
देश विरत	६७	८७	१४७ या १४०
प्रमत्त विरत	६३	८१	१४६ या १३९
अप्रमत्त विरत	५९	७६	१४६ या १३९
अपूर्व करण	५८	७२	१४२, १३९ या १३८
अनिवृत्ति करण	२२	६६	१४२, १३९ या १३८
सूक्ष्म सांपराय	१७	६०	१४२, १३९ या १०२
उपशांत मोह	१	५९	१४२ या १३९
क्षीण मोह	१	५७	१०१

सयोग केवली	१	४१ या ४२	८५
अयोग केवली	०	१२ या ११	अन्त में ०

(६१) नौ पदार्थ

सात तत्वों में पुण्य और पाप जोड़ देने से नौ पदार्थ कहलाते हैं। आठ कर्म व उनके १४८ भेदोंमें पहले यह बताया जा चुका है कि पुण्यकर्म व पापकर्म कौन कौन हैं। वास्तव में ये आश्रव व बंध में गर्भित हैं परन्तु लोगों में पुण्य पाप का नाम प्रसिद्ध है इसलिये इनको विशेषरूप से भिन्न कहने की अपेक्षा नौ पदार्थ जैन सिद्धान्त में कहे गये हैं।

(६२) सम्यग्ज्ञान

ज्ञान तो हर एक जीव में थोड़ा या बहुत होता ही है। यह ज्ञान सम्यग्दर्शन के होने पर सम्यग्ज्ञान कहलाता है। जिसको सात तत्व नौ पदार्थों के व विशेष कर आत्म मनन के प्रभाव से निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त होजाता है उसी के उसी समय उसका सर्वज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पालेता है।

पूर्ण सम्यग्ज्ञान केवलज्ञान है जो सर्व कुछ देखता है। यह ज्ञान सम्यग्दर्शनसहित अपूर्ण सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र के प्रभाव से प्रगट होता है। इसके मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय, केवल, ये पांच भेद हैं जिनका वर्णन प्र-

(६२) सम्यक् चारित्र ।

वास्तव में जिस समय सम्यग्दर्शन हो जाता है तब ही स्वरूपाचरण चारित्र भी प्रकट हो जाता है परन्तु कषायों का उदय जारी रहने से व राग द्वेष के होने से पूर्ण सम्यक् चारित्र नहीं होने पाता है, इसी की प्राप्ति के लिए व्यवहार चारित्र की सहायता से आत्मा में एकाग्रता रूप स्वरूपाचरण का अभ्यास करना उचित है। †

इस सम्मक् चारित्र को जो पूर्ण पते निराकुल हो कर पाल सकते हैं वे साधु हैं, जो अपूर्ण पाल सकते हैं वह श्रावक या गृहस्थ हैं। वास्तव में बिना साधु हुए सचे कर्मों का नाश नहीं हो सकता है।

(६४) साधु का चारित्र ।

कोई वीर पुरुष परम वैरागी होकर, कुटुम्ब को समझा कर व सब से क्षमा भाव करा कर या यदि कुटुम्ब का सम्ब-

---

† मोह तिमिरा पहरणे दर्शन लाभा दवाप्त संज्ञानः।
राग द्वेष निवृत्यै चरणं प्रतिपद्यते साधु ॥ ४७ ॥
(रत्नकरंड)

भावार्थ—मिथ्यादर्शन रूपी अन्धेरे के चले जाने पर व सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होने पर राग द्वेष को हटाने के लिए साधु को चारित्र पालना चाहिए।

न्थ न हुवा तो यों ही परोक्ष क्षमा भाव करके, किसी आचार्य के पास जाकर सर्व धनादि वस्त्रादि परिग्रह त्याग कर नग्न दिगम्बर हो साधु पद धार लेता है। वह केवल मोरपंख की पिच्छिका जीव रक्षार्थ झाड़ने के लिए व कमंडल में शौच के लिए जल व आवश्यक हो तो शास्त्र रखते हैं वे और कुछ नहीं धारण करते हैं। मोर के पंख बहुत कोमल होते हैं इस से छोटे से छोटा कीट भी बच सकता है व ये पंख स्वय मोर के नाचने पर गिर पड़ते हैं। वे २८ मूल गुण पालते हैं।

५ महाव्रत ५ समिति (जिन का वर्णन नं० ५१, ५२ में हैं) ५ इन्द्रियों की इच्छाओं को दमन करते हैं। छः आवश्यक नित्य कर्म पालते हैं-जैसे (१) सामायिक अर्थात् प्रातःकाल, मध्यान्ह काल व सायंकाल छः घड़ी, ४ घड़ी व अशक्त होने पर २ घड़ी शान्ति से ध्यान का अभ्यास करना। एक घड़ी चौवीस मिनट की होती है। (२) प्रतिक्रमण अपने मन, वचन, कायों के द्वारा व्रतों के पालन में जो दोष लग गए हों उनका पश्चात्ताप करना (३) प्रत्याख्यान-आगामी दोष न लगाने का विचार करना (४) संस्तव-चौवीस तीर्थंकर आदि पूज्य आत्माओं की स्तुति करना (५) बन्दना-एक किसी तीर्थंकर को मुख्य कर के उन को बन्दना करनो (६) कायोत्सर्ग-शरीर से ममता त्याग कर आत्म ध्यान में लीन होना।

इन २१ मूल गुणों के सिवाय सात बातें ये हैं :—

(१) लौंच—अपने मस्तक, दाढ़ी मूछ के वालों को अपने ही हाथों से ४, ३ या कम से कम दो मास पीछे उखाड़ डालना। जिस के शरीर में ममता न होगी वही घास के समान बालों को नोचते हुए कभी क्लेशित न होगा।

(२) नग्नपना--कोई तरह का वस्त्रादि का ढकना साधु महाराज नहीं रखते हैं, बालक के समान लज्जा के भाव से रहित होते है ।

(३) स्नान का त्याग--साधु महाराज जीवदया को पालने व शरीर की शोभा मिटाने को स्नान नहीं करते, मन्त्र व वायु से ही उन के शरीर की शुद्धि होती है ।

(४) भूमिशयन--जमीन पर विना विछौने के सोते हैं ।

(५) दातौन न करना--जीव दया पालने व शोभा मिटाने के हेतु दंतवन नहीं करते, भोजन के समय मुँह शुद्ध कर लेते हैं ।

(६) स्थिति भोजन--खड़े होकर हाथ में ही जो श्रावक अपने लिए बनाए हुये भोजन में से रख दे उसी को लेते हैं जिस से ममता न बढ़े व वैराग्य की वृद्धि हो ।

(७) एक भुक्त--दिन में ही एक दफे भोजन पानी एक साथ लेते हैं । इन २८ मूल गुणों को पालते हुये जो आत्म ध्यान का अभ्यास करते हैं वे साधु हैं ।

ये साधु पहले कहे हुए संवर व निर्जरा के उपायों को अच्छी तरह पालते हैं, इसी साधु पद से ही अरहन्त व सिद्ध पद होता है । †

---

† २८ मूल गुण :—

वद समिदिंदियरोधो लोचावस्सक मचेल मयेहणिं ।
खिदि सयण मदंत यणं, ठिदिभोयण मेय भत्तंच ॥ ८ ॥

(प्रवचनसार चारित्र)

(६५) आचार्य उपाध्याय व साधु का अन्तर ।

साधुओं में ही कार्य की अपेक्षा तीन पद हैं । जो दूसरे साधुओं की रक्षा करते हुए उन को शिक्षा देकर, उन पर अपनी आज्ञा चला कर, उन के चारित्र की वृद्धि करते हैं वे साधु आचार्य हैं ।

जो साधु विशेष शास्त्रों के ज्ञाता हो कर अन्य साधुओं को विद्या पढ़ाते हैं वे उपाध्याय हैं ।

जो मात्र साधन करते हैं वे साधु हैं ।

१४ गुण स्थानोंमें से जो छठे सातवें गुण स्थान में ही रहते हैं वे आचार्य व उपाध्याय हैं जो छठे से ले कर बारहवें तक साधते हैं वे साधु हैं ।

(६६) जैनियोंका णमोकार मंत्र व उस का महत्व ।

सर्व जैन लोग नीचे लिखा महामंत्र जपा करते हैं और उसको अनादि मूलमंत्र कहते हैं ।

"णमो अरहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आररीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमोलोए सव्व साहूणम् ॥

इसमें ७+५+७+७+९= ३५ अक्षर हैं तथा ११+९+११+१२+१६=५९ मात्राएँ हैं । इसका अर्थ है ।

लोक में सब अरहन्तों को नमस्कार हो, सर्व सिद्धों को नमस्कार हो, सर्व आचार्यों को नमस्कार हो, सर्व उपाध्यायों को नमस्कार हो सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

इस जगत में सब से अधिक माननीय ये पाँच पद हैं- अरहंत शरीर सहित परमात्मा हैं जिनका गुण स्थान १३ व १४ है।

सिद्ध शरीर रहित परमात्मा हैं, आचार्य दीक्षा दाता गुरु व उपाध्याय ज्ञानदाता मुनि, ये दोनों छठे सातवें गुण स्थान में होते हैं। इनके सिवाय मात्र साधनेवाले छटे से १२ वें गुण स्थान तक साधु कहलाते हैं। बड़े २ इन्द्रादि देव व चक्रवर्ती भी इनके चरणों को नमस्कार करते हैं।

इस मंत्र को १०८ दफे जपते हैं क्योंकि १०८ प्रकार जीवों के वंध के आधार भाव हुआ करते हैं।

किसी काम का विचार करना संरम्भ है, उसका प्रबन्ध समारंभ है, उसको शुरू कर देना आरंभ है। हर एक मन, वचन, काय द्वारा हो सकते हैं इससे नौ भेद हुए। इन नौ को स्वयं करना, कराना, व किसी ने किया हो उसका अनुमोदन करना इससे २७ भेद हुए। हर एक क्रोध, मान, माया, लोभ से होते इस तरह १०८ भेद हुए।

माला में १११ दाने होते हैं। तीन दाने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र के सूचक होते हैं। जप करते हुए १०८ दफ़े मंत्र जपते हैं एक २ दाने पर पूर्णमंत्र फिर तीन दानों पर सम्यग्दर्शनायनमः, सम्यग्ज्ञानायनमः, सम्यक् चारित्राय, नमः कहते हैं।

यदि कोई छोटा मंत्र जपना चाहें तो नीचे लिखे मंत्र भी जपे जा सकते हैं।

(१) अरहंत सिद्धाचार्यो पाध्याय सर्व साधुभ्योनमः। (१६ अक्षर) (२) अरहन्तसिद्ध (६ अक्षर) (३) असि आ उसा ५ अक्षर (४) अरहंत=४ अक्षर (५, सिद्ध=२ अक्षर (६) ॐ एक अक्षर।

ॐ पाँच परमेष्ठी का वाचक है क्यों कि इनके प्रथम अक्षरों से बना है। अरहंत का अ, सिद्ध को अशरीर कहते हैं उसका अ, आचार्य का आ, उपाध्याय का उ, साधु को मुनि कहते हैं प्रथम अक्षर म् मिलकर ओम् या ॐ बना है।

इस मंत्र के प्रभाव से परिणाम निर्मल होजाते हैं। बहुत से प्राणी मरते समय णमोकार मंत्र सुन कर निर्मल भावों से शुभ गति में चले जाते हैं।

(६७) मँत्र प्रभाव की कथा।

श्रीरामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्याश्रव कथा कोश में इस महा-मंत्र की अनेक कथाएँ हैं उनमें से एक कथा यहां दी जाती है।

बनारस के राजा अकम्पन की कन्या सुलोचना विंध्यपुर के राजा विंध्यकीर्ति की कन्या विंध्यश्री के साथ विद्याध्ययन करती थी। एक दफे फूलों को चुनते हुए विंध्यश्री को एक नाग ने काटा, उसी समय सुलोचना ने णमोकारमंत्र सुनाया जिसके प्रभाव से वह मर कर गंगा देवी उत्पन्न हुई। इस मंत्र के द्वारा भावों में शांति आने से शुभगति में जीव चला जाता है।

(६८) श्रावक का साधारण चारित्र ।

एक श्रद्धावान श्रावकगृहस्थको असाधारणपने आत्माकी उन्नति के हेतु से नित्य नीचे लिखे छः कर्मों का अभ्यास अपनी शक्तियों के अनुसार करना चाहिये।

(१) देवपूजा-अरहंत और सिद्धभगवान का पूजनकरना जिसका वर्णन नं० ७५ में किया जा चुका है।

(२) गुरु भक्ति-आचार्य, उपाध्याय या साधु की भक्ति, सेवा करना व उनसे उपदेश लेना।

(३) स्वाध्याय-प्रमाणीक जैन शास्त्रों को रुचि से पढ़ना सुनना, उनके भावों का मनन करना।

(४) संयम-५ इन्द्रिय और मन पर काबू रखने के लिये नित्य सबेरे २४ घण्टे के लिये भोग व उपभोग के पदार्थों का अपने काम के लायक रखके शेष का त्याग कर देना। जैसे आज मिष्ट पदार्थ न खायंगे साँसारिक गान न सुनेंगे, वस्त्र इतने काम में लेंगे आदि तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु वनस्पति और त्रस इन छः प्रकार के जीवों की रक्षा का भाव रखना, व्यर्थ उनको कष्ट न देना।

(५) तप—अनशन आदि १२ प्रकार तप का अभ्यास जिसका वर्णन नं० ५६ में किया जाचुका है। मुख्यता से ध्यान का, प्रात, मध्यान्ह, संध्या तीन दफे या दो दफे अभ्यास करना, जिसको सामायिक कहते हैं।

सामायिक की रीति यह है कि एकान्त स्थान में आकर पवित्र मन, वचन, काय करके, एक आसन नियत करके और

यह परिमाण करके कि जब तक सामायिक करता हूं इस स्थान व जो कुछ मेरे पास है इसके सिवाय अन्य पदार्थों का मुझे त्याग है, फिर पूर्व या उत्तर की तरफ मुख करके हाथ लटकाये सीधा खड़ा हो, नौ दफे णमोकार मंत्र पढ़कर भूमि पर दण्डवत करे फिर उसी तरह खड़ा होकर उसी तरह नौ या तीन दफे उसी मंत्र को पढ़कर, हाथ जोड़कर तीन दफे आवर्त और एक शिरोनति करे। जोड़े हुए हाथों को बाएं से दाहिने ओर घुमाने को आवर्त और उन हाथों पर मस्तक झुकाकर नमने को शिरोनति कहते हैं। ऐसा करके फिर हाथ छोड़कर खड़े २ दाहिनी तरफ पलटे, फिर नौ या तीन दफे मंत्र पढ़ तीन आवर्त एक शिरोनति करे। ऐसा ही शेष दो दिशाओं में पलटते हुए करके फिर पूर्व या उत्तर की तरफ मुख करके पद्मासन व अन्य आसन से बैठ कर शान्तभाव से सामायिक का पाठ संस्कृत या भाषा का पढ़े फिर मंत्रों की जाप देवे, धर्मध्यान का अभ्यास करे जैसा नं० ६१ से ६४ तक में कहा गया है। अन्त में उसी दिशा में खड़े हो नौ दफे मंत्र पढ़कर भूमि पर दण्डवत करे।

आवर्त शिरोनति का हेतु चारों दिशाओं में स्थित देव, गुरु आदि पूज्यपदार्थों की विनय है। ऐसी सामायिक हर दफे ४८ मिनट करे तो अच्छा है, इतना समय न देसके तो जितनी देर अभ्यास कर सके करे। *

---

* सामायिक पाठ अमितगतिकृत छन्द व भावार्थ सहित ≈)॥ आने में दफ्तर दिगम्बर जैन चन्दावाड़ी सूरत शहर से मिल सकता है।

(६) दान—अपने और दूसरे के हित के लिये प्रेम भाव से देना सो दान है। इस के दो भेद हैं :—

(१) पात्र दान—जिस को भक्ति पूर्वक करना चाहिये। जिन में रत्नत्रय धर्म पाया जावे उन को पात्र कहते हैं, वे तीन प्रकार हैं :—

(१) उत्तम— दिगम्बर जैन मुनि (२) मध्यम व्रती श्रावक (३) जघन्य-व्रत रहित श्रद्धावान गृहस्थ स्त्री पुरुष।

(२) करुणा दान—जो कोई मनुष्य, पशु या जन्तु दुःखी हो उस के क्लेश को मिटाना।

देने योग्य चार पदार्थ हैं-आहार, औषधि, विद्या या ज्ञान तथा अभयपना या प्राण रक्षा। गृहस्थ जब भोजन करे पहले आहार दान देले, कम से कम एक ग्रास भी दान के लिए निकाल देवे।

इन छः नित्य कर्मों को गृहस्थ इस तरह करे—सूर्योदय से पहले उठ कर साधारण जल से शुद्ध हो प्रथम तप करे अर्थात् सामायिक करे, उसी समय संयम की प्रतिज्ञा कर के फिर नित्य की शरीर क्रिया कर के देव पूजा करे, गुरु हो तो गुरु भक्ति करे, फिर शास्त्र पढ़े या सुने, फिर घर आकर दान दे भोजन करे। सन्ध्या को भी पहले सामायिक करे फिर जिन मन्दिर में जा दर्शन करे, शास्त्र पढ़े या सुने। सोते वक्त शान्त चित्त हो कम से कम नौ बार मन्त्र पढ़ कर सोवे। उठते हुये भी पहले नौ बार मन्त्र पढ़ ले फिर शय्या छोड़े।

दान में यह विचार रखे कि जितनी आमदनी हो उस के चार भाग करे। एक भाग नित्य खर्च में दे, एक भाग विवा-

हादि खर्च के लिये, एक भाग संचय के लिये व एक भाग दान के लिये अलग करे।

यदि दान में चौथाई न कर सके तो छठा करे या कम से कम दशवां भाग अलग करे व उसे आवश्यकतानुसार चार दानों में व अन्य धर्म कार्यों में खर्चे। *

साधारण गृहस्थों को इन आठ बातों का भी त्याग करना चाहिये। ये मूलगुण हैं।

१ मद्य २ मांस ३ मधु. स्थूल (संकल्पी) त्रसहिंसा, ५ स्थूल असत्य, ६ स्थूल चोरी, ७ स्थूल कुशील, ८ स्थूल परिग्रह।

स्थूल से प्रयोजन अन्याययुक्त का है। गृहस्थी मांसाहार धर्म, शौक आदि से पशुओं को नहीं मारता है। असि (शस्त्र-कर्म) मसि (लिखना) कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या या पशुपालन इन छः कारणों से पैसा कमाता है, इनमें जो हिंसा होती है वह संकल्पी नहीं है आरंभी है, उसको गृहस्थी बचा नहीं सकता तो भी यथा शक्ति बचाने का ध्यान रखता है।

गृहस्थी राज्य कर सकता है, दुष्टों व शत्रुओं को दण्ड दे सकता है व उन से युद्ध कर सकता है।

राजदण्ड व लोक दण्ड हो ऐसा झूठ बोलता नहीं व ऐसी

---

* देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने २ ॥ ७ ॥

[पद्मनंदि पच्चीसिका श्रावकाचार]

चोरी करना नहीं, अपनी विवाहिता स्त्री में सन्तोष रखता है, अपनी ममता घटाने को सम्पत्ति का परिमाण कर लेता है कि इतना धन हो जाने पर मैं स्वयं सन्तोष कर के धर्म व परोपकार में जीवन बिताऊँगा।

मांस से कभी शरीर पुष्ट नही होता है, यह हिंसाकारी अप्राकृतिक आहार है। मद्य नशा लाती है, ज्ञान को बिगाड़ती है।

मधु मक्खियों का उगाल है, इस में करोड़ों कीड़े पैदा होते रहते हैं व मरते हैं औषधियों में भी इन तीनों को न लेना चाहिए। †

(६६) श्रावका का विशेष धर्म--
ग्यारह प्रतिमाएँ।

श्रावकों के लिए अपने आचरण की उन्नतिके लिये ग्यारह-श्रेणियां हैं जिन में पहली पहली श्रेणी का आचरण पालते रह कर आगे का आचरण और बढ़ा लिया जाता है। इन ही को प्रतिमा कहते हैं। प्रतिमा जैसे अपने आसन में दृढ़ रहती हैं। वैसे ही स्वकर्तव्य में श्रावक को मज़बूत रहना चाहिये।

(१) दर्शन प्रतिमा—सम्यग्दर्शन में २२ दोष न लगाना, सम्यग्दर्शन का धारी आठ अंग पालता है-

---

† मद्य, मांस मधु त्यागैः सहाणु व्रत पंचकम्।
अष्टौ मूल गुणानाहुः गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥ ६६ ॥
(रत्नकरण्ड)

(१) निःशंकित— जैन के तत्वों में शंका न रखना तथा वीरता के साथ जीवन बिताते हुए इस लोक, परलोक, रोग, मरण, अरक्षा, अगुप्ति, अकस्मात् इन सात तरह के भयों को चित्त में न रखना।

(२) निःकांक्षित—भोगों को अतृप्तिकारी व क्षणभंगुर व बन्ध का कारण जान कर उन की अभिलाषा न करना।

(३) निर्विचिकित्सा—दुःखी व मलीन धर्म के साधन चेतन व अचेतन वस्तु पर घृणा न करना।

(४) अमूढदृष्टि—मूर्खता से देखा देखी कोई अधर्म क्रिया धर्म जान कर न करना।

(५) उपगूहन—दूसरों के औगुण न प्रकट करना।

(६) स्थितिकरण—धर्म में आप को व दूसरों को दृढ़ करना।

(७) वात्सल्य—धर्म व धर्मात्मा में प्रेम रखना।

(८) प्रभावना—धर्म की उन्नति करना।

इन आठ का न पालना सो आठ दोष तथा जाति (माता का कुटुम्ब) कुल, धन, बल, रूप, विद्या, अधिकार तथा तप इन का अभिमान करना ऐसे आठ दोष-

देव, गुरु, लोक की मूढ़ता ऐसी तीन मूढ़ता, अर्थात् लोकों की देखा देखी जो देव, गुरु नहीं हैं उन को मानना व जो क्रिया करने योग्य नहीं है, उन को करना। खड्ग, कलम दावात आदि पूजना।

कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्रों की तथा इन के सेवकों की संगति रखना ये छः अनायतन ऐसे २५ दोष दूर रख कर

निर्मल श्रद्धा रखनी चाहिये। नीचे लिखे सात व्यसन आदि अतीचार सहित दूर कर देना।

(१) जुवा न वदकर खेलना न झूठा ताश, चौपड़ आदि खेलना (२) मांस न खाना और न उन पदार्थों को खाना जिन में मांस का संसर्ग हो जैसे मर्यादा से बाहर का भोजन। भोजन की मर्यादा इस तरह है —

दाल, भात कढ़ी आदि की छः घण्टे की रोटी पूरी आदि की दिन भर, पकवान सुहाल लाडू आदि की २४ घण्टे की, जल बिना अन्न व शक्करसे बनी हुई को पिसे आटे के समान अर्थात् (भारतवर्ष की अपेक्षा) वर्षा ऋतु में ३ दिन, उष्ण में ५ तथा शीत ऋतु में सात दिन। बिना अन्न व जल के बूरे आदि को वर्षा में ७ उष्ण में पन्द्रह दिन तथा शीत में एक मास।

दूध निकालने पर ४८ मिनट के भीतर औटे हुये की २४ घण्टे, दही की भी २४ घण्टे, आचार मुरब्बे की २४ घण्टे।

मक्खन को ४८ मिनट के अन्दर ता कर घी बना लेना चाहिये। उस का जहां तक स्वाद नबिगड़े, इत्यादि मर्यादा के भीतर भोजन करना।

(३) मदिरा आदि सब तरह का मादक पदार्थ न लेना व जिस औषधि में शराब का मेल हो न पीना।

(४) आखेट-शौक से पशुओं का शिकार न करना व उन के चित्राम, मूर्ति आदि को कषाय से ध्वंस न करना।

(५) चोरी- पराया माल न चुराना न चोरी का माल लेना।

(६ वेश्या-वेश्या सेवन न करना न उन की संगति करना, न उन का नाच देखना न उन का गाना सुनना।

(७) पर स्त्री-अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों के साथ कुशील व्यवहार न रखना।

(८) मधु न खाना न फूलों को खाना जिन से मधु एकत्र होता है। इस में मक्खियों को कष्ट दिया जाता है, उन के प्राण लिये जाते व मधुमें अनेक जन्तु पैदा हो कर मरते हैं।

(६) कृमि सहित फल न खाना-जैसे पीपल, बड़, गूलर पाकर व अन्जीर के फल। हर एक फल को तोड़ कर देख कर खाना।

(१०) पानी कुए, वावड़ी, नदी का जो स्वभाव से बहता हो उसको दोहरे गाढ़े वस्त्र से छान, उसके जंतुओं को वहीं पहुंचा कर जहां से जल लिया है वर्तना।

(११) रात्रि को भोजन पान न करना, यदि अशक्य हो तो यथा शक्ति त्याग का अभ्यास करना।

(१२) पहले कहे हुए देव पूजा आदि छः कर्मों में लीन रहना।

(२) व्रत प्रतिमा—बारह व्रतों को पालना। पांच अणुव्रतों को अतीचार (दोष) रहित नियम से पालना। उनके सहायक सात शीलों को पालना व उनके अतीचारों के टालने का अभ्यास करना। पांच अणुव्रत ये हैं-(१) अहिंसा अणुव्रत संकल्प करके त्रस जन्तुओं को न मारना। इस के पांच अतिचार हैं-कषाय से प्राणी को बन्धन में डालना, लाठी चाबुक से मारना, अंग उपांग छेदना, किसी पर अधिक बोझा

लादना, अपने आधीन मनुष्य या पशुओं को भोजन पान समय पर न देना व कम देना। ये दोष न लगाने चाहिये। न्याय व शुभ भावना से ये कार्य किये जांय तो दोष नहीं है। (२) सत्य अणुव्रत–स्थूल झूठ न बोलना। इसके भी ५ अतीचार हैं–दूसरों को झूठा व मिथ्या मार्ग का उपदेश देना। पति पत्नी की गुप्त बातों को कहना, झूठा लेख लिखना, अधिक परिमाण में रक्खी हुई वस्तु को अल्प परिमाण में मांगने पर दे देना शेष अंश को जान बूझकर अपनालेना, दोचार की गुप्त सम्मति कषाय से प्रगट कर देना। (३) अचौर्य अणुव्रत–स्थूल चोरी न करना। इसके ५ अतीचार हैं–दूसरे को चोरी का उपाय बताना, चोरी का माल लेना, राज्य में गड़बड़ होनेपर अन्याय से लेन देन करना, मर्यादा को उलंघना कमती बढ़ती तोलना नापना, सच्ची में झूठी वस्तु मिला सच्ची कहकर बेचना या झूठा रुपया चलाना।

(४) ब्रह्मचर्य अणुव्रत– अपनी स्त्री में संतोष रखना। इसके पांच अतीचार बचाना–अपने पुत्र पुत्री सिवाय दूसरों की सगाई विवाह करना, वेश्याओं से संगति रखना, व्यभिचारिणी पर स्त्रियोंमें संगति रखना, काम के नियत अंग छोड़ कर और अङ्गों में चेष्टा करना, स्वस्त्री से भी अतिशय काम चेष्टा करनी।

(५) परिग्रह परिमाण अणुव्रत–अपनी इच्छा तथा आवश्यकता के अनुसार १० प्रकार की परिग्रह का जीवन पर्यंत परिमाण कर लेना।

(१) क्षेत्र—खाली जमीन खेतादि (२) वस्तु—मकानादि (३) धन—गाय भैंस घोड़ा आदि, (४) धान्य अन्नादि,(५)

हिरण्य, चांदी आदि, (६) सुवर्ण—सोना जवाहिरात आदि, (७) दासी, (८) दास; (६) कुप्य कपड़े (१० भांड—वर्तन।

एक समय में इतने से अधिक न रक्खूंगा ऐसा परिमाण करले। इनके पांच अतीचार ये हैं कि इन दश वस्तुओं के पांच जोड़े हुए, इनमें से एक जोड़े में एक की मर्यादा बढ़ाकर दूसरे को घटा लेना, जैसे क्षेत्र रक्खे थे ५० बीघे, मकान थे दश, तब क्षेत्र ५५ बीघे करके मकान एक घटा देना। सात शील ये हैं—

(१) दिग्व्रत—जन्म पर्यन्त सांसारिक कार्यों के लिये दश दिशाओं में जाने आने, माल भेजने मँगाने का प्रमाण बांध लेना, जैसे पूर्व में २००० कोशतक। इसके पांच अतीचार हैं—

ऊपर को लोभ या भूल से अधिक चलेजाना, नीचे को अधिक जाना, आठ दिशाओं में किसी में अधिक चले जाना किसी तरफ मर्यादा बढ़ा लेना किसी तरफ घटादेना, मर्यादा को याद न रखना।

(२) देशव्रत—प्रति दिन व नियमित काल तक दिग्व्रत में की हुई मर्यादा को घटाकर रख लेना। इसके पांच अतीचार हैं—

मर्यादा के बाहर से मंगाना या भेजना, बाहर वाले से बात करना, उसे रूप दिखाना या कोई पुद्गल फेंक कर काम बता देना।

(३) अनर्थदण्ड विरति—अनर्थ पापसे बचना, जैसे दूसरों को पाप करने का उपदेश देना। उनका बुरा विचारना,

हिंसा कारी वस्तु खड्ग, बरछी मांगे देना, खोटी कथाएं पढ़ना, सुनना, आलस्य से वर्तना जैसे पानी व्यर्थ फेंकना आदि।

इनके पांच अतीचार हैं—

असभ्य भंड वचन कहना, काय की कुचेष्टा सहित भंड वचन कहना, बहुत बकवाद करना, बिना विचारे काम करना, व्यर्थ भोग उपभोग को एकत्र करना। इन तीन को गुणव्रत कहते हैं।

(४) सामायिक—नित्य तीन, दो व एक संध्या को धर्मध्यान करना-जैसा पहले तप आवश्यक में कहा जा चुका है। इसके पांच अतीचार हैं बचाना—

मनमें अशुभ विचार, अशुभ वचन कहना, अशुभ कायको वर्तना अनादर रखना, पाठ, आदि भूल जाना।

(५) प्रोषधोपवास—अष्टमी, चौदस मास में चार दिन उपवास करना अथवा एक भुक्त करना व धर्म ध्यान में समय बिताना। इसके पांच अतीचार ये हैं—

बिना देखे व बिना झाड़े कोई वस्तु रखना, कोई वस्तु उठाना, चटाई आदि बिछाना, अनादर से करना, धर्म साधन की क्रियाओं को भुला देना।

(६) भोगोपभोगपरिमाण—पांचों इन्द्रियों के योग्य पदार्थों का नित्य परिमाण करना। १७ नियम प्रसिद्ध हैं—

(१)-भोजन कैदफे (२) पानी भोजन सिवाय कैदफे (३) दूध, दही, घी, शक्कर, निमक, तेल, इन छः रसों में किस का त्याग (४) तेल उबटन कैदफे (५) फूल सूंघना कैदफे (६)

ताम्बूल खाना कैदफ़े (७) सांसारिक गाना बजाना कैदफे (८) सांसारिक नृत्य देखना कै दफे (९) काम सेवन कै दफे (१०) स्नान कैदफे (११) वस्त्र कितने जोड़ (१२) आभूषण कितने (१३) बैठने के आसन कितने (१४) सोने की शय्या कितनी (१५) सवारी कितनी व कैदफे (१६) हरी तरकारी व सचित्त वस्तु कितनी (१७) सर्व भोजन पान वस्तुओं की संख्या। इनमें से जिस किसी को न भोगना हो बिल्कुल त्याग देवे। इसके पांच अतीचार हैं—

भूलसे छोड़ी हुई सचित्त वस्तु खालेना, छोडी हुई सचित्त पर रक्खी हुई या उससे ढकी हुई वस्तु खाना छोड़ी हुई सचित्त से मिली वस्तु खालेना, कामोद्दीपक रस खाना, अपक्व व दुष्पक्व पदार्थ खाना।

(७) अतिथिसंविभाग—अतिथि या साधु को दान देकर भोजन करना। अपने कुटम्ब के लिये बनाये भोजन में से पहले कहे तीन प्रकार के पात्रों को दान देना। नौ प्रकार भक्ति यथा संभव पालना। भक्ति से पड़गाहना घरमें लेजाना, उच्च आसन देना, पग धोना, नमस्कार करना, पूजना, मन शुद्धि बचन शुद्धि काम शुद्धि, भोजन शुद्धि रखना। साधु के लिये नौ भक्ति पूर्ण करना योग्य है। इसके पाँच दोष बचाना जो साधु क. व सचित्त त्यागी को दान की अपेक्षा से हैं—

सचित्त (हरापान) पर रखी वस्तु देना, सचित्त से ढकी वस्तु देना, आप बुलाकर स्वयं न दान दे दूसरे को दान करना कह कर चले जाना, ईर्षा से देना, समय उल्लंघन कर देना।

इन अन्त के चार को शिक्षाव्रत कहते हैं।

(३) सामायिक प्रतिमा—

उसमें इतनी बात बढ़ जाती है कि श्रावक को नियम पूर्वक तीन दफे सामायिक करनी होती है। सवेरे, दोपहर और साँझ। कम से कम समय ४८ मिनट का लगाना चाहिये। किसी विशेष अवसर पर कुछ कम भी लगा सकता है। सामायिक ५ दोष रहित करना चाहिये।

(४) प्रोषधोपवास प्रतिमा—

इस में एक मास में दो अष्टमी दो चौदसचार दफे उपवास करना और उसके पांच दोष टालना। इसके दो तरह के भेद हैं:—

प्रथम यह है कि पहले व तीसरे दिन एक दफे भोजन बीच में १६ पहर का उपवास, मध्यम पहले दिनकी संध्या से तीसरे दिन प्रातःकाल तक १२ पहर जघन्य भोजन पान इतने काल छोड़ते हुए व्यापार व आरम्भ का त्याग केवल अष्टमी तथा चौदस को आठपहर हो करना।

दूसरा भेद यह है कि पहले और तीसरे दिन एक भुक्त करना तथा १६ पहर धर्मध्यान करना, मध्यम यह है कि इस मध्य में केवल जल लेना जघन्य यह है कि जल के सिवाय अष्टमी या चौदस को एक भुक्त भी करना, जैसी शक्ति हो उसके अनुसार उपवास करना चाहिये। उपवास का दिन सामायिक, स्वाध्याय, पूजा आदि में बिताना चाहिये।

[५] सचित्तत्याग प्रतिमा—धान्य वनस्पति आदि कच्ची अर्थात् एकेन्द्रिय जीव सहित दशामें न लेना। जिह्वाका

स्वाद जीतने को गर्म या प्रासुक पानी पीना व रंधी हुई या छिन्न भिन्न की हुई या लवण आदि से मिली हुई तरकारी खाना। सचित्त के खाने मात्र का यहां त्याग है। सचित्त के व्यवहार का व सचित्त का अचित्त करने का त्याग नहीं है। सचित्त को अचित्त बनाने की रीति यह है।

सुक्कं पक्कंतत्तं अंबललवणेहि मिस्सियंदव्वं।
जं जं तेण्णय छण्णं तं सव्वं पासुयं भणियं॥

अर्थात्-सूखी, पकी, गर्म, खटाई या नमक से मिली हुई तथा यन्त्र से छिन्न भिन्न की हुई वस्तु प्रासुक है। पानी में लवंग आदि का चूरा डालने से यदि उसका वर्ण, रस बदल जावे तो वह अचित्त होता है। पके फल का गूदा प्रासुक है। बीज सचित्त है। इस भोगोपभोग के ५ दोष बचाना चाहिये।

(६) रात्रि भुक्तित्याग प्रतिमा—

रात्रि को जल पान व भोजन न आप करना। न दूसरों को कराना। दो घड़ी अर्थात् ४८ मिनट सूर्यास्त से पहले तक व ४८ मिनट सूर्योदय होने पर भोजन पान करना, रात्रि को भोजन सम्बन्धी आरम्भ भी नहीं करना, पूर्ण सन्तोष रखना।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—

अपनी स्त्री भोग का भी त्याग कर देना। उदासीन वस्त्र पहनना, वैराग्य भावना में लीन रहना।

(८) आरम्भत्याग प्रतिमा—

कृषि वाणिज्य आदि व रोटी बनाना आदि आरम्भ बिलकुल छोड़ देना अपने पुत्र व अन्य कोई भोजन के लिये

बुलावे तो जीम आना, अपने हाथ से पानी स्वयं न लेना। जो कोई दे उससे अपना व्यवहार बड़े सन्तोष से करना॥

(९) परिग्रहत्याग प्रतिमा—

धनधान्यादि परिग्रह दान के लिये देकर शेष पुत्र पौत्रों को देदेना, अपने लिये कुछ आवश्यक वस्त्र व भोजन रखलेना और धर्मशाला आदि में ठहरना, भक्ति से बुलाए जाने पर जो मिले सन्तोष से जीम लेना।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमा—सांसारिक कार्यों में सम्मति देने का त्याग न था सो इस दर्जे में बिलकुल त्याग देना है। भोजन के समय बुलाए जाने पर जीम लेना है।

(११) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा—अपने निमित्त किए हुए भोजन का त्याग यहां होना है। जो भोजन गृहस्थ ने अपने कुटुम्ब के लिये किया हो उसी में से भिक्षा द्वारा भक्ति से दिये जाने पर लेता है। इस के दो भेद हैं।—

(१) क्षुल्लक—जो एक खण्ड चादर व एक कोपीन या लंगोट रखते हैं व मोर पंख की पीछी व कमण्डल रखते हैं। बालों को कतराते हैं गृहस्थ के यहां थाली में बैठ कर एक दफे जीमते हैं।

(२) ऐलक—जो केवल एक लंगोटी ही रखते हैं। मुनि की क्रियाओं का अभ्यास करते हैं। गृहस्थ के यहां बैठ कर हाथ में जो रखा जावे उसे ही जीमते है। स्वयं मस्तक, दाढ़ी मूंछ के केशों को उखाड़ डालते हैं।

जब लंगोटी भी छोड़ दी जाती है तब साधु के २८ मूल

गुण धारण किये जाते हैं जिनका वर्णन नं० ६५ में किया जा चुका है।

इन ग्यारह प्रतिमाओं में आत्मध्यान का अभ्यास बढ़ाया जाता है तथा इनसे धीरे धीरे उन्नति होती जाती है। +

७० जैनियों के संस्कार

जिन क्रियाओं से धर्म का संस्कार मानव की बुद्धी पर पड़े ऐसे संस्कार श्री महापुराण (जिनसेनाचार्य कृत) अ० ३८, ३९, ४० में है।

सन्तान को योग्य बनाने के लिये इनका किया जाना अति आवश्यक है। जो जन्म के जैनी हैं उनके लिये कर्त्तन्वय क्रियाएँ ५३ बताई गई हैं। जो मिथ्यात्व छोड़ कर जैनी बनते हैं उनके लिये दीक्षान्वय नाम की ४८ क्रियाएँ हैं।

इन क्रियाओं में प्रायः पंच परमेष्ठी का पूजन, होम, विधानादि होता है हम उन का बहुत संक्षेप में भाव दिखलाते हैं।

(१) गर्भाधान क्रिया—पत्नी रजस्वला होकर पांचवें या छठे दिन पति सहित देव पूजादि करे फिर रात्रि को सहवास करे।

+ दंसणवय सामायिय पोसह सचित्तराय भत्तेय। बम्भारंभपरिग्गह अणुमण मुद्दिट्ठ देस विरदेदे ॥ २ ॥ (कुंदकुंद कृतद्वादशानुप्रेक्षा) श्रावक पदानि देवैरेकादशदेशितानियेषुखलु। स्व गुणाः पूर्व गुणैः सह संतिष्ठंतेक्रम विवृद्धाः ॥ १३६

(विशेष देखो रत्नकरण्ड श्लोक १३७ से १४७)

(२) प्रीति क्रिया—गर्भ से तीसेरे महीने पूजा व उत्सव करना।

(३) सुप्रीति क्रिया—गर्भ से पांचवें मास में पूजा व उत्सव करना।

(४) धृति क्रिया—गर्भ वृद्धि के लिये ७ वें मास में पूजा व उत्सव करना।

(५) मोद क्रिया—नौवें मास में पूजा उत्सव कर के गर्भिणी के शिर पर मंत्र पूर्वक बीजाक्षर लिखना व रक्षा-सूत्र बांधना।

(६) प्रियोद्भव क्रिया—जन्म होने पर पूजा व उत्सव करना।

(७) नाम कर्म क्रिया—जन्म से १२ वें दिन पूजा कराके गृहस्थाचार्य द्वारा नाम रखवाना व उत्सव करना।

(८) बहिर्यान क्रिया—दूसरे, तीसरे, या चौथे मास पूजा कराके प्रसूतिगृह से बालक सहित मा का बाहर आना।

(९) निषद्या क्रिया—बालक को बिठाने की क्रिया पूजा सहित करना।

(१०) अन्न प्राशन क्रिया—७ या ८ या ९ मास का बालक हो तब उसे पूजा उत्सव पूर्वक अन्न खिलाना शुरू करना।

(११) व्युष्टिक्रिया—एक वर्ष होने पर पूजा सहित वर्ष गांठ करनी।

(१२) केशवाय क्रिया—जब वालक २, ३ या ४ वर्ष का हो जावे तव पूजा करके सर्व केशों का मुंडन कराके चोटी रखना।

(१३) लिपि संख्यान क्रिया—जब पांच वर्ष का बालक हो जावे तो पूजा के साथ उपाध्याय के पास अक्षरारम्भ कराना।

(१४) उपनीति क्रिया—आठवें वर्ष में बालक को पूजा व होम सहित तथा योग्य नियम कराकर रत्नत्रयसूचक जनेऊ देना।

(१५) व्रतचर्या क्रिया—ब्रह्मचर्य पालते हुए गुरु के पास विद्या का अभ्यास करना श्रावक के पांच व्रतों का अभ्यास करना।

(१६) व्रतावरण क्रिया—विद्या पढ़ के यदि वैराग्य हो गया हो तो मुनि दीक्षा ले नही तो ब्रह्मचर्य छात्र का भेष छोड़ अब घर में रहकर योग्य आजीविकादि करे व धर्म पाले।

(१७) विवाह क्रिया—योग्य कुल वय की कन्याके साथ पूजा उत्सव सहित लग्न करना-सात दिन तक पति पत्नी ब्रह्मचर्य से रहें फिर मंदिरों के दर्शन कर कंकण डोरा खोलें और संतान के लिये सहवास करें।

इन ५७ संस्कारों में जो पूजा की जाती है उस की विधि मंत्र सहित संक्षेप में गृहस्थ धर्म पुस्तक में दी हुई है।

(१८) वर्णलाभ क्रिया—माता पिता से द्रव्य ले स्त्री सहित जुदा रहना।

(१९) कुलचर्या क्रिया—कुल के योग्य आजीविका करके देव पूजादि गृहस्थ के छः कर्मों में लीन रहना।

(२०) गृहीशिता क्रिया—ज्ञान व सदाचारादि में प्रवीण होकर गृहस्थाचार्य का पद पाना, परोपकार करने में लीन रहना, विद्या पढ़ाना, औषधि देना, भय दूर करना।

(२१) प्रशांतिक्रिया—पुत्र को घर का भार सौंप आप विरक्त भाव से रहना।

(२२) गृहत्याग क्रिया-घर छोड़ कर त्यागी होजाना।

(२३) दीक्षा क्रिया-श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं को पूर्ण करना।

(२४) जिन रूपता क्रिया—नग्न हो वस्त्रादि परिग्रह त्याग मुनिपद धारण करना।

(२५) मौनाध्ययन व्रत क्रिया—मौन सहित शास्त्र पढ़ना।

(२६) तीर्थंकर भावना—सोलह कारण भावना विचारनी

(२७) गुरुस्थापनाभ्युपगम—आचार्य पदके काम का अभ्यास करना।

२८ गणोपग्रहण—उपदेश करना प्रायश्चित्त देना।

(२९) स्वगुरुस्थानसंक्रांति—आचार्य पदवी स्वीकार करनी।

(३०)—आचार्य पदवी शिष्य को देकर आप अकेले विहार करना।

(३१) योग निर्वाण संप्राप्ति—मन की एकाग्रता का उद्यम करना।

(३२) योग निर्वाणसाधन—आहारादि त्याग समाधिमरण करना।

(३३) इन्द्रोपपाद—मरण कर के इन्द्र पद पाना।

(३४) इन्द्राभिषेक—इन्द्रासन का न्हवन होना।

(३५) विधि दान—दूसरों को विमान ऋद्धि आदि देना।

(३६) सुखोदय—इन्द्र पद का सुख भोगना।

(३७) इन्द्र पद त्याग—इन्द्र पद त्यागना।

(३८) गर्भावतार—तीर्थंकर होने के लिये माँ के गर्भ में आना।

(३९) हिरण्यगर्भ—गर्भ में आने के कारण छः मास पहले से रत्न वृष्टि होना।

(४०) मन्दरेन्द्राभिषेक—तीर्थंकर का जन्म हो कर सुमेरु पर अभिषेक।

(४१) गुरु पूजन—तीर्थंकर को गुरु मान इन्द्रादि देव पूजते हैं।

(४२) यौवराज्य—तीर्थंकर का युवराज होना।

(४३) स्वराज्य—तीर्थंकर का स्वतन्त्र राज्य करना।

(४४) चक्रलाभ—चक्रवर्ती पद के लिए नौ निधि १४ रत्नों का पाना।

(४५) दिशांजय—छः खण्ड पृथ्वी जीतने को निकलना।

(४६) चक्राभिषेक—लौटने पर चक्रवर्ती का अभिषेक।

(४७) साम्राज्य—अपनी आज्ञानुसार राजाओं को चलाना।

(४८) निष्क्रान्ति—पुत्रों को राज्य दे दीक्षा लेना।

(४९) योग संग्रह—केवल ज्ञान प्राप्त करना।

(५०) आर्हन्त्य—समवशरण की रचना होनी।

(५१) विहार—धर्मोपदेश देनेके लिये विहार करना।

(५२) योग त्याग—योग को रोक कर अयोगी होना।

(५३) अग्र निवृत्तिः—मोक्षपद पाना।

इन क्रियाओं में किस तरह एक संस्कार प्राप्त बालक

क्रम से तीर्थंकर हो कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है उस का स्पष्ट कथन है।

जो जन्म से जैन नहीं है और जैन धर्म स्वीकार करे उस की दीक्षान्वय क्रियायें ४८ हैं।

(१) अवतार क्रिया—कोई अजैन किसी जैन आचार्य गृहस्थाचार्य के पास जा कर प्रार्थना करे कि मुझे जैन धर्म का स्वरूप कहिए तब गुरु उसे समझावें।

(२) व्रत लाभ क्रिया—शिष्य धर्म को सुन कर उस पर श्रद्धा करता हुवा स्थूल रूप से पाँच अणुव्रत गृहण और मदिरा, मधु, मांस, तीन प्रकार का त्याग करता है।

(३) स्थानलाभ—शिष्य को एक उपवास व पूजा करा कर उसको पवित्र करे व णमोकार मन्त्र का उपदेश देवे।

(४) गण गृह—शिष्य के घर में जो अन्य देवों की स्थापना हो तो उन को विसर्जन करे।

(५) पूजाराध्य—भगवान की पूजा करे, द्वादशांग जिन वाणी सुने व धारे।

(६) पुण्य यज्ञ क्रिया—१४ पूर्व शिष्य सुने।

(७) दृढ़ चर्या—जैन शास्त्रों को जान कर अन्य शास्त्रों को जाने।

(८) उपयोगिता—हर अष्टमी चौदस को उपवास करे, ध्यान करे।

(९) उपनीति—इस को यज्ञोपवीत गृहंण करावे।

(१०) व्रतचर्या—जनेऊ लेकर कुछ काल ब्रह्मचर्य पाल गुरु से उपासकाध्ययन या श्रावकाचार पढ़े।

(११) व्रतावरण—गृहस्थाचार्य के निकट ब्रह्मचारी का भेष उतारे।

(१२) विवाह—जो पहिली विवाहिता स्त्री हो तो श्राविका बनावे। यदि न हो तो वर्ण लाभ क्रिया कर के विवाह करे।

१३ वर्णलाभ—गृहस्थाचार्य इस की योग्यता देख कर उस का वर्ण स्थापित करे और फिर सर्व श्रावकों से जो उस वर्ण के हों उसके साथ विवाहादि सम्बन्ध करने को कहें।

जो शूद्र की आजीविका न करते हों किन्तु क्षत्रिय, ब्राह्मण वैश्यवत् आचरण करते हों उन की अपेक्षा ये क्रियायें कही हैं।

इस के आगे की क्रिया कर्त्रन्वय के समान नं० १६ से ५३ तक जाननी। पहले १८ क्रियायें कही थीं यहां १३ कहीं ये ही ५ क्रियायें कम हो गईं।

(७१) जैनियों में वर्णव्यवस्था

जैनियों में भी इस भरत क्षेत्र के इस कल्प में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने उस समय जब कि समाज में कोई वर्ण व्यवस्था प्रकट रूप से न थी, जिन लोगों के आचार व्यवहार

को क्षत्रियों के योग्य समझा उनको क्षत्रिय, जिनके आचार को वैश्य के योग्य समझा उनको वैश्य तथा जिन के आचरण को शूद्र के योग्य समझा उन को शूद्र वर्ण में प्रसिद्ध किया।

क्षत्रियों को आजीविका के लिये असि कर्म या शस्त्रविद्या वैश्यों को मसि (लेखन) कृषि, वाणिज्य तथा शूद्रों को शिल्प विद्या (कला आदि) कर्म नियत किया तथा प्रत्येक को अपने २ वर्ण में विवाह करना ठहराया।

इसके पीछे श्री भरतचक्रवर्ती ने दान करने के लिये उन्हीं में से जो श्रावक धर्म अच्छी तरह पालते थे, दयावान थे, उनको ब्राह्मण वर्ण में ठहराया। महा पुराण के पर्व ३८ में हैं—

मनुष्य जाति रेकैव जाति नामोदयोद्भवा।
वृत्तिभेदा हिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ ४५ ॥
ब्राह्मणाव्रत संस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्र धारणात्।
वाणिज्योऽर्थार्जनान्न्याय्यात् शूद्रान्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥ ४६ ॥

भावार्थ-जाति नाम कर्मके उदय से मनुष्य जाति एक ही है तथापि जीविका के भेद से वह भिन्न २ चार प्रकार की होगई हैं। व्रतों के संस्कारों से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्याय से द्रव्य कमाने से वैश्य, नीच वृत्तिका आश्रय करने से शूद्र कहलाते हैं।

यह भी व्यवस्था हुई कि आवश्यकता हुई तो ब्राह्मण क्षत्रियादि तीन वर्ण की, क्षत्रिय वैश्यादि दो वर्णकी व वैश्य शूद्र की कन्या लेसकता है।

शूद्र सिवाय तीन वर्ण उच्च समझे गये जो प्रतिष्ठा, अभिषेक, मुनिदान कर सकते व परस्पर एक पंक्ति में भोजन पान कर सकते।

जैन पुराणों में तीनों वर्णों में परस्पर विवाह होने के भी अनेक उदाहरण हैं-जैसे क्षत्रिय की कन्या का वैश्य पुत्रको विवाहाजाना और इसको कोई निंदा नहीं की गई है। *

(७२) जैनियों में स्त्रियों का धर्म और उनकी प्रतिष्ठा

जैनियों में स्त्रियों के लिये वे ही धर्म क्रियाएं हैं जो पुरुषों के लिये हैं। श्रावक धर्म की ग्यारह प्रतिमाएँ वे पाल सकती हैं। वे नग्न नहीं होसकतीं इस लिये साधु पद नही धारण कर सकतीं और न उसी जन्म से निर्वाण लाभ कर सकती हैं। उनका उत्कृष्ट आचरण आर्यिका का होता है जो एक सफेद सारी रख सकती हैं।

---

* शूद्राशूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तांच नैगमः।
वहेत्स्वांते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्चताः ॥ २४७ ॥
[आदिपुराण पर्व १६]

भावार्थ--शूद्र शूद्र की कन्या से विवाह करे अन्य से नहीं, वैश्य वैश्यकी कन्या से तथा शूद्र की कन्या से भी, क्षत्रिय क्षत्रिय की कन्या से व वैश्य व शूद्र की कन्या से भी, ब्राह्मण ब्राह्मण कन्या से व कभी क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र की कन्या से भी। (अर्थ पं० लालाराम कृत)

ऐलक के समान मोर पिच्छिका व कमंडल रखती व भिक्षा वृत्ति से श्रावक के यहां बैठकर हाथ में भोजन करती, व केशों का लौंच करती हैं। उनका श्री जिनेन्द्र की पूजा अभिषेक[1] व मुनिदान का निषेध नहीं है।

रजोधर्म में चार दिन तक, प्रसूति में ४० दिन तक व पांच मास की गर्भावस्था में पूजा, अभिषेक व मुनिदान स्वयं नहीं कर सकती हैं।

स्त्रियों की प्रतिष्ठा यहां तक है कि राजा लोग उनको अपने सिंहासन का आधा आसन देते थे। वे पति के न होने पर कुल सम्पत्ति की स्वामिनी हो सकती व पुत्र गोद ले सकती हैं।

(७३) भरतक्षेत्र में प्रसिद्ध चौबीस जैन तीर्थंकर

भरतक्षेत्र जिसके भीतर हम लोग रहते हैं। छः खण्डों में बटा हुआ है। पांच म्लेच्छ खण्ड एक आर्य खण्ड। आर्य-खण्ड में अवस्थाओं का विशेष परिवर्तन हुआ करता है।

एक कल्पकाल बीस कोड़ा कोड़ी सागर का होता है। १ सागर अनगिनती वर्ष लेने चाहिये। इस काल के दो भेद हैं। अवसर्पिणी उत्सर्पिणी।

जिसमें आयुकाय घटती जाय वह अवसर्पिणी, जिस में बढ़ती जाय वह उत्सर्पिणी है।

१—पं० माणिकचन्दजी की सम्मति है स्त्रियोंके अभिषेक करने में हमारी सम्मति नहीं है क्यों कि उनके मलस्राव विशेष है।

हर एक के ६ भाग हैं अवसर्पिणी के ६ भाग ये हैं—

(१) सुषमा सुषमा-४ कोड़ा कोड़ी सागर का (२) सुखमा तीन कोड़ा कोड़ी सागर का (३) सुखमा दुखमा-दो कोड़ा कोड़ी सागर का (४) दुखमा सुखमा-४२००० वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर का (५) दुखमा-२१००० वर्ष का (६) दुखमा दुखमा--२१०,० वर्ष का।

उत्सर्पिणी में इसका उल्टा क्रम है। जो छठा है वह यहां पहला है। दोनों कालोंका समय बीस कोड़ा कोड़ी सागर का है। सुखमा सुखमा, सुखमा, व सुखमा दुखमा कालों में भोगभूमि की अवस्था अवनति रूप रहती है। जब कि शेष तीन में कर्मभूमि रहती है।

जहां कल्पवृक्षों से आवश्यक वस्तु लेकर स्त्री पुरुषसंतोष से जीवन विताते हैं उसे भोगभूमि व जहां असि (शस्त्रकर्म), मषि (लेखन) कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या से परिश्रम करते धन कमाते, उससे अन्नादि ले भोजनादि बनाते, सन्तान उत्पन्न करते आदि कार्य स्त्री पुरुष करते हैं उसे कर्मभूमि कहते हैं।

हर एक अवसर्पिणी के चौथे काल में चौवीस महापुण्यवान पुरुष समय समय पर जन्मते हैं जो धर्मतीर्थ का प्रकाश करते हैं उनको तीर्थंकर कहते हैं। और वे उसी जन्मसे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे ही उत्सर्पिणी के तीसरे काल में उन जीवों से भिन्न जीव * २४ तीर्थंकर होते हैं। इस तरह इस

---

* चउवीस वार निघणं तित्थयरा छत्ति खंड भरहवई।
तुरिये काले होंति हु तेवहि सलाग पुरिसाते ॥८०३॥
(त्रिलोकसार)

भरत के आर्यखण्ड में सदा ही २४ तीर्थंकर भिन्न २ जीव होते रहते हैं।

वर्तमान में यहां अवसर्पिणी का पांचवां काल चल रहा है। जब चौथे काल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष थे तब श्री महावीर भगवान, जो बौद्धगुरु गौतमबुद्ध के समकालीन व उनसे पूर्व जन्मे थे मोक्ष पधारे थे। अब वीर निर्वाण संवत् २४५२ चलता है।

गत चौथे काल में जो २४ महापुरुष जन्मे थे वे सब क्षत्रिय वंश के राज्य कुलों में हुए थे।

इनमें से पहले १५, व १६ वें २१ वें २३ वें व २४ वें इक्ष्वाकुवंश में व २२ वें यदुवंश में जन्मे थे। श्रीपार्श्वनाथ का वंश व श्रीमहावीर का नाथवंश भी कहलाता था।

२४ में से उन्नीस राज्य करके गृहस्थ होकर फिर साधु हुए केवल पांच--अर्थात् १२ १६, २२, २३, व २४ ने कुमारवय से ही मुनिपद ले लिया, विवाह नहीं किया।

भरतक्षेत्र में जो तीर्थंकर पद के धारी होते हैं वे जगत में भ्रमण करने वाले जीवों में से ही होते हैं। जिसने तीर्थंकर होने से पहले तीसरे भव में तपस्या करके व आत्मज्ञान प्राप्त करके, आत्मीक आनन्द की रुचि पाकर संसार के इन्द्रिय सुख को आकुलतामय जाना हो तथा सर्व जीवों का

भावार्थ—भरत क्षेत्र के चौथे कालमें त्रेसठ शलाका पुरुष होते रहते हैं। २४ तीर्थंकर १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलभद्र, ९ प्रतिनारायण।

अज्ञान मिटे व उनको सच्चा मार्ग मिले ऐसी दृढ़ भावना को हो वही विशेष पुरुष विशेष पुण्य बांधकर तीर्थंकर जन्मता है। कोई ईश्वर या शुद्ध या मुक्त आत्मा शरीर धारण नहीं करता है।

हर एक तीर्थंकर इतने पुण्यात्मा होते हैं कि इन्द्रादि देव उनके जीवन के पांच विशेष अवसरों पर परम उत्सव करते हैं इनको पंच कल्याणक कहते हैं।

(१) गर्भ कल्याणक—जब माता के गर्भ में तिष्ठते हैं तब सीपो में मोती के समान माता को बिना कष्ट दिये रहते हैं। गर्भ समय माता सोलह स्वप्ने देखती है—

(१) हाथी (२) बैल (३) सिंह (४) लक्ष्मीदेवी का अभिषेक (५) दो मालायें (६) सूर्य (७) चन्द्र (८) मछली दो (९) कनकघट (१०) कमल सहित सरोवर (११) समुद्र (१२) सिंहासन (१३) देव विमान (१४) धरणेन्द्रभवन (१५) रत्नराशि (१६) अग्नि। जिन का फल महा पुरुष का जन्म सूचक है।

इन्द्र की आज्ञा से गर्भ से छः मास पूर्व से १५ मास तक माता पिता के आंगन में रत्नों की वर्षा होती है। राजा रानी खूब दान देते हैं।

गर्भ समय से अनेक देवियाँ माता की सेवा करती रहती हैं।

(२) जन्म कल्याणक—जन्म होते ही इन्द्र व देव आते हैं और बड़े उत्सव से सुमेरु पर्वत पर लेजाकर पांडुक

बन में पांडुक शिला पर विराजमान करके क्षीर समुद्र के पवित्र जल से स्नान कराते हैं।

उसी समय इन्द्र नाम रखता है व पग में चिन्ह देखकर चिन्ह स्थिर करता है।

तीर्थंकर महाराज अबसे गृहस्थावस्थामें रहने तक इन्द्रद्वारा भेजे वस्त्र व भोजन ही काम में लेते हैं। इनको जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञान होते हैं इससे तीर्थंकर को बिना किसी गुरुके पास विद्याध्ययन किये सर्व विद्याओं का परोक्षज्ञान होता है। आठ वर्ष की आयुमें ही गृहस्थ धर्ममयी श्रावक के व्रतों को आचरने लगते हैं। यदि कुमारवय में वैराग्य न हुवा हो तो विवाह कर के सन्तान का लाभ करते व नीति पूर्ण राज्य प्रबन्ध चलाते हैं।

(३) तप कल्याणक—जब वैराग्य होता है तब भी इन्द्रादिक देव आते हैं और अभिषेक कर नये वस्त्राभूषण पहरा, पालकी पर चढ़ा अपने कंधो पर बनमें लाते हैं। वहां एक शिलापर वृक्षके नीचे बैठकर, प्रभु वस्त्राभरण उतार कर अपने ही हाथों से अपने केशों को उपाड़ (या लोंच) डालते हैं फिर सिद्ध परमात्माको नमस्कार कर स्वयं मुनि की क्रियाओं को पालने लगते हैं। आत्मज्ञान पूर्वक तप करते हैं, मात्र शरीर को सुखाते नहीं। आत्मानन्द में इतने मग्न होजाते हैं कि जब तक केवलज्ञान (पूर्णज्ञान) न प्रगटे तब तक मौन रहते हैं।

(४) ज्ञान कल्याक—जब पूर्णज्ञान होजाता है तब वह जीवन्मुक्त परमात्मा होजाते हैं, उस समय उनको अरहंत कहते हैं। उनके अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, परम वीतरागता, अनन्त सुख आदि स्वाभाविक गुण प्रगट हो जाते हैं।

इच्छा नहीं रहती है, भूख, प्यास, शर्दी, गर्मी, रोगादि की बाधा नहीं होती है। शरीर कपूर के समान शुद्ध परमाणुओं बदल जाता है, आकाश में विना आधार बैठते या विहार करते हैं। उस समय इन्द्रादिक देव आकर एक सभा मंडल रचते हैं जिसको समवशरण कहते हैं। इसमें बारह सभाएँ होती हैं, जिनमें देव, मनुष्य, पशु सब बैठते हैं। भगवान तीर्थंकर की दिव्य वाणी द्वारा धर्मामृत की वर्षा होती हैं। सब अपनी २ भाषा में समझते हैं। जो साधुओं के गुरु गणधर होते हैं वे धारणा में लेकर ग्रन्थ रचना करते हैं।

(५) मोक्ष कल्याणक—जब आयु एक मास या कम रह जाती है तब विहार व उपदेश बंद होजाता है। एक स्थलपर तीर्थंकर ध्यान मग्न रहते हैं

आयु समाप्त होने पर सर्वसूक्ष्म और स्थूल शरीरों से मुक्त होकर, पुरुषाकार ऊपर को गमन करके लोक के अन्त में विराजमान रहते हुए, अनन्तकाल के लिये जन्म मरण से रहित हो आत्मानन्द का भोग किया करते हैं।

इस समय इनको परमात्मा या सिद्ध कहते हैं। इस समय भी इन्द्रादि आकर शेष शरीर की दग्ध क्रिया करके बहुत बड़ा उत्सव मनाते हैं तथा जहां से मुक्ति होती है वहां चिन्ह १ कर देते हैं। वह सिद्ध क्षेत्र प्रसिद्ध होता है।

१—चिन्ह करने का प्रमाण—

ककुदंभवः खचर योषिदुषित शिखरैरलं कृतः।
मेघ पटल परिवीत तटस्तत्र लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥ १२७ ॥
वहतीति तीर्थं मृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्यच।

इन २४ में से २० तीर्थंकर १ श्री सम्मेद शिखर पर्वत (पार्श्वनाथ हिल जि० हजारीबाग़) से प्रथम श्री आदिनाथ कैलाश से, १२ वें श्री वासुपूज्य मंदारगिरि (ज़ि० भागलपूर) से, २२ वें श्री नेमिनाथ गिरनार (ज़ि० काठियावाड़) से तथा २४ वें श्री महावीर पावापुर (ज़ि० विहार) से मुक्त हुए हैं। इनका विशेष वर्णन जानने को नीचे का नकशा देखिये।

नोट—(१) ८४ लाख वर्ष का एक पूर्वांग, ८४ लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है।

४ हाथ का एक धनुष होता है।

प्रीति वितत हृदयैः परितो भृशमूर्ज्जयंत इति विश्रुतोऽचलः ॥ १२८ ॥

भावार्थ-पृथ्वी का ककुद, विद्याधरों की स्त्रियों से शोभायमान, मेघों से आच्छादित वह गिरनार पर्वत जिस पर इन्द्रने चिन्ह अंकित किये, भक्तिमान मुनियों के द्वारा तीर्थरूप प्रसिद्ध है।

(श्री नेमिस्तुति स्वयंभू स्तोत्र)

१ वीसंतु जिणवरिंदा अमरासुर वंदिदाधुद किलेसा।
सम्मेदे गिरि सिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥ २ ॥

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्ज जिणणाहो।
उज्जंते णेमि जिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥ १ ॥

(प्रा० निर्वाण काण्ड)

भावार्थ—वीस भगवान, इन्द्रों से वंदनीक, क्लेश रहित सम्मेद शिखर से मोक्ष गये, अष्टापद या कैलाश से ऋषभ चंपा या मन्दारगिरि से वासुपूज्य, उज्जयंत या गिरनार से नेमि, पावापुर से महावीर मोक्ष गये उनको प्रणाम हो।

(२) दस कोड़ा कोड़ी पल्योंका एक सागर होता है। ४७ अंक प्रमाण वर्षों का एक व्यवहार पल्य होता है, उससे कई गुणा उद्धारपल्य, उससे कई गुणा अद्धापल्य होता है। यहां सागर से मतलब अद्धासागर से है। हर एक कालका प्रमाण अद्धापल्य तथा सागर से गिना जाता है। जैसा कहा है—

"दशाद्धा सागरोपम कोटी कोट्यः एकाव सर्पिणी"
(सर्वार्थ सिद्धि अ० ३ सूत्र ३८)

(३) जो काल का अन्तर दिया है उसका भाव यह है कि एक तीर्थङ्कर की मोक्ष से दूसरे तीर्थङ्कर की मोक्ष तक इतना काल है। जैसे श्री नेमिनाथ स्वामी और पार्श्वनाथ स्वामी का अन्तर ८३७५० वर्ष है इस में श्री पार्श्वनाथ की १०० वर्ष की आयु शामिल है। इस हिसाब से श्री पार्श्वनाथ की मोक्ष के पीछे १७४ वर्ष ३॥ मास पीछे श्री महावीर स्वामी जन्मे हैं। ७२ वर्ष आयु जोड़ने से २४६ वर्ष ३॥ मास का अन्तर होजाता है।

यदि इस कुल अंतर काल को जोड़ा जावे तो ४३००० वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर हो जावेगा जितना कि चतुर्थ काल है। तीन वर्ष ८॥ मास तीसरे काल में शेष थे तब ऋषभ व इतने ही चौथे में शेष थे तब महावीर मोक्ष पधारे।

(७४) संक्षिप्त जीवन चरित्र श्री ऋषभ देव

यद्यपि हर एक अवसर्पिणी उत्सर्पिणी में २४ तीर्थङ्कर चौथे या तीसरे काल में क्रम से होते हैं तथापि इस अवसर्पिणी को

हुडावसर्पिणी कहते हैं, इस लिये इसमें बहुत सी बातें विशेष होती हैं। ऐसा काल असंख्यात् अवसर्पिणी पीछे आता है।

इसमें विशेष बात यह हुई कि श्री आदिनाथ या ऋषभदेव चौथे काल के शुरू होने में जब तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी थे तब ही मोक्ष चले गये थे।

श्री ऋषभ देव के पिता नाभिराजा थे, इनको १४ वां कुल कर या मनु कहते हैं। इनके पहले १३ कुलकर हुए—

१—प्रतिश्रुति २ सन्मति ३ क्षेमंकर ४ क्षेमंधर ५ सीमंकर ६ सीमंधर ७ विमलवाहन ८ चक्षुष्मान ९ यशस्वान् १० अभि चन्द्र ११ चन्द्राभ १२ मरुदेव १३ प्रसेनजित।

तीसरे काल में जब एकपल्य का ८ वां भाग शेष रहा तब से कल्पवृक्षों की कमी होने लगी तब ही इन कुलकरों ने जो एक दूसरे के बहुत काल पीछे होते रहे हैं ज्ञान देकर और लोगों की चिन्ताएं मेटी।

पहले तीन कालों में यहां भोगभूमि थी, जब युगल स्त्री पुरुष साथ जन्मते थे व कल्पवृक्षों से इच्छित वस्तु लेकर संतोष से व मन्द कषाय से कालक्षेप करते थे अन्तमें वे एक जोड़ा उत्पन्न करमर जाते थे।

ये कुलकर महापुरुष विशेष ज्ञानी होते हैं। इनको विदेह क्षेत्र में सदा चलने वाली कर्मभूमिकी रीतियों का ज्ञान होता है। नाभि राजाके समय में कल्पवृक्ष बिलकुल न रहे तब नाभि ने लोगों को बर्तन बनाने व वृक्षादि से धान्य व फलादि को काम में लाने आदि की रीति बताई।

इनकी महाराणी मरुदेवी बड़ी रूपवती व गुणवती थी।

श्री ऋषभ देवके गर्भ में आने के पहले ही छः मास इन्द्रने अयोध्या नगरी स्थापित करके शोभा करी। मिति आषाढ़ सुदी २ को भगवान मरुदेवी के गर्भ में आये। चैत्रकृष्ण ६ को प्रभु का ज़न्म हुवा। स्वभाव से ही विद्वान् श्री ऋषभदेव ने २० लाख पूर्व कुमारकाल में विद्या, कला आदि का उपभोग करते हुए विताये।

युवावय में नाभिराजा ने राजा कच्छ महाकच्छ को दो कन्या यशस्वती और सुनन्दा से प्रभु का विवाह किया। यशस्वती के सम्बन्ध भरत, वृषभसेन, अनन्तविजय, महासेन, अनन्तवीर्य आदि १०० पुत्र व एक कन्या ब्राह्मी उत्पन्न हुई। सुनन्दा के द्वारा पुत्र बाहुबलि व पुत्री सुन्दरी उत्पन्न हुई।

प्रभुने विद्या पढ़ाने का मार्ग चलाने के लिये सबसे पहले दोनों पुत्रियों को अक्षर व अङ्क विद्या, व्याकरण, छन्द अलंकार, काव्यादि विद्याएं सिखाईं व एक १०० अध्यायों में स्वायंभुव नामका व्याकरण बनाया फिर १०१ पुत्रों को अनेक विद्याएं सिखाईं। विशेष २ विद्याओं में विशेष पुत्रों को बहुत प्रवीण किया-जैसे भरत को नीतिमें, अनन्त विजय को चित्रकारी व शिल्प कलामें, वृषभसेन को संगीत और वादन में, बाहुबलि को वैद्यक, धनुष विद्या, काम शास्त्र में इत्यादि।

श्री वृषभदेव की इच्छानुसार इन्द्रने सुकौशल, अवंती, कुरुजांगल, अंग, वंग, पुंड्र, उंड अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आंध्र, कर्णाट, कोशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार, सौवीर, सूरसेन, अपरांत, विदेह,

सिंधु, गांधार, यवन, चेदि, पल्लव, कांबोज, आरद, वाल्हीक. तुरुष्क, शक, केकय आदि अनेक देशों में आर्यखण्ड का विभाग कर दिया।

भगवान ने प्रजाको आजीविका के साधन के लिये छः कर्म बताए—

असि (शस्त्र) मसि (लेखन) कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या।

प्रजा की योग्यता देखकर असिकर्म करने वालों को क्षत्रीय वर्ण, मषि, कृषि, वाणिज्य, पशुपालनादि कर्म करने वालों को वैश्य वर्ण व शेष कर्म वालों को शूद्र वर्ण में नियत कर दिया। †

हर एक वर्णवालों को अपने २ कामों में प्रवीण होने के लिये सीमा बांधदी। आषाढ़ कृष्ण १ को कृतयुग का प्रारंभ हुवा। फिर नाभि राजा ने अपने पुत्र को स्वयं राज्यपद पर आरूढ़ किया क्योंकि भगवान ने लोगों को इक्षुरस पीनेका उपदेश किया था इस लिये भगवान को इक्ष्वाकु कहते थे इसी लिये यह वंश इक्ष्वाकु वंश कहलाया।

भगवान ने अपने वंश के सिवाय चार वंश और स्थापित किये। राजा सोमप्रभ को कुरुवंश का स्वामी, हरि को हरिवंश

---

† जो वर्ण पूर्व की पीढ़ी दर पीढ़ियों में भी था किन्तु कारण न मिलने से प्रच्छन्न होगया था वही अतीन्द्रिय दर्शी ऋषभदेव ने व्यक्त कर दिया।

(सम्मति पं० माणिक चन्द जी)

का, अकंपन को नाथवंश का व काश्यप को उग्रवंश का नायक वनाया तथा पुत्रों को भी पृथक् २ राज्य करने को देश नियत कर दिए।

वहुत हो नीतिपूर्वक श्री ऋषभदेव ने ६३ लाख पूर्व तक राज्य किया।

एक दिन भगवान राज्य सभा में वैठे थे, एक स्वर्ग की नीलांजनादेवी सभा में मंगलीक नृत्य करती २ मरण कर गई। इस क्षणिक अवस्था को देख कर प्रभु को वैराग्य हो गया, आप वारह भावनाओं का चिन्तवन करने लगे। तव पांचवें स्वर्ग से लौकांतिक देवों ने आकर प्रभु की दृढ़ता करने वाली स्तुति की तव भगवान ने साम्राज्य पद बड़े पुत्र भरत को दिया। फिर इन्द्र भगवान को पालकी पर विराजमान कर के बड़े उत्सव से सिद्धार्थ वन में लाया, वहाँ एक शिला के नीचे सर्व वस्त्र आभूषण उतारकर, केशों का लोंचकर प्रभु ने नग्न अवस्था में मुनि का चारित्र धारण किया। यह चैत वदी ६ का दिन था।

प्रभु के साथ उन के स्नेह में पड़ कर ४००० राजाओं ने भी मुनि भेष धारण किया। भगवान ने ६ मास का योग ले लिया और ध्यान में मग्न हो गये। तव ही चौथा मनः पर्याय ज्ञान पैदा हो गया। वे ४००० राजा भी उसी तरह खड़े हो गये, दो तीन मास तक खड़े रह सके फिर घवड़ा गये और भूख प्यास से पीड़ित हो वन के फलादि व जल को पीने लगे।

इन लोगों ने भ्रष्ट हो कर अपने मन से दंडी त्रिदंडी

आदि मत स्थापन कर लिये। इनमें प्रभु का पोता मारीच भी था।

छः मासका योगपूर्ण कर प्रभू आहार केलिये नगर में गये। मुनिको आहार देने की विधि न जानने से छः मासतक प्रभुको अन्तराय रहा, भोजन न मिलसका। पीछे हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस कोजोपूर्व जन्म में उनकी स्त्री रहचुका था यकायक पूर्व जन्म की स्मृति होआई। उसने विधि सहित वैशाख सुदी ३ को इक्षुरस का आहार दिया इसलिये इसको अक्षय तृतीया कहते हैं

भगवान ने १००० वर्ष तक मौनी रहकर आत्म ध्यान करते हुए, यत्रतत्र भ्रमण कर तप किया। अन्तमें फागुन वदी ११ को पुरमिताल नगर के निकट शकट वनमें चार घातिया कर्मों को नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त किया, तव भगवान जीवन्मुक्त परमात्मा अरहंत हो गये। इन्द्र ने समवशरण की रचना की, उपदेश प्रगटा उससे अनेक जीवों ने जैनधर्म धारण किया।

मुनि समुदाय के गुरु ऐसे गणधर ८४ हुए, जिनमें मुख्य वृषभसेन, सोमप्रभ, श्रेयांस; थे। ब्राह्मी, सुन्दरीने जो ऋषभ देव की पुत्रियां थीं विवाह न किया तथा प्रभु के पास आकर आर्यिका (साध्वी) होगईं और सव आर्यिकाओं में मुख्य हुईं।

कुल शिष्य भगवान के ८४०८४ साधु, ३५०००० आर्यिकायें, ३ लाख श्रावक, ५ लाख श्राविकायें हुईं। अनेक देशों में विहार कर प्रभु ने १००० वर्ष और १४ दिन कम एक लाख

पूर्व तक उपदेश दिया, फिर कैलाश पर्वत पर १४ दिन तक आत्मध्यान में लीन हो माघवदी १४ को निर्वाण प्राप्त किया।*

श्री ऋषभदेव का वंश अर्थात् इक्ष्वाकु व सूर्यवंश बराबर श्री महावीर स्वामी के समय तक चलता रहा। इसी वंश में अनेक तीर्थंकर व श्री रामचन्द्र लक्ष्मण आदि भी हुए।

(७५) संक्षिप्त चरित्र श्री नेमिनाथ जी—

हरिवंश की एक शाखारूप यदुवंश में द्वारका के राजा समुद्रविजय थे। उनकी पटरानी शिवादेवी के गर्भ में कार्तिक शुक्ला ६ के दिन १६ स्वप्नों के देखने के साथ श्री नेमिनाथ जी का आत्मा जयन्त विमान से अहमिंद्र पद को छोड़कर आया। श्रावणसुदी ६ को प्रभु का जन्म हुवा।

समुद्रविजय के छोटे भाई वसुदेवजी के पुत्र नौवें नारायण श्री कृष्ण थे। यह बड़े प्रतापशाली थे। एक दफे मगधके राजा

---

* श्री ऋषभदेव के चारित्र का प्रमाण इस तरह है ÷

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीषुः, शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्वः पुनरद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥ २ ॥
स्वदोपमूलं स्वसमाधितेजसा, निनाय योनिर्दय भस्मसात्क्रियाम्।
जगादतत्वं जगते ऽर्थिने ऽञ्जसा, बभूव च ब्रह्म पदामृतेश्वरः ॥ ४ ॥
(स्वयंभू स्तोत्र)

भावार्थ—जिस प्रजापति ने पहले प्रजा को कृषि आदि का उपदेश दिया फिर तत्वज्ञानी वैरागी हुए। आत्मसमाधि के तेज से उन्हों ने अपने आत्मा के दोषों को जलाकर जगत को तत्व का उपदेश दिया और सिद्धपद के ईश्वर हो गए।

प्रतिनारायण जरासंध ने चढ़ाई की तब श्रीकृष्ण ने श्री नेमिनाथ जी को नगर की रक्षा का भार सौंपा। प्रभुने ॐ शब्द कहकर स्वीकार किया और मुस्करा दिये जिससे श्रीकृष्ण को विजय का निश्चय होगया। कृष्ण जरासन्ध को मारकर व तीन खण्ड देश के स्वामी हो लौट आये।

एक दफे वनक्रीड़ा को नेमिनाथ जी कृष्ण की सत्यभामा आदि पटरानियों के साथ गये, वहां स्नान कर नेमिनाथ जी ने सत्यभामा से धोती धोने को कहा, उसने इनकार कर दिया और कहा क्या आप कृष्ण के समान पराक्रमी हैं?

इसको सुनकर स्वामी ने अपना बल दिखाने को आयुधशाला में आकर नाग शय्यापर चढ़ धनुष चढ़ाया तथा शंख बजाया। शंख को सुनकर कृष्ण ने श्री नेमिनाथ जी का कार्य जान उनके विवाह के लिये उग्रवंशी राजा उग्रसेन की कन्या राजमती ठहराई। लग्न निश्चित हुई, बरात सज धज से चलने लगी। इधर कृष्ण ने यह विचार कर कि श्री नेमिनाथ के सामने मैं राज्य न कर सकूँगा, इसलिये इनको वैराग्य हो जावे ऐसा उपाय करना चाहिये, बहुत से पशुओं को ऐसे मार्ग में बन्द कराके सेवकों को समझा दिया कि यदि श्री नेमिनाथ जी पूछें तो कह देना कि श्री कृष्ण ने आप के विवाहोत्सव में अतिथियों के सत्कारार्थ पशु इकट्ठे किये हैं।

यह केवलमात्र कपट जाल था। पशु मारकर मांस खाने का भाव न था। जब श्री नेमिनाथ उधर पहुंचे और मालूम किया कि कृष्ण ने ऐसा किया है, सुनकर अत्यन्त दयावानहो, पहले तो दुःखित हुए फिर विचारने पर समझ गये। तुरन्त

संसार से वैरागी हो श्रावण सुदी ६ के दिन श्री गिरनार पर्वत के सहश्राम्र वन में प्रभु ने दीक्षा धारण करली। ५६ दिन तक ही तप करने से प्रभु को गिरनारपर्वत परही असौज सुदी १ के दिन केवलज्ञान होगया तब आप जीवन्मुक्त परमात्मा हो अरहन्त होगये और धर्मोपदेश देते हुए विहार करने लगे।

आपके शिष्य १८००० मुनि थे, उनमें मुख्य वरदत्त आदि ११ गणधर थे। राजमती भी बिना विवाहे नेमिनाथ जी के लौटने पर उदास होगई और अर्जिका के व्रत लेकर नेमिनाथ की शिष्या ४० हज़ार अर्जिकाओं में मुख्य हुई। श्रीकृष्ण बलदेव अपनी २ रानियों सहित उपदेश सुनने को आये तब कृष्ण की रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आठ पटरानियों ने अर्जिका के व्रतधार लिये। भगवान ने ६९९ वर्ष ९ मास ४ दिन विहार किया आपकी आयु १००० वर्ष की थी, फिर एकमास श्री गिरनार पर्वत पर योग निरोध आषाढ़ सुदी ७ को मोक्ष पधारे।

(७६) संक्षिप्त चरित्र श्री पार्श्वनाथ जी–

श्री पार्श्वनाथ भगवान का जीव अपने जन्म से तीसरे जन्म आनन्द राजा थे। वह मुनि हो घोरतप करके व तीर्थंकर नामकर्म बांधकर १३ वें स्वर्ग में इन्द्र हुए थे। वहां से आकर काशी देशके बनारस नगर के काश्यप गोत्रीय राजा विश्वसेन की रानी ब्रह्मादेवी के गर्भ में वैशाख बदी २ को पधारे। पौष बदी ११ को प्रभु जन्मे तब इन्द्र ने उत्सव किया। १६ वर्ष की उम्र में एक दिन वन विहार को गये, वहां महीपाल राजा

अजैन तपसी पंचाग्नि तप लकड़ी जलाकर कर रहा था। वह एक लकड़ी को चीरने के लिये कुल्हाड़ी उठाने लगा तब भगवान ने अवधिज्ञान से जानकर कि इसके भीतर सर्प सर्पिणी हैं उसे काटने के लिये मना किया, उसने वचन न माना, चोट पड़ते ही दोनों प्राणी घायल हो गये तब भगवान के साथ जो अन्य राजकुमार थे उनने उनको धर्मोपदेश सुनाया जिससे वे शान्तभाव से मरकर भवनवासी देवों में धरणेन्द्र व पद्मावती हुए।

यह तपसी पूर्व जन्मों में प्रभु के जीव का वैरी था इस कृत्य से लज्जित हुवा तथा क्रोध न छोड़ा और अन्त में मरकर ज्योतिषी देव हुवा।

३० वर्ष तक प्रभु कुमार रहे। एक दिन अयोध्याके राजा जयसेन ने कुछ भेंट प्रभु को भेजी तब दूत से भगवानने उस नगर का हाल मालूम किया। वह श्री ऋषभ देव आदि का वर्णन करने लगा। यह सुनकर प्रभुको अपना ध्यान हो आया कि मैं भी तीर्थंकर हूं अभी तक क्यों गृह के मोह में फँसा हूं। आप वैराग्यवान् हो गये और रीतिवत् पौषकृष्ण ११ को अश्ववन में तपधारा।

भगवान का पहला आहार................नगरके राजा धन्य ने किया जिसका दूसरा नाम ब्रह्मदत्त भी था। भगवान ने ४ मासतक तप करते हुए विहार किया, फिर प्रभु अहिछत्र (रामनगर जो बरेली के पास है) के वन में आये। वहां ध्यान में बैठे थे तब इनके वैरी ज्योतिषी देवने घोर उपसर्ग किया, जलादि की वृष्टि की। प्रभु ध्यान से न डिगे तब धर-

णेन्द्र पद्मावती आये और अपने फणों का छत्र कर दिया। इनके भय से वह देव भागगया। इसी कारण वह स्थान अहिछत्र प्रसिद्ध है।

उसी समय चैतवदी १४ को भगवान ने केवल ज्ञान प्राप्त किया व अनेक देशों में विहार कर धर्मोपदेश दिया जिनमें मुख्य देश ये हैं—

काशी, कौशल, पंचाल, मरहठा, मारू, मगध, अवंती, अङ्ग, वंग।

स्वयंभू आदि १० गणधरों को लेकर कुल १६००० मुनि, ३६००० अर्जिकाऐं, एक लाख श्रावक व ३ लाख श्राविकाऐं शिष्य हुए।

कुछ कम ७० वर्ष विहार करके श्री सम्मेद शिखर पर्वत से सावनसुदी ७ को मोक्ष पधारे।*

---

* श्रीपार्श्वनाथजी के उपसर्ग के सम्बन्ध में कथन है—

बृहत्फणा मण्डल मण्डपेनयं, स्फुरत्तडित्पिंगरुचो
पसर्गिणम्।
जुगूहनागो धरणो धराधरं, विराग संध्या तडिद-
म्बुदोयथा ॥१३२॥
(स्वयंभू स्तोत्र)

भावार्थ—धरणेन्द्र ने उपसर्ग में प्राप्त भगवान के ऊपर अपने फणों का मंडप इसी तरह कर लिया जिस तरह पर्वत पर बिजली सहित मेघ छा जाते हैं।

(७७) संक्षिप्त जीवन चरित्र श्री महावीर स्वामी

श्री महावीर स्वामी अपने पूर्व जन्मों में भरत के पुत्र मारीच थे जो श्री ऋषभ देव के साथ तप लेकर भृष्ट हो गये थे। यही भ्रमण करते त्रिपृष्ट नारायण हुए थे सो ही नंद राजा के भव में उत्तम भावनाओं को भाकर १६ वें स्वर्ग में इन्द्र हुए, वहां से आकर भरत के विदेह प्रांत के कुंडपुर या कुंडग्राम में नाथ वंशी काश्यप गोत्री राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला या प्रियकारिणी के गर्भ में आषाढ़ सुदी ६ को पधारे। चैत सुदी १३ को भगवान का जन्म हुआ, उस समय इन्द्र ने मेरु पर अभिषेक करके भगवान के वर्धमान और वीर ऐसे दो नाम रखे।

प्रभु ने आठवें वर्ष अपने योग्य श्रावक के १२ व्रतधार लिये क्यों कि प्रभु को जन्म से ही तीन ज्ञान थे, धर्म को अच्छी तरह समझते थे।

एक दिन संजय और विजय दो चारण मुनियों को कुछ सन्देह हुवा, उन्होंने बालक वीर के दूर से दर्शन प्राप्त करते ही अपने सन्देह मिटा दिये तब उन्होंने सन्मति नाम प्रसिद्ध किया।

एक दफे वन में वीर कुमार अन्य बालकों के साथ क्रीड़ा कररहे थे, इनके वीरत्व की परीक्षा लेने को एक देव महासर्प का रूप रख उस वृक्ष से लिपट गया जिस-पर सब बालक चढ़े थे। सब बालक कूद कर भाग गये परन्तु वीर ने सर्पपर निर्भय हो पग रख उससे क्रीड़ा की तब देव बहुत प्रसन्न हुवा और भगवान का महावीर नाम रखा।

भगवान को विना ही पढ़े सब कला व विद्याऐं प्रगट थीं। तीस वर्ष तक मंद राग से धर्म साधते व शुभ ध्यान करते हुए पूर्ण किये। जब आप तीस वर्ष के हुए तब पिताने विवाह के लिये कहा उस समय अपनी ४२ वर्ष की ही आयु शेष जान प्रभु स्वयं ही विचारते २ वैरागी होगये और खंका नामके वनमें जाकर, मगसर वदी १० को केशलोंचकर नग्न हो साधु हो गए। और बेले (दो उपवास) का नियम लिया।

पहला आहार कूल नगर के राजा कूल ने कराया। प्रभुने १२ वर्ष तप किया। इसी मध्यमें एक दफे भगवान उज्जयनी वन में ध्यान लगा रहेथे, वहां स्थाणु महादेव ने मंत्र विद्या से बहुत कष्ट दिये। अन्त में ध्यान में निश्चल देख वह लज्जित होगया और प्रभुका माहात्म्य देख महावीर नाम प्रसिद्ध किया। इस तरह वीर, अतिवीर, महावीर, सन्मति वर्धमान ऐसे पांच नाम प्रभु के प्रसिद्ध हुए।

प्रभु जृंभिका ग्राम के बाहर ऋजुकूला नदी के तट पर शाल वृक्ष के नीचे ध्यान कररहे थे तब आप केवल ज्ञानी हो कर अरहन्त पद में आ गए।

समवशरण रचे जाने पर ६६ दिन तक जब उपदेश नहीं हुवा तब इन्द्र ने विचार किया कि कोई वाणी को धारण करने योग्य नहीं है।

ज्ञान से विचार कर इन्द्र ने वृद्ध पुरुष का रूप रख राज-गृह में रहने वाले गौतम ब्राह्मण के पास जा इस श्लोक का अर्थ पूछा —

त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं नव पद सहितं जीव षट् काय लेश्या।
पंचान्ये चास्तिकाया व्रत समिति गति ज्ञान चारित्र भेदाः॥

इत्येतन्मोक्ष मूलं त्रिभुवन महितैः प्रोक्त महंद्भिरीशैः ।
प्रत्येति श्रद्धाति स्पृशतिच मतिमान्यः सवै शुद्ध दृष्टिः ॥

वह सांकेतिक शब्दों के कारण न समझ सका तब वह अपने दोनों भाई व ५०० शिष्यों को ले कर समवशरण में आया, देख कर मन कोमल हो गया, भगवान को नमन कर के प्रश्न किये तब वाणी प्रगटी।

सात तत्वों का भाषण सुन कर ये तीनों भाई शिष्यों सहित मुनि हो गये। इन्द्र ने गौतम का दूसरा नाम इन्द्रभूति रखा। प्रभु ने ६ दिन कम ३० वर्ष तक बहुत से देशों में विहार कर के धर्मोपदेश दिया। राजग्रही के विपुलाचलपर बहुत दफे वाणी प्रकटी। वहां का राजा श्रेणिक या बिम्बसार मुख्य शिष्य था।

चन्दना सती वैशाली के राजा चेटक की लड़की कुमार अवस्था में अर्जिका हो गई वह सब में मुख्य हुई जैसे सर्व साधुओं में मुख्य गौतम या इन्द्रभूति थे। भगवान के नीचे लिखे ११ गणधर थे-इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म मौर्य, मौंड, पुत्र, मैत्रेय, अकंपन, अधवेल तथा प्रभास। सर्व शिष्य १४००० मुनि, ३६००० अर्जिकायें, १ लाख श्रावक, ३ लाख श्राविकायें हुईं।

फिर भगवान पावा नगर के वन से कार्तिक कृष्णा १४ की रात्रि को अन्त समय, स्वाति नक्षत्र में मोक्ष पधारे। आपही के समय में बौद्धमत के स्थापक क्षत्री राजकुमार गौतम बुद्ध होगये हैं। जैन शास्त्रानुसार पहले यह जैन मुनि होगये थे। कारण या इन्होंने शंका उत्पन्न कर अपना भिन्नमत स्थापित

किया। इनके साधुओं से जैन साधुओं का सदाही वादानुवाद हुवा करता था। बौद्ध साधु वस्त्र रखते हैं, आत्माको नित्य नहीं मानते हैं, जैनियों की तरह खान पान की शुद्धिपर ध्यान नहीं रखते गृहस्थों को मांसाहार के निषेध की कड़ी आज्ञा नहीं दी जैसी जैन गृहस्थों को तीर्थंकरों ने दी है।*

(७८) भरतक्षेत्रके वर्तमान प्रसिद्ध १२ चक्रवर्ती

इस भरतक्षेत्र के छः विभाग हैं। दक्षिण मध्यभाग को आर्यखण्ड व शेष ५ को म्लेच्छखण्ड कहते हैं। कालका परिवर्तन आर्यखण्ड में ही होता है, म्लेच्छखण्डों में सदा दुखमा सुखमा कालको कभी उत्कृष्ट कभी जघन्य रीतिरहती है।

+ मोक्ष जाने का प्रमाण—
क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहर वनांतरे। बहूनां सरसां मध्ये महामणि शिला-तले ॥ ५०९ ॥ स्थित्वा दिन द्वयं वीत विहारो वृद्ध निर्जरः। कृष्ण कार्तिक पक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये ॥५१०॥ स्वातियोगे तृतीये शुक्लध्यान परायणः। कृत त्रियोग संरोध समुच्छिन्न क्रियं श्रितः ॥ ५११ ॥ हता घाति चतुष्कः सन्नशरीरो गुणात्मकः। गता मुनि सहस्रेण निर्वाणं सर्ववांछितं ॥ ५१२ ॥ (उत्तरपुराण ७६ पर्व) भावार्थ—विहार करते हुए पावापुरी में पहुंच मनोहर वनमें सरोवरों के मध्य, मणिशिला पर विराजमान हो दो दिनतक निर्जरा को बढ़ाते हुए कार्तिक वदी १४ को रात्रि के अन्तस्वाति नक्षत्र में तीसरे चौथे शुल्क ध्यान सब घातिया कर्मों का नाश कर १००० मुनि सहित निर्वाण पधारे।

नोट— यह १००० मुनि उन के साथ के, उसी क्षेत्र से मोक्ष हुए ऐसा नहीं किउसी समय में हुए-इसलिये यहां पर लिखा है।

जो इन छहों खण्डों के स्वामी होते हैं उनको चक्रवर्ती राजा कहते हैं। हर एक चक्रवर्ती में नीचे लिखी बातें होती हैं:—

(१) १४ रत्न—७ चेतन-जैसे सेनापति, गृहपति, शिल्पी, पुरोहित, पट्टरानी, हाथी, घोड़ा, । ७ अचेतन-सुदर्शनचक्र, छत्र, दण्ड, खड्ग, चूड़ामणि, चर्म, कांकिणी। इन हर एक के सेवक देव होते हैं।

(२) नौ निधियें या भण्डार काल महाकाल वैसर्प्य पांडुक, पद्म, माणव, पिंगल, शंख, सर्वरत्न जो क्रम से पुस्तक, असिमषिसाधन, भाजन, धान्य, वस्त्र, आयुध, आभूषण वादित्र, रत्नों के भंडार होते हैं। इनके रक्षक भी देव होते हैं।

(३) ३२००० हज़ार मुकुटबद्ध राजा व ३२००० देश व १८००० आर्यखण्ड के म्लेच्छ राजा (आधीन होते हैं)।

(४) ८४ लाख हाथी, ८४ लाख रथ, १८ करोड़ घोड़े, ८४ करोड़ प्यादे, ३ करोड़ गौशालाएं आदि सम्पत्ति होती है।

(५) ९६००० स्त्रियाँ जिनका भोग सम्राट् एक साथ अपने इतने शरीर बनाकर कर सकते हैं। उनमें महाबल होता है।

छः खण्डों के राजाओं को दिग्विजय के द्वारा अपने आधीन करते हैं व न्याय से प्रजा को सुखी करते हुए राज्य करते हैं। ऐसे १२ चक्रवर्ती २४ तीर्थंकरों के समय में नीचे प्रकार हुए हैं:—

(१) भरत—ऋषभदेव के पुत्र, ५०० धनुष शरीर की ऊँचाई थी। यह बड़े धर्मात्मा थे। एक दफे इनको एक साथ

तीन समाचार मिले-ऋषभदेव का केवल ज्ञानी होना, आयुध-शालामें सुदर्शनचक्र का प्रगट होना, अपने पुत्र का जन्म। आपने धर्म को श्रेष्ट समझ कर पहले ऋषभदेव के दर्शन किये फिर लौट कर दोनों लौकिक काम किये।

भरत को दिग्विजय में ६० हज़ार वर्ष लगे। मुख्य सेना-पति हस्तिनापुर का राजा जयकुमार था। छोटे भाई बाहुबलि ने इनको सम्राट् नहीं माना तब इनसे युद्ध ठहरा। मंत्रियों की सम्मति से कि हिंसा बिना ही तय होजाय तीन युद्ध ठहरे दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध, मल्लयुद्ध।

क्योंकि बाहुबलि का शरीर ५२५ धनुष था इससे ये तीनों ही में जीत गये। बड़े भाई का अपमान समझ राज्यलक्ष्मी की निन्दा कर वे तुरन्त वैरागी साधु होगये। एक वर्ष तक लगातार ध्यान में खड़े होगये जिससे शरीर पर बेलें चढ़ गईं। मनमें शल्य थी कि भरत को मेरे द्वारा कष्ट पहुंचा। वर्ष समाप्त होते ही जब भरत ने आकर नमस्कार किया वह शल्य निकल गई, तुर्त केवल ज्ञान होगया।

भरतने दान देने के लिये उन श्रावकोंमें से जो धर्मात्मा थे ब्राह्मणवर्ण स्थापित किया। एक दिन उसने घरके आंगन में घास बोकर सबको बुलाया, जो रोंदते हुए न आये उनही को धर्मात्मा समझ कर दूसरे मार्गसे बुलाकर उन्हें ब्राह्मणवर्ण ठहराया। इनका काम धर्मसेवन, पठनपाठन, नियत किया। जो अन्य गृहस्थ आदर से भेंट करें उसे संतोष से लेकर ही रहना अन्य आजीविका नहीं करना।

श्री ऋषभदेव से प्रश्न किये जाने पर उन्हों ने इस वर्ण

की अनावश्यकता बतलाई और कहा कि भविष्यमें इनसे धर्म में बिगाड़ होगा। भरत बड़े न्यायी थे। इनका बड़ा पुत्र अर्ककीर्ति था। काशी के राजा अकम्पन ने अपनी पुत्रीसुलोचना के सम्बन्ध के लिये स्वयंवर मण्डप रचा तब सुलोचना ने भरत के सेनापति जयकुमार के कण्ठ में वर माला डाली इस पर अर्ककीर्ति ने रुष्ट होकर युद्ध किया, युद्धमें हार गया। चक्रवर्तीने अपने पुत्र की अन्यायप्रवृत्ति पर बहुत खेद किया। भरत बड़े आत्मज्ञानी व राज्य करते हुए भी वैरागी थे।

एक दफे एक किसान ने पूछा कि आप इतना प्रबन्ध करते हुए भी कैसे तत्व ज्ञान का मनन करते हैं? आप ने उसे एक तेल का कटोरा दिया और कहा तू मेरे कटक में घूम आ परन्तु इस कटोरे में से एक बूँद भी गिरेगी तो तुझे दण्ड मिलेगा। वह कटोरे कोही देखता हुआ लौटआया। महाराज ने पूछा क्या देखा? उस ने कहा कुछ नहीं कह सकता क्योंकि मेरा ध्यान कटोरे पर था। यह सुन कर भरत ने कहा कि इसी तरह मेरा चित्त आत्मा पर रहता है। मैं सब कुछ करते हुए भी अलिप्त रहता हूं।

एक दिन दर्पण में देखते हुए अपना बाल सफेद देख कर आप साधु हो गए। पौने दो घड़ी के ही आत्म ध्यान से आप को केवल ज्ञान हो गया। आयु का अन्त होने पर मोक्ष पधारे आप ने कैलाश पर्वत पर भूत, भविष्य वर्तमान चौबीसी के ७२ मन्दिर बनवाए थे।

(२) सगर—यह अजितनाथ के समय में हुए। इक्ष्वाकुवंशी, पिता समुद्रविजय; माता सुवाला, ४५० धनुष

ऊँचा शरीर, आयु ७० लाख पूर्व। इन के पुत्र ६०००० थे। एकदफे इन्होंने कहाकि हमें कोईकठिन काम बताइए तबसगर ने कैलाश के चारो तरफ़ खाई खोद कर गङ्गा नदी बहाने की आज्ञा दी। ये गये, खाई खोदी तब सगर के पूर्व जन्म के मित्र मणिकेतु देव ने सर्व को अचेत कर के सगर को मिथ्या समाचार कहे कि आप के सब पुत्र मर गये। यह सुन कर सगर को वैराग्य हो गया और भगीरथ को राज्य दे आप साधु हो गए। पुत्र सचेत हुए पिता का साधु होना सुन कर ये सब भी साधु हो गये।

(३) तीसरे चक्रवर्ती मघवा---बहुत काल पीछे श्री धर्मनाथ पन्द्रहवें तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद उन के तीर्थ काल में हुए। इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुमित्र और सुभद्रा के पुत्र थे। अयोध्या राजधानी थी। ऊँचाई १७० हाथ व आयु ५ लाख वर्ष की थी। बहुत काल राज्य कर प्रिय मित्र पुत्र को राज्य देकर, साधु हो तप कर मोक्ष पधारे।

(४) सनत्कुमार—चौथे चक्रवर्ती धर्मनाथजी केसमय में अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय राजा अनन्तवीर्य और रानी सह-देवीके १ पुत्र थे। १६६ हाथकी ऊंचाई व आयु तीनलाख वर्ष की थी। आप बड़े न्यायी सम्राट् थे तथा बड़े रूपवान थे।

एक दिन आप अखाड़े में व्यायाम कर रहे थे तब आपके रूपकी प्रशंसा इन्द्र के मुखसे सुनकर एक देव देखने को आया और देखकर बहुत प्रसन्न हुवा, फिर राज सभा में प्रकट हो मिलने को गया। उस समय उतनी सुन्दरता न देख कर मस्तक हिलाया। सम्राट् ने कारण पूछा, जानकर चक्रीको

संसार की अनित्यता देखकर वैराग्य होगया। उसी समय पुत्र देव कुमार को राज्य दे शिवगुप्त मुनि से दीक्षाले तप कर मोक्ष पधारे।

तप के समय एक दफे कर्म के उदय से कुष्टादि भयङ्कर रोग होगये। एक देव परीक्षार्थ वैद्य के रूप में आया और कहा, आप औषधिलें। मुनिने उत्तर दिया कि आत्मा के जो जन्म मरणादि रोग हैं उन्हे आप दूर कर सकते हों तो दूर करें, मैं आपकी दी और वस्तु नहीं ले सकता। देव मुनि के चारित्र में दृढ़ता देखकर व स्तुति कर चला गया।

(५) पांचवेंचक्रवर्ती पदमें स्वंय १६ वें तीर्थङ्कर श्री शांतिनाथ महाराज थे। धर्मनाथ के तीर्थकाल के अन्त में पाव पल्य तक जैनधर्म लुप्तहोगया था तब आपने पुनः चलाया। आपने २५००० वर्ष तक राज्य किया। एक दिन दर्पण में अपने दो मुंह देख संसार को अनित्य विचार अपने नारायण पुत्र को राज्य दे साधु होगये। आठ वर्ष पीछे ही केवली हो अन्तमें मोक्ष पधारे।

(६) छठेचक्री स्वयं १७ वें तीर्थंकर श्री कुंथुनाथ जी थे। एक दिन बनमें क्रीड़ा करने गये थे। लौटते समय एक दिगम्बर साधु को देखकर वैरागी होगये। १६ वर्ष तप करके केवल ज्ञानी होकर मोक्ष पधारे।

(७) सातवें सम्राट् स्वयं १८ वें तीर्थंकर श्री अरनाथ जी थे। राज्यावस्थामें एक दिन शरदऋतु में मेघों का आकार नष्ट होना देख आप वैरागी होगये। १६ वर्ष तप कर अरहंत हुए, उपदेश दे अन्तमें मोक्ष पधारे।

(८) आठवें चक्री सुभौम श्री अरनाथ तीर्थङ्कर का मोक्ष के दो अरब बत्तीस वर्षबाद हुए। अयोध्या के इक्ष्वाकु वंशी राजा सहस्र बाहु और रानी चित्रमती के पुत्र थे। आपका जन्म एक बनमें हुवा था। ऊँचाई ११२ हाथ व आयु ६० हजार वर्षकी थी। इनके पिता सहस्र बाहुके समय मेंइनके बड़े भाई कृत वीर्य ने एकदफे किसी कारण से राजा जमदग्नि को मार डाला तब जमदग्नि के पुत्र परशुराम और श्वेतराम ने यह बात जानकर बहुत क्रोध किया और सहस्र बाहु तथा कृतवीर्य को मार डाला। तब सहस्रबाहु के बड़े भाई सांडिल्य ने गर्भवती रानीचित्रमती को बनमें रक्खा जहां सुभौम पैदा हुए थे।

यह १६ वें वर्षमें चक्रवर्ती हुए। एक दिन परशुराम ने निमित्त ज्ञानी से मालूम किया मेरा मरण जिस से होगा वह पैदा हो गया है। परीक्षा बताई कि जिस के आगे मारे हुए राजाओं के दांत भोजन के लिये रखे जावें और वे सुगंधित चावल होजावें वही शत्रु है, इस लिये अनेक राजा ओं को सुभौम के साथ बुलाया। सुभौम के सामने दांत चावल होगये। यही शत्रु है ऐसा जान परशुराम ने सुभौम को पकड़ा परन्तु तबही इसको चक्ररत्न की प्राप्ति हुई। उसचक्र से युद्धकर सुभौम ने परशुराम को मारा।

दिग्विजय कर बहुत काल राज्य किया। यह बहुत ही विषय लंपटी था। एक दफे इस को एक शत्रु देव ने व्यापारी के रूप में बड़े स्वादिष्ट अपूर्व फल खाने को दिये। जब वे फल न रहे तब चक्री ने और मांगे। व्यापारी ने कहा कि एक द्वीप में वे मिल सकेंगे आप जहाज पर मेरेसाथ चलिये। वह

लोलुपी चल दिया। मार्ग में उस देव ने जहाज डुबो दिया और चक्रवर्ती खोटे ध्यान से मरकर सातवें नर्क गया।

(९) नौवें चक्री १९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के समय में काशीनगरी के स्वामी इक्ष्वाकु वंशीय पद्मनाथ और ऐराराणी के सुपुत्र पद्म थे। बादलों को नष्ट होते देखकर वैरागी हो गये साधु होकर मोक्ष पधारे। इनकी आयु ३० हजार वर्ष की थी, शरीर २२ धनुष ऊँचा सुवर्ण के समान था।

(१०) दसवें चक्री श्री हरिषेण भगवान मुनि सुव्रतनाथ के काल में भोगपुर के राजा इक्ष्वाकु वंशीय पद्म और ऐरादेवी के सुपुत्र थे। ऊंचाई ८० हाथ व आयु १०००० वर्ष की थी। आकाश में चन्द्र ग्रहण देख आप साधु हो गये तथा अन्त में सर्वार्थ सिद्धि गये, मोक्ष न जा सके।

(११) ग्यारहवें चक्रवर्ती जयसेन श्री नमिनाथ तीर्थंकरके समय में वत्सदेश के कौशाम्बी नगर के इक्ष्वाकु वंशी राजा विजय रानी प्रभाकरी के पुत्र थे। ६० हाथ ऊंचा शरीर था व ३००० वर्ष की आयु थी। एक दिन आकाश में उल्कापात देखकर वैराग्य वान हो साधु हो गये। तप करते हुए अन्त में श्री सम्मेद शिखर पर पहुंचे वहां चारण नाम की चोटी पर समाधिमरण कर सर्वार्थ सिद्धि में जा अहमिन्द्र हुए। एक जन्म मनुष्य का ले मोक्ष पधारेंगे।

(१२) श्री नेमिनाथ के समय में १२ वां चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त हुवा यह ब्रह्मा राजा व रानी चूल देवी का पुत्र था। शरीर २८ हाथ ऊंचा व ७०० वर्ष की आयु थी। यह विषय भोगों में फंसा रहा, अन्त में मरकर सातवें नर्क गया।

(७९) भरत क्षेत्र में ९ प्रतिनारायण, ९ नारायण, ९ बलभद्रों का परिचय

विदित हो कि हर एक अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी काल में ६३ महा पुरूष होते रहते है -अर्थात् २४ तीर्थंकर जो सब मोक्ष जाते हैं। १२ चक्री जिन में कोई मोक्ष कोई स्वर्ग कोई नर्क जाते हैं और ९प्रति नारायण ९ नारायण व बलभद्र जिन में से ९ प्रति नारायण विषय भोग में तन्मय होने के कारण नर्क जाते हैं परन्तु बलभद्र साधु होकर कोई मोक्ष तथा कोई स्वर्ग जाते हैं।

नारायण और बलभद्र एक ही पिता के पुत्र होते हैं। प्रतिनारायण नारायण से पहिले ही जन्म से भरत के दक्षिण तीन खण्डो को जीतकर अपने वश करते हैं और चक्ररत्न को पाकर अर्धचक्री हो राज्य करते हैं। कारणवश नारायण से इनकी शत्रुता हो जाती है, दोनों घोर युद्ध करते हैं, अन्त में नारायण उसी के चक्ररत्न को पाकर उसी से प्रतिनारायण का मस्तक छेदन कर स्वयं अर्धचक्री होजाते हैं और बड़े भाई बलभद्र के साथ राज्य करने लगते हैं)

नारायण के पास ७ रत्न होते हैं:—

धनुष, खड्ग, चक्र, शंख, दण्ड, गदा, शक्ति व बलभद्र के पास चार होते हैं, गदा, माल, हल, मूसल। नारायण का गृहावस्था में मरण होजाता है, बलभद्र उनके प्रेम वश छः मास तक उनकी लाशको दुर्गंध न आने के कारण नहीं जलाते हैं। फिर जलाकर उसी समय या कुछ काल पीछे बलभद्र साधु हो तप करते हैं।

ये सब ही ६३ महापुरुष मोक्ष के अधिकारी हैं। जो इस जन्म से मोक्ष न जावेंगे वे आगामी किसी जन्मसे बहुत थोड़े काल में ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। नारायणादि का परिचय इस भांति है:—

(१) श्रेयांसनाथ तीर्थंकर के समय में भरतके विजयार्ध पर्वत पर उत्तर श्रेणी में अलकापुरी के राजा मयूरग्रीव का पुत्र अश्वग्रीव नामका पहिला प्रतिनारायण हुआ। इसीसमय में पोदनपुर के राजा प्रजापति मृगावती रानीसे पहला नारायण तृपृष्ठ (यह भरतपुत मारीच अर्थात् महावीर स्वामी का जीव है) और दूसरी रानी जयावती से विजय नामके बलभद्र हुए। दोनों की आयु ८४ लाख वर्ष की थी व ८० धनुप ऊँचा शरीर था।

अश्यग्रीव औ तृपृष्ठ में युद्धका कारण यह हुवा कि अश्वग्रीव के पास किसी राजा द्वारा भेजी हुई भेट को तृपृष्ठ ने बलपूर्वक ले लिया था। युद्ध में प्रति नारायण मारा गया नारायण पृथ्वी का स्वामी हुवा राज्य करके मोह से मरा, पीछे बलभद्र ने सुवर्णकुंभ मुनिसे दीक्षा ले मोक्ष प्राप्त किया।

(२) श्री वासुपूज्य के समयमें भोगवर्धनपुर के राजा श्री धरके पुत्र दूसरे प्रतिनारायण तारक हुए। उसी समय द्वारिकापुरी के राजा ब्रह्म की सुभद्रा रानी से दूसरे बलभद्र अचल और ऊषा रानी से दूसरे नारायण द्विपृष्ठ जन्मे। नारा-

यण था शरीर ७० धनुष ऊँचा था व आयु ७२ लाख वर्ष की थी।

तारक ने दूत भेजकर नारायण को आज्ञानुवर्ती रहने को कहा जिसे स्वीकार न करने के कारण परस्पर युद्ध हुवा। तारकचक्र से मरा, सातवेंनर्क गया। द्विपृष्ठ राजा हुवा, राज्यकर मरकर नर्क गया, फिर अचलने साधु हो मोक्ष प्राप्त किया।

(३) श्री विमल नाथ तीर्थंकरके जीवन काल में ही रत्नपुर का राजा मधु नाम का तीसरा प्रति नारायण हुवा तब ही द्वारिका के राजा रुद्र के सुभद्रादेवी रानी से तीसरे वलभद्र सुधर्म व पृथ्वीदेवी से तीसरे नारायण स्वयंभू हुए।

किसी कारण द्वारा मधु को भेजी हुई भेंट स्वयंभू ने छीन ली, इस से परस्पर युद्ध हुवा। मधु मरकर नर्क गया, स्वयंभू ने राज्यकर मोह से मर ७ वां नर्क पाया, सुधर्म ने विमलनाथ भगवान से दीक्षा ले मोक्ष पद पाया।

(४) श्री अनन्तनाथ तीर्थंकर के समय काशी देश के बनारस का राज मधु सूदन नाम का चौथा प्रतिनारायण हुवा, तब ही द्वारिका के राजा सोमप्रभ की रानी जयावती से सुप्रभ नाम के चौथे वलभद्र तथा रानी सीता से पुरुषोत्तम नाम के चौथे नारायण हुए। शरीर की ऊंचाई ५० धनुष व आयु ३० लाख वर्ष की थी।

मधुसूधन ने पुरुषोत्तम से राज्य कर मांगा न देनेपर युद्ध छिड़ गया। मधुसूदन मारे गये व सातवें नर्क गये। पुरुषोत्तम ने

मग्न हो राज्य किया, अन्त में सातवें नर्क गया। सुप्रभ ने दीक्षा ले तपकर मोक्ष प्राप्त किया।

(५) भगवान धर्मनाथ के समय में हस्तिनापुर का मधुकैटभ नामका पांचवां प्रति नारायण हुवा। तवही खगपुर के राजा इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन के विजया देवी से ५ वें बलभद्र सुदर्शन व अंबिका देवी से ५ वें नारायण पुरुषसिंह हुए। दोनों की आयु १० लाख वर्ष की थी व शरीर की उंचाई ४५ धनुष की थी।

मधुकैटभने नारायण से कर मांगा, न देनेपर परस्पर युद्ध हुवा। कैटभ मरकर नर्क गया, पुरुषसिंह भी राज्यकर सातवें नर्क गया। बलदेव सुदर्शनने धर्मनाथ तीर्थंकर के पास दीक्षा ली, तप कर मोक्ष पधारे।

(६) श्री अरनाथ के तीर्थकाल में सुभौम चक्रवर्ती के पीछे निसुंभ नामका छठवां प्रतिनारायण हुवा। तवही चक्र-पुर के महाराज वरसेन के वैजयन्ती रानी से छठवें बलभद्र नंदिषेण और लक्ष्मीवती रानी से छठवे नारायण पुंडरीक हुए। इन्द्रपुर के राजा उपेन्द्रसेन ने अपनी कन्या पद्मावती का विवाह नारायण पुंडरीक से किया इसपर निशुंभ अप्रसन्न हो युद्ध को आया। युद्धमें निशुंभ मरा, नर्क गया। पुंडरीक ने राज्य में मोहित हो तप न धारा छठे नर्क गया। बलभद्र नंदि-षेण ने वैराग्यवान हो तपकर मोक्षप्राप्त किया।

(७) श्री मल्लिनाथ के तीर्थकाल में विजयार्ध पर्वत पर बलिन्द्र नामके ७ वें प्रतिनारायण हुए। उसी समय बनारस

के इक्ष्वाकुवंशी राजा अग्निशिख के अपराजिता रानी से ७ वें बलभद्र नन्दमित्र तथा केशवती रानी से ७ वें नारायण दत्त हुए। शरीर २२ धनुष ऊँचा व आयु ३२००० वर्ष की थी।

दत्तके पास क्षीरोद नामका बड़ा सुन्दर हाथी था। उसे बलिन्द्ने मांगा दत्तने बदले में कन्या विवाहने को कहा इस शर्त के न माने जाने पर परस्पर युद्ध हुआ। बलिन्द मरकर नर्क गया, दत्तने राज्यकर भोगों में लीन हो सातवां नर्क पाया। नन्दमित्र ने तपकर मोक्ष प्राप्त किया।

(८) भगवान मुनिसुव्रत के तीर्थकाल में लंका के राजा रत्नश्रवाके केकशी रानी से ८ वें प्रतिनारायण रावण हुए। तब ही अयोध्या के राजा दशरथ के कौशल्या रानी से ८ वें बलभद्र नारायण रामचन्द्र तथा सुमित्रा रानी से ८ वें नारायण लक्ष्मण हुए। रामचन्द्र की रानी सीता पर मोहित हो रावण ने उसे हरण किया। इस पर रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई की। युद्ध में लक्ष्मण ने रावण को मारा वह नर्क गया। लक्ष्मण ने सीता को छुड़ाया। बहुत काल तक दोनों भाईयों ने राज्य किया। लक्ष्मण भोग लिप्त थे।

एक दिन किसी ने रामचन्द्र की मृत्यु की झूठी ख़बर लक्ष्मण को दी जिसको सुनते ही शोकाकुल हो उनके प्राण निकल गये।

रामचन्द्र ने कुछ काल पीछे दीक्षाले तपकर मुक्ति पाई।

(९) श्रीनेमिनाथ स्वामी के समय में मगध का राजा जरासिंध नौवाँ प्रतिनारायण हुवा। उसी समय मथुरा के

यदुवंशी महाराजा वसुदेव के रानी देवकी से श्रीकृष्ण के नाम नौवें नारायण हुए।

राजा कंस देवकी के पुत्रों का शत्रु था, इससे उसके भय से वसुदेव ने पैदा होते ही कृष्ण को जमना पार व्रज में एक नन्द गोपाल को पालने के लिये सोंप दिया।

महाराज वसुदेव की दूसरी रानी रोहिणीसे नौवें बलभद्र पद्म नामके हुए। किसी कारण से कंस ने कृष्ण का जन्म जान लिया, तब कृष्ण के मारने के लिये अनेक उपाय किये पर वे निष्फल हुए।

जब कृष्ण सामर्थ्यवान हुए तब पहले ही उन्हों ने कंसको युद्ध में मारा। कंसकी रानी जीवयशा ने अपने पिता प्रतिनारायण जरासन्ध को पतिके मरण का हाल सुनाया। जरासन्ध ने अपने पुत्र कालयवन को युद्ध के लिये भेजा। शत्रु को बलवान जानकर यादवों ने सूरीपुर हस्तिनापुर व मथुरा को छोड़कर समुद्र के पास द्वारकानगर में वास किया। वहीं श्री नेमिनाथजी का जन्म हुवा।

कुछ काल पीछे जरासन्ध कृष्ण के मारने के लिये सेना लेकर चला। इधर कृष्ण ने भी सेना ले पांचों पाण्डवों के साथ कुरुक्षेत्र में आकर जरासन्ध की सेना के साथ युद्ध किया। अन्तमें जरासन्ध ने सुदर्शन चक्र चलाया; वह कृष्णके हाथ में आगया, उसी से ही कृष्ण ने जरासन्ध को मारा। वह मरकर नर्क गया, फिर कृष्ण ने तीनखण्ड राज्य पाकर द्वारका लौटकर, नारायण पद में बल्देव सहित राज्य किया। इनका शरीर १० धनुष ऊँचा था व एक हज़ार वर्ष की आयु

थी, नील वर्ण था। कृष्ण की रुक्मिणी आदि आठ पटरानियां थीं। कुल स्त्रियां १६००० थीं।

नेमिनाथजी को अधिक प्रतापी जान ऐसी चेष्टा की जिससे उनके हृदय पर कुछ पशुओं के दुःख की चोट लगी जिससे वे वैराग्यवान हो, मुनि हो तप करने लगे। इधर बलदेव नारायण राज्य करने लगे।

कृष्णके मोक्षगामी जम्बू प्रद्युम्न आदि पुत्र हुए। कृष्ण ने पाण्डवों को सहायता देकर कौरवों का विध्वंश कराया, पाण्डवों को राज्य दिलाया। अन्त में एक दफे कोई ऋद्धि-धारी तपस्वी द्वीपायन द्वारका के बाहर तप कर रहे थे। उनको यादवों के बालकों ने उपसर्ग किया। मुनि को क्रोध आगया जिससे द्वारका भस्म होगई। बड़ी कठिनता से कृष्ण, बल्देव भागकर बचे।

कौशाम्बी के एक वन में पहुंचे। वहां कृष्ण का भाई जरत्कुमार जो बहुत वर्ष पहले बाहर निकल गया था और कुसंगति में पड़ शिकार खेलने लगा था। कृष्णजी बन में प्यास से पीड़ित हो सोगये थे, बल्देवजी पानी लेने गये थे। जरत्कुमार ने कृष्ण को मृग जानकर बाण मारा जिससे कृष्ण का देहान्त होगया।

बल्देवजी ने भी कुछ काल पीछे मुनिव्रत लिये और वे पाँचवें स्वर्ग पधारे। पांचों पाण्डवों ने दीक्षाली और सेत्रुंजय पर्वत पर ध्यान कर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन ने मोक्ष पाई तथा नकुल सहदेव सर्वार्थसिद्धि पधारे।

(८०) जैनियों के तिहवार

जिन २ मितियों में जिस २ तीर्थंकर ने मोक्ष पाई है वे सब ही उत्सव के योग्य हैं। वर्तमान में नीचे लिखे दिवस अति प्रसिद्ध हैं:-

(१) कार्तिक, फागुन, आषाढ़ के अन्त के आठ दिन जिनको आष्टान्हिका व नन्दीश्वर पर्व कहते हैं।

(२) कार्तिक वदी १४-अर्थात् निर्वाण चौदस, जिसकी पिछली रात्रि को श्री महावीर स्वामी ने मोक्ष प्राप्त किया।

(३) कार्तिकवदी १५-गौतम स्वामी ने केवल ज्ञान पाया।

चैत्रसुदी १३ श्री महावीर भगवान का जन्म।

(४) वैशाख सुदी ३, अक्षय तृतीया-ऋषभदेव को श्रेयांस द्वारा प्रथम मुनिदान इस कल्प में हुवा।

(५) जेठ सुदी ५-शास्त्र पूजन का पवित्र दिन।

(६) श्रावण सुदी १५—रक्षाबंधन पर्व। श्री विष्णुकुमार मुनि द्वारा ७०० मुनि संघ को अग्नि से बचाया गया।

(७) भादों सुदी १ से भादों सुदी १५ तक—षोडश कारण व्रत जिस का प्रारम्भ श्रावणसुदी १५ से होकर समाप्ति कुआर वदी १ को होती है।

(८) दशलक्षण पर्व—भादों सुदी ५ से भादों सुदी १४ तक।

(६) भादों सुदी १०—सुगंध या धूप दशमी।

(१०) रत्नत्रय व्रत— भादों सुदी १३, १४, १५, । आरंभ भादों सुदी १२ समाप्ति कुवार वदी १।

(११) अनंत चौदश—भादों सुदी चौदश, दशलाक्षणी का अन्त दिवस।

(८१) जैनियों में भारतवर्ष के प्रसिद्ध कुछ तीर्थ व अतिशय क्षेत्र

(१] बंगाल, बिहार, उड़ीसा प्रान्त—

(१) श्री सम्मेद शिखर पर्वत—या पार्श्वनाथ हिल

यहां से सदा ही भरत क्षेत्र के २४ तीर्थंकर मोक्ष जाया करते हैं। इस कल्पकाल में किसी विशेषता से श्री ऋषभ, वासुपूज्य, नेमिनाथ और श्री महावीर के सिवाय २० तीर्थंकर मोक्ष प्राप्त हुए। यह सर्व पर्वत परमपवित्र माना जाता है। जैन लोग नंगे पैर यात्रा करते हैं, भोजनादि नीचे उतर कर करते हैं। ई० आई० रेलवे के ईसरी स्टेशन से १२ मील हजारीबाग जिले में है।

(२) मन्दारगिरि—भागलपुर से करीब ३० मील एक रमणीक पर्वत है। यहां श्री वासुपूज्य भगवान ने मोक्ष प्राप्त की है।

(३) चंपापुर—भागलपुर से ४ मील, नाथनगर स्टेशन से १ मील। यहां श्री वासुपूज्य भगवान के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान चार कल्याणक हुए हैं।

(४) पावापुर—विहार स्टेशन से ७ मील । यहां श्री महावीर भगवान ने मोक्ष प्राप्त की है ।

(५) कुंडलपुर—पावापुर से १० मील के करीब । यहां श्री महावीर भगवान का जन्म प्रसिद्ध है ।*

(६) राज्यगृह—और विपुलाचल आदि पांच पर्वत विहार लाइन में राजगृह स्टेशन है । यहां श्रेणिक आदि अनेक जैन राजा हुए हैं । महावीर स्वामी का समवशरण आया है ।

यहां से श्री गौतम गणधर, श्री जीवंधर कुमार आदि अनेक महात्माओंने मोक्ष प्राप्त की है । श्री मुनि सुव्रत तीर्थंकर का जन्मस्थान है ।

(७) गुणावा—राजगृह से ५ मील के करीब । यहां श्री गौतम स्वामीने तप आदि किया है । नवादा स्टेशन है ।

(८) श्री खण्डगिरि उदयगिरि—उड़ीसा के भुवनेश्वर स्टेशन से ५ मील । यहां बहुत प्राचीन गुफाएं हैं, अनेक साधुओं ने ध्यान किया है । सन् ई० से १५० वर्ष पूर्व का जैन राजा खारवेल का शिलालेख हाथी गुफामें है । तीर्थंकरों की मूर्तियां चिन्ह सहित कोरी हुई हैं ।

युक्तप्रान्त—

(१) बनारस—यहां श्री सुपार्श्वनाथ ७ वे तीर्थंकर का

---

* नोट—परन्तु उनका जन्मस्थान मुजफ्फरपुर जिले में बसाढ़ ग्राम के पास होना चाहिये । वही स्थान बनना चाहिये ।

जन्मस्थान भदैनी घाट पर है। यहीं श्री स्याद्वाद महाविद्यालय है। भेलूपुरा में श्री पार्श्वनाथ २३ वें तीर्थंकर का जन्म स्थान है।

(२) चन्द्रपुरी—बनारस से १० मील के करीब गंगा तट पर श्री चन्द्र प्रभु ८ वें तीर्थंकर का जन्म स्थान है।

(३) सिंहपुरी—बनारस से ६ मील श्री श्रेयांसनाथ ११ वें तीर्थंकर का जन्मस्थान है।

(४) खखुन्दी या किष्किंधापुर—नुनखार स्टेशन से २ मील, गोरखपुर से ३० मील। यहां श्री पुष्पदन्त भगवान ६ वें तीर्थंकर ने जन्म प्राप्त किया था।

(५) कुहाऊँ—सलेमपुर स्टेशन से ५ मील गोरखपुर से ४६ मील यहां एक जैन मान स्तम्भ २४॥ फुट ऊँचा है। श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति अङ्कित है। इस पर गुप्त सं० १४६ व ४५० सन् ई० का शिलालेख है।

(६) कोसाम या कौशाम्बी—जिला प्रयाग मसानपुर से १८ मील। यहां श्री पद्म प्रभु भगवान ६ठे तीर्थंकर का जन्म हुआ है। बहुत प्राचीन स्थान है। यहां सन् ई० से दो शताब्दि पहिले के जैन शिलालेख हैं।

(७) अयोध्या—यहां श्री आदि अजित, अभिनन्दन सुमति व अनन्तनाथ ऐसे ५ तीर्थंकरों का जन्म स्थान है। यहां सदा ही भरत के तीर्थंकर जन्मा करते हैं। इस कल्प में केवल ५ ही जन्मे।

(८) श्रावस्ती या सहेठमहके, ज़ि० गोंडा—बलरामपुर

से १२ मील। यहां श्री सम्भवनाथ तीसरे तीर्थंकर का जन्म हुआ है।

(९) रत्नपुरी फैजाबाद से कुछ दूर सुहावला स्टेशन से १॥ कोस। यहां १५ वें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ का जन्म हुआ है।

(१०) कम्पिला—जिला फर्रूखाबाद, कायमगंज से ६ मील। यहां श्री विमलनाथ १३ वें तीर्थंकर ने जन्म प्राप्त किय था।

(११) अहिछत्र—बरेली जिला आंवला स्टेशन से ६ मील। यहां श्री पार्श्वनाथ भगवान को कमठ ने उपसर्ग किया था तब धरणेन्द्र पद्मावती ने रक्षा की थी और उन को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था ऐसा प्रसिद्ध है।

(१२ मथुरा—चौरासी। यहां अन्तिम केवली जम्बूस्वामी ने मुक्ति प्राप्त की है।

(१३) हस्तिनापुर—मेरठ शहर से २४ मील। यहां श्री शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ १६, १७, १८ वें तीर्थंकर के जन्म आदि चार कल्याणक हुए हैं।

(१४) देवगढ़—ज़िला झांसी जाखलौन स्टेशन से ८ मील। यहां पहाड़ पर बहुत से जैन मन्दिर व शिलालेख हैं।

(३) राजपूताना, मालवा, मध्यभारत—

(१) श्रमणगिरि—सोनागिरि (दतिया स्टेट) से २ मील। यहां नंग, अनंग कुमार व पांचकरोड़ मुनि मुक्त हुए हैं।

(२) सिद्धवरकूट—इन्दौर स्टेट, मोरटक्का स्टेशन से ७ मील, नर्मदा पार। यहां दो चक्रवर्ती १० कामदेव व ३॥ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

(३) बड़वानी—चूलगिरि बावनगजा मऊ छावनी से ८० मील। यहां श्री मेघनाथ, कुम्भकरण ने मुक्ति पाई है व चौरासी फुट ऊँची श्री ऋषभदेव की मूर्ति है।

(४) महावीर जी—महावीर रोड स्टेशन (जयपुर स्टेट) से ३ मील। यहां श्री महावीर जी की अतिशय रूप मूर्ति है।

(५) आबू जी—आबू रोड से १८ मील पर्वत है। बड़े अमूल्य जैन मंदिर हैं।

(६) केशरिया जी—उदयपुर से चालीस मील। यहां अतिशयरूप की ऋषभदेव की मूर्ती है।

(४) मध्य प्रान्त बरार —

(१) कुंडलपुर—दमोह से १९ मील। यहां पर्वत पर श्री महावीर स्वामी की अतिशय रूप मूर्ती है व बहुत से मंदिर हैं।

(२) रेसंदीगिरि या नैनागिरि सागरसे ३० मील, दलपतपुर से ८ मील। यहां सेवरदत्तादि मुनि मोक्ष गये हैं। पर्वत पर २५ मंदिर है।

(३) द्रोणगिरि—ग्राम (सागर) से ६६ मील। यहांसे गुरुदत्तादि मुनि मोक्ष पधारे हैं। २५ जैन मन्दिर हैं।

(४) मुक्तागिरि—एलिचपुर स्टेशन से १२ मील। यहाँ ३॥ करोड़ मुनि मुक्ति गये हैं। पर्वत पर बहुत मन्दिर हैं।

(५) रामटेक—नागपुरसे २४ मील रामटेक स्टेशनसे ३ मील। यहां शान्तिनाथ जी की अतिशयरूप मूर्ति है।

(६) भातकुली—अमरावती से १० मील। यहां भी मनोज्ञ ऋषभदेव की मूर्ति चौथे काल की है।

(७) अन्तरीक्षपार्श्वनाथ—अकोला से १६ कोस। यहां श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति सिरपुर ग्राममें अतिशय रूप है।

(८) मकसीपार्श्वनाथ—जिला उज्जैन मकसीस्टेशन से थोड़ी दूर। यहां चौथे कालकी पार्श्वनाथ जी की मूर्ति है।

(५) बम्बई प्रान्त—

(१) तारङ्गा—तारंगा हिल स्टेशन से ३ मील पर्वत पर से वरदत्त, सागरदत्त, तथा ३॥ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

(२) सेत्रुंजय—पालीताना स्टेशन पर्वत से श्री युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन तीन पांडव व ८ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

(३) गिरनार—जूनागढ़ से ४ मील। श्री नेमिनाथ भगवान व प्रद्युम्न आदि ७२ करोड़ मुनि मुक्ति पहुंचे हैं।

(४) पावागढ़—स्टेशन से २ मील। यहां रामचन्द्र के सुत लव, कुश व ५ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

(५) गजपंथा—नासिक से ६ मील। यहां लयभद्रादि ८ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

(६) मांगीतुंगा—नासिक जिला मनमाड़ स्टेशन से ६० मील। यहां से श्री रामचन्द्र, इन्द्रमान, सुग्रीव आदि ६६ करोड़ मुनि मुक्ति गये हैं।

(७) कुंथलगिरि—वारसी टाउन स्टेशन से २२ मील। यहां श्री देशभूषण मुनि मुक्ति पधारे हैं।

(८) सजोत—गुजरात में अंकलेश्वर से ६ मील। यहां श्री शीतलनाथ की प्राचीन दिव्य मूर्ति दर्शनीय है।

(६) दक्षिण मदरास आदि—

(१) श्रवणबेलगोल—जैनबद्री मैसूरस्टेट मंदिगिरि स्टेशन से १२ मील। यहां श्री बाहुबली या गोम्मट स्वामी की ५६ फुट ऊँची दर्शनीय मूर्ति है।

(२) मूलबद्री—मंगलोर स्टेशन से २२ मील। यहां रत्नबिम्ब व श्री धवलादि ग्रंथ दर्शनीय हैं।

(३) कारकल—मूलबद्री से १२ मील। यहां भी ३२ फुट ऊँची श्री बाहुबलि की मूर्ति है।

(४) एनूर—यहां भी श्री बाहुबलि की २८ फुट ऊँची मूर्ति है।

(५) पोन्नूरहिल—कांचीदेश स्टेशन से तिंडिवनम् स्टे० से २४ मील। यहां श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी की तपोभूमि व स्वर्ग गमन स्थान है।

(८२) जैनियों के कुछ प्रसिद्ध आचार्य व उनके उपलब्ध ग्रन्थ

(१) श्री कुन्दकुन्दाचार्य-वि० सं० ४९--श्री पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड़, रयणसार, द्वादशभावना।

(२) श्री उमास्वामी-वि० सं० ८१—श्री तत्वार्थसूत्र।

(३) वट्टकेर स्वामी-श्री मूलाचार।

(४) श्री पुष्पदंत भूतबलि-श्री धवल, जयधवल, महाधवल।

(५) श्री समन्तभद्राचार्य-वि० द्वि० शताब्दि, स्वयंभूस्तोत्र, देवागम स्तोत्र रत्नकरण्ड श्रावकाचार, २४ जिन स्तुति, युक्त्यनुशासन।

(६) शिवकोटी-वि० द्वि० शताब्दि, भगवती आराधनासार।

(७) श्री पूज्यपाद-वि० चतुर्थ शताब्दि। समाधिशतक, इष्टोपदेश, सर्वार्थसिद्धि, जैनेन्द्रव्याकरण, श्रावकाचार।

(८) श्रीमाणिक्यनन्दि-वि० छटी शताब्दि। परीक्षा मुख न्यायसूत्र।

(९) श्री अकलंकदेव-वि० ८ शताब्दि। राज वार्तिक, अष्टशती।

(१०) श्री जिनसेनाचार्य-वि० अष्टम शताब्दि। श्री आदि पुराण, जयधवल टीका का भाग।

(११) प्रभाचन्द्र-श्री प्रमेयकमल मार्तण्ड।

(१२) पुष्पदन्तकवि-प्राकृत महापुराण आदि।

(१३) श्री जिनसेनाचार्य-वि० अष्टम शताब्दि। श्री हरिवंश पुराण।

श्रीगुण भद्राचार्य वि० नवम शताब्दि। श्री उत्तरपुराण, आत्मानुशासन, जिनदत्त चरित्र।

(१५) श्री विद्यानन्दि-वि० नवम शताब्दि। आप्त-परीक्षा, श्लोकवार्तिक, प्रमाणपरीक्षा, अष्टसहस्री, पत्र-परीक्षा।

(१६) श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती-वि० दशमशताब्दि। श्री गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, द्रव्यसंग्रह।

(१७) श्री अमृतचन्द्रआचार्य-वि० दशम शताब्दि। पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार पर संस्कृतवृत्ति, तत्वार्थसार, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय।

(१८) श्री देवसेनाचार्य-वि० दशम शताब्दि। आलाप-पद्धति, तत्वसार, दर्शनसार, आराधनासार।

(१९) श्री जयसेनाचार्य—वि० दशमशताब्दि। प्रवचन-सार, पंचास्तिकाय, समयसार पर संस्कृतवृत्ति।

(२०) अमितगति—वि० ११ शताब्दि। श्रावकाचार, सामायिकपाठ, धर्मपरीक्षा, सुभाषितरत्नसंदोह।

(२१) शुभचन्द्र—वि० ११ शताब्दि। श्री ज्ञानार्णव।

(८३) जैनियों में दिगम्बर या श्वेताम्बर भेद

जैसा पहिले कहा गया है कि जैनधर्म अनादि है तथा इतिहास की खोज के बाहर है। प्राचीन सनातन जैन मार्ग यही है कि इस के साधु नग्न होते हैं तथा जहांतक वस्त्र त्याग नहीं कर सकते थे वहां तक ग्यारह प्रतिमा रूप श्रावक का व्रत पालन होता था।

श्री ऋषभ देव से श्री महावीर तक बराबर यही मार्ग जारी था। श्री महावीर के समय में जैन मत को निर्ग्रन्थ मत कहते थे जैसा बौद्धों की प्राचीन पुस्तकों से प्रगट है। उस समय दिगम्बर या श्वेताम्बर नाम प्रसिद्ध नहीं थे सम्वत् रहित प्राचीन जैन मूर्तियाँ जो विक्रम सम्वत् के पूर्व की या चतुर्थ काल की समझी जाती हैं, जब लेख लिखने का रिवाज़ न था, सब नग्न ही पाई जाती हैं।

श्री सम्मेद शिखर के पास पालगंज में जो दिगम्बर जैन मन्दिर है उस में श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति ऐसी ही है। बिहार के मानभूम जिले में देवलटान ग्राम में जो प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है उस में मुख्य ऋषभदेव की अन्य तीर्थंकर सहित मूर्ति सम्वत् रहित बहुत प्राचीन नग्न ही है।

श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली के समय में महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य्य के राज्य में (सन् ई० से ३२० वर्ष पहिले) मध्य देश

में १२ वर्ष का दुष्काल पड़ा तब श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली २४००० शिष्यों सहित वहाँ मौजूद थे उन्हों ने यह आज्ञा की सर्व संघ को दक्षिण में जाना चाहिए क्योंकि यहाँ जैनवस्ती बहुत है आहार आदि की कठिनता नहीं पड़ेगी तब आधे संघ ने आज्ञा मान ली किन्तु आधे ने न मानी, वे वहीं रहे कालान्तर में दुष्काल पड़ने पर वे अपने साधु के चारित्र को न पाल सके, शिथिलतायें हो गई वस्त्र कन्धे पर डालने लगे भोजन लाकर एक स्थान पर खाने लगे, कुत्तों से बचने के लिए लाठी रखने लगे। उन को लोगों ने अर्द्धफालक प्रसिद्ध किया।

दुष्काल बीतने पर जब मुनि संघ लौटा तब बहुतों ने प्रायश्चित लेकर अपनी शुद्धि की, शेषों ने हठ किया। शिथिलाचार चलता रहा। विक्रम सम्वत् १३६ में श्वेत वस्त्र धारण करने से श्वेताम्बर नाम पड़ा तब से जो प्राचीन निग्रन्थ मत के अनुयायी थे उन्हों ने अपने को दिगम्बर प्रसिद्ध किया अर्थात् जिन के साधुओं का दिशा ही वस्त्र है।

पहले श्वेताम्बरों की बहुत कम प्रसिद्धि रही। वीर सम्वत् ६०० के अनुमान अर्थात् विक्रम शताब्दी में गुजरात के वल्लभीपुर में श्रीयुत देवर्द्धिगण नाम के एक श्वेताम्बर आचार्य ने अपने यतियों की सभा कर के प्राकृत भाषा में प्राचीन द्वादशांग वाणी के नाम से अपने आचरांग आदि ग्रन्थ बनाए। ये वे नहीं हैं जिन को १८००० आदि पदों में संकलन किया गया था। इन ग्रन्थों में इन्हों ने बहुत सी बातें दिगम्बरों से भेद रूप सिद्ध कीं जिन में से कुछ ये हैं —

(१) सवस्त्र साधु होकर महाव्रत पालना।

(२) भिक्षा मांग कर पात्र में लाना व एक नियत स्थान पर एक या अनेक दफे खाना।

(३) स्त्री को भी मुक्ति पद होना दृष्टान्त में १९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ को मल्लि तीर्थंकरी लिखना। प्राचीन जैन आम्नाय में स्त्री उस ध्यान की योग्यता नहीं रख सकती जिस से केवल ज्ञान हो सके इस लिये स्त्री का जीव आगे पुरुष भव पाकर महाव्रत पाल मोक्ष जा सकता है।

(४) केवलीभगवान अरहंत का भी आम रूप साधारण मनुष्यों के समान भोजन पान करना, मलमूत्र करना, रोगी होना। प्राचीन जैनमत में केवली परमात्मा के अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त बल प्रगट हो जाने से उन की आत्मा में न इच्छायें होतीं न निर्बलतायें होतीं। उन का सब शरीर अवस्था में शरीर कपूरवत् बहुत ही निर्मल हो जाता है। उस में धातु उपधातु बदल जाती हैं तब जैसे वृक्षों का शरीर चहुं ओर के परमाणुओं से पुष्टि पाता है उसी तरह केवली का शरीर दीर्घ काल रहने पर भी चारों तरफ के शरीर योग्य परमाणुओं के ग्रहण से पुष्टि पाता है केवली के शरीर में रोगादि नहीं होते न मलमूत्र होता है।

(५) मूर्तियों को लंगोट सहित ध्यानाकार बना कर भी उनके गृहस्थके समान मुकुट आदि आभूषण पहिनाते, शृंगार करते, अतर लगाते, पान खिलाते हैं। दिगम्बर जैन मूर्तियां नग्न ध्यानाकार खड़े बैठे आसन होती हैं। उनमें कोई वस्त्रका चिन्ह नहीं होता न वे अलंकृत की जाती हैं।

(६) काल द्रव्यको कोई २ श्वेताम्बर ग्रंथकार निश्चय से स्वीकार नहीं करते केवल घड़ी घण्टा आदि व्यवहार काल

मानते हैं। दिगम्बर जैन काल द्रव्यको द्रव्यों के परिवर्तन का निमित्त कारण मानकर अवश्य उसकी सत्ता स्वीकार करते हैं।

(७) महावीर भगवान का ब्राह्मणी यहां गर्भ में आना, इन्द्र के द्वारा गर्भ हरण कर त्रिशला के गर्भ में स्थापन करना, दिगम्बर जैनी इसे स्वीकार नहीं करते। त्रिशलाके गर्भ में ही वे आये थे।

(८) श्री महावीर भगवान का विवाह हुवा था। दिगम्बर जैनी कहते हैं कि वे कुमारे ही रहे और तप धारण किया।

इत्यादि कुछ बातों में अन्तर पड़ा। सात तत्व, नौपदार्थ, बाईस परीषह, पांच महाव्रत आदि सर्व ही जैनी मानते हैं। श्री उमास्वामी महाराज सम्वत् ८१ में हुए हैं, उन्होंने जो तत्वार्थ सूत्र रचा है, जिसकी मान्यता दिगम्बरों में बहुत अधिक है उसको श्वेताम्बरी भी मानते हैं। यही इस बातका प्रमाण है कि उस समय भेद बहुत स्पष्ट नहीं हुवा था, पीछे से कुछ सूत्रों में परिवर्तन हुवा है।

इनके यहां बड़े प्रसिद्ध आचार्य १३ वीं शताब्दि में श्री हेमचन्द्र जी हुए हैं जिन्हों ने बहुत से संस्कृत में ग्रन्थ रचे और राजा कुमारपाल जैन की सहायता से गुजरात में धर्म का बहुत विस्तार किया तब से श्वेताम्बरों की बहुत प्रसिद्धि हुई है। इन्हीं में से स्थानकवासी या ढूंढिये १५ वीं शताब्दि में हुए हैं जिन्हों ने मूर्ति मानने का त्याग किया, जो सवस्त्र साधुओं को ही तीर्थंकर के समान मानकर पूजते हैं अन्तर यह है कि साधु लोग मलीन वस्त्र पहनते, मुंह में

पट्टी बांधते हैं, इसभाव से कि कोई कीट न चला जावे। भोजन नीच, ऊँच जो देवे उससे लेलेते हैं।

ऐन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिया जिल्द २५ ग्यारहवीं दफा सन् १९११ (Encyclopedia Brittannia Vol. 25, 11th. edition 1911) में यह वाक्य जैन मत के सम्बन्ध में है—

The Jains are divided in to two great parties, Digambars and Svetambars. The latter have only as yet been traced and that doubtfully as for back as 5th. century A. D. after christ, the former are almost certainly the same as Nirganthas who are referred to in numerous passages of Buddhist Pali Pitakas and must therefore as old as 6th. century B. C. The Niganthas are referred to in one of Asoka's edicts (Corpas Inscription Plate XX).

The most distinguishing outward peculiarity of Mahavir and his earliest followers was their practice of going naked whence the term Digambar.

Against this Custom Gotam Budh especially warned his followers, and it is referred to in the well-known Greek phrase Gymnoso phist used already by Magasthenes, which applies very aptly to Niganthas.

भावार्थ—जैनियों में दो बड़े २ भेद हैं। एक दिगम्बर दूसरा श्वेताम्बर। श्वेताम्बर थोड़े कालसे शायद बहुत करके ईसा की पांचवीं शताब्दि से प्रगट हुए हैं। दिगम्बर निश्चय से करीब २ वे ही निरग्रन्थ हैं। जिनका वर्णन बौद्ध

की पालीपिटकों (पुस्तकों) में आया है; और ये लोग इस लिये सन् ई० से ६००० वर्ष पहले के तो होने ही चाहिये।

राजा अशोक के स्तंम्भों में भी निर्ग्रन्थों का लेख है (शिलालेख नं० २०)। श्री महावीर जी और उनके प्राचीन मानने वालों में नग्नभ्रमण करने की क्रिया का होना एक बहुत ही प्रसिद्ध बाहरी विशेषता थी जिससे शब्द दिगम्बर है। इस क्रिया के विरुद्ध गौतमबुद्ध ने अपने शिष्यों को खास तौर से चिताया था। तथा प्रसिद्ध यूनानी शब्द जैन सूफी में इसका वर्णन है। मेगस्थनीज़ (जो राजाचन्द्रगुप्त के समय सन् ई० से ३२० वर्ष पहले भारत में आये थे) ने इस शब्द का व्यवहार किया है। यह शब्द बहुत योग्यता के साथ निर्ग्रन्थों को ही प्रगट करता है। इसी तरह विल्सन साहब H. H. Vilson M. A. अपनी पुस्तक व नाम "Essays and lecturs on sealigion of Jains" में कहते हैं।

The Jains are divided in to two principal divisons, Digambars and Swetambars. The former of which appears to have the best pretensions to antiquity and to have been most widely diffused. All the Deccan Jains appear to belong the Digambar division. It is said to the majority of Jains in western India. In early philosophical writings of the Hindus, the Jains are usually termed Digambars or Nagnas (naked).

भावार्थ—जैनियों में दो मुख्यभेद हैं, दिगम्बर और श्वेताम्बर। दिगम्बरी बहुत प्राचीन मालूम होते हैं और बहुत अधिक फैले हुए हैं, सर्व दक्षिण के जैनी दिगम्बरी मालूम

होते हैं। यही हाल पश्चिमभारत के बहुत जैनियों का है। हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में जैनियों को साधारणता से दिगम्बर या नग्न लिखा है।

(८४) श्रीमहावीर स्वामी के समय में इस भरत क्षेत्रमें प्रसिद्ध राजा

जैनियों के कुछ पुराणों के देखने से जो नाम उन राजाओं के विदित हुए हैं जो श्री महावीर स्वामी के समय में थे, नीचे दिये जाते हैं—

(१) मगधदेश-राजगृही का राजा श्रेणिक या बिम्ब-सार-जिसका कुल जैन था, कुमार अवस्थामें बौद्ध होगया था फिर जवानी में जैन होगया। यह भविष्य २४ तीर्थंकरों में पहला पद्मनाथ तीर्थंकर होगा।

(२) सिंधुदेश-में वैशाली नगर का सोमवंशी राजाचेटक जैनी था। उस की रानी भद्रा से १० पुत्र थे-

धन दत्त भद्रदत्त, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, सुकंभोज, अकंपन, सुवतंग, प्रभंजन और प्रभास।

इनमें अकम्पन और प्रभास का नाम श्री महावीर स्वामी के ११ मुख्य साधु अर्थात् गणधरों में हैं (यह सिंधु देश पंजाब के उधर सिंधु नदी के पास मालूम होता है)।

इसकी ७ पुत्रियां थीं—

१ प्रियकारिणी—जो नाथ वंशी कुंडनपुर (जिला मुजफ्फर पुर) के राजा सिद्धार्थ जैनी को विवाही गई थीं व जो श्री महावीर स्वामी की माता थीं।

२ मृगावती—वत्सदेश के कौशाम्बी नगर के चन्द्रवंशी राजा शतानीक जैनको विवाही गई थी।

३ सुप्रभा—जो दशार्णदेश (मंदसौर के निकट) के हेरकच्छ नगर के सूर्यवंशी जैनी राजा दशरथ को विवाही गई।

४ प्रभावती—जो कच्छ देशके रोरूक नगर केजैनी राजा उद्‌यनको विवाही गई।

५ ज्येष्ठा—जिसको गंधार देश (कंधार) के मही नगर के राजा सात्यक ने मांगी थी।

६ चेलना—जो राजगृह के राजा श्रेणिक या बिम्बसार को विवाही गई।

७ चन्दना—जिसने विवाह न किया अर्जिका हुई।

(उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक १ से ३५)

६ हेमांगदेश—के राजपुरका राजा सत्यंधर व पुत्र जीवंधर जैनी।

(उत्तरापुराण पर्व ७५)

(४) विदेहदेश—का राजपुर का राजा गगेन्द्र।

(उ० पु० पर्व ७५)

(५) चंपानगरी—का राजा जैनी श्वेतवाहन फिर जैन मुनि धर्म रुचि।

(उ० पु० पर्व ७६ श्लोक ८-६)

(६) सुरम्यदेश—के पोदनापुर का राजा विद्युद्राज।

(७) मगधदेश—के सुप्रतिष्ठ नगर का राजा जयसेन जैनी।

(उ० पु० पर्व ७६ श्लोक २१७-२२१)

(८) पल्लवदेश—चन्द्राभा नगरी के राजा धनपति।

(क्षत्रचूडामणि लं० ५)

(९) दक्षिण—में क्षेमपुरी का राजा नरपतिदेव।

(क्ष० चू० लं० ६)

(१०) मध्यदेश—हेमाभा नगरी का राजा दृढ़मित्र।

(क्ष० चू० लं० ७ श्लोक ६८)

(११) विदेहदेश—में धरणी तिलका नगरी का जैनी राजा गोविन्दराज।

(क्ष० चू० लं० १० श्लोक ७-८-९)

(१२) चन्द्रपुर का राजा सोम शर्म्मा।

(श्रेणिक चरित्र, सर्ग २)

(१३) वेणुपद्म नगर का राजा वसुपाल।

(श्रेणिक चरित्र पर्व ५)

(१४) दक्षिण केरला का राजा मृगांक जैनी।

(श्रेणिक चरित्र पर्व ६)

(१५) हंसद्वीप का राजा रत्नचूल।

(१६) कलिंगदेश के दन्तपुर नगर का राजा धर्म घोष जैनी फिर दि० जैन मुनि होगये।

(श्रे० च० सर्ग १०)

(१७) भूमि तिलक नगर का राजा वसुपाल जैनी पीछे यही जिनपाल नाम के मुनि हुए।

(श्रे० च० सर्ग १०)

(१८) कौशाम्बी (प्रयागके पास) चण्डप्रद्योत जैनी।

(श्रे० च० सर्ग १०)

(१९) मणिव्रतदेश में दारानगर का जैनी राजा मणिमाली पीछे मुनि हुए।

(श्रे० च० सर्ग ११)

(२०) हस्तिनापुर का राजा विश्वसेन।

(श्रे० च० सर्ग ११)

(२१) पद्मरथ नगर का राजा वसुपाल।

(श्रे० च० स० ११)

(२२) अवन्ती (मालवा) देश के उज्जयनी का राजा अवनिपाल जैनी

(धन्यकुमार चरित्र अ० १)

(२३) मगध देश की भोगवती नगरीका राजा कामवृष्टि।

(धन्यकुमार चरित्र अ० ४)

नोट—जिन राजाओं के जैनी होने में संशय था उन के आगे जैनी शब्द नहीं लिखा गया है।

(८५) श्री महावीर स्वामी के समय में सामायिक स्थिति का दर्शन !

(१) स्त्रियों को अर्द्धांगिनी समझा जाता था व उन को

सम्मानित किया जाता था। प्रमाण

उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक २५६।

राजा सिद्धार्थ ने प्रियकारिणी को सभा में आने पर अपना आधा आसन बैठने को दिया।

(२) सात सात खन के मकान बनते थे। प्रमाण

महावीर चरित्र उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक २५२।

विदेह के कुण्डलपुर में सप्ततला प्रासाद थे।

(३) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों में परस्पर सम्बन्ध होते थे।

(उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक ४२४ (२५)

१—राजा श्रेणिक ने ब्राह्मण की पुत्री से विवाह किया।

मोक्षगामी अभयकुमार इस ब्राह्मण पुत्री के पुत्र हुए थे।

(उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक २६)

इसी स्थल पर श्लोक ४६ से ४६१ में वर्ण का वर्णन यह है—

वर्णा कृत्यादि भेदानां देहेस्मिन्न चदर्शनात्।
ब्राह्मणादिषु शूद्राद्यै गर्भाधान प्रवर्तनात्॥
नास्ति जाति कृतोभेदो मनुष्याणां गवाश्ववत्।
आकृति ग्रहणात्त चस्मादन्यथा परिकल्पते॥
जाति गोत्रादि कर्माणि शुक्ल ध्यानस्यहेतवः।
येषु तेस्युस्त्र योवर्णाः शेषा शूद्राःप्रकीर्तिता॥
अच्छेदो मुक्ति योग्याया विदेहे जाति सन्ततेः।
तद्धे तु नाम गोत्राढ्य जीवा विच्छिन्न स भावान्॥
शेष योस्तु चतुर्थेस्याव काले तज्जाति सततिः।
एवं वर्ण विभागः स्यान्मनुष्येषु जिनागमे॥ ४६५॥

अर्थ—मनुष्य के शरीर में वर्ण आकृति के भेद नहीं देखने में आते हैं जिस से वर्ण भेद हो क्यों कि ब्राह्मण आदि का शूद्रादि के साथ भी गर्भाधान देखने में आता है। जैसे गौ घोड़े आदि की जातिका भेद पशुओंमें है ऐसा जाति मनुष्योंमें नहीं है क्योंकि यदि आकार भेद होता तो ऐसा भेद होता। जिन में जाति, गोत्र, व कर्म शुक्ल ध्यान के निमित्त हैं वे ही तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य हैं। इन के सिवाय शूद्र कहे गये हैं।

मुक्ति के योग्य जाति की सन्तान विदेहों में सदा चली जाती है क्योंकि ऐसे नाम, गोत्र के धारी सदा होते रहते हैं। भरत और ऐरावत में चौथे काल में ही वर्ण की सन्तान व्यक्त रूप से चलती है शेष कालों में अव्यक्त रूप से * इस तरह जिन आगम में मनुष्यों के भीतर वर्ण का भेद जानना चाहिए।

(३) उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३२०-३२५—

जीवन्धर कुमार वैश्य पुत्र प्रसिद्ध थे। क्षत्रिय विद्याधर गरुड़ वेग की कन्या गन्धर्वदत्ता को स्वयंबर में बीणा बजा कर जीता और विवाहा।

(४) उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक ६४६-६५१—

जीवन्धरकुमार ने विदेह देशके विदेहनगरके राजा गयेन्द्र कीकन्या रत्नवती को स्वयंवरमें चन्द्रकपंत्र पर निशाना लगा कर विवाहा।

* शेष कालों में अव्यक्त रूप से चलती है सम्मति पं० माणिकचन्द जी।

(५) उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ३४६-४८-

प्रीतंकर वैश्य को राजा जयसेन ने अपनी कन्या पृथ्वी सुन्दर विवाही व आधा राज्य दिया।

(६) क्षत्र चूड़ामणि लंब ५ श्लोक ४२ ४६:—

पल्लवदेश के चन्द्राभानगर के राजा धनपति की कन्या पद्मा को जीवन्धर वैश्य ने सर्पविष उतार कर विवाहा।

(७) क्षत्र चूड़ामणि लंब १० श्लोक २३-२४—

विदेह देशकी धरणी तिलकानगरी के राजा अर्थात् अपने मामा गोविन्दराज की कन्या का स्वयंवर हुआ। उसकी घोषणानुसार तीन वर्णधारी धनुषधारी एकत्र हुए। जीवन्धर ने चन्द्रक यंत्र को वेधा, कन्या विवाही।

(८) श्रेणिक चरित्र शुभचन्द्रकृत सर्ग २—

उपश्रेणिकने भीलों के क्षत्रीय राजा यमदण्डकी तिलकवती कन्याको विवाहा जिसके पुत्र चिलाती हुए, उसको राज्य दिया।

(९) धन्यकुमार चरित्र छठापर्व—

राजाश्रेणिक ने धन्यकुमार सेठको वैश्य जानकर गुणवती आदि १६ कन्यायें विधिपूर्व कर विवाहीं और आधा राज्य दिया।

३-विवाह युवाकाल में ही होते थे, बालविवाह नहीं होते थे।

(१) उत्तर पुराणपर्व ७५।

मामा ने आज्ञादी कि पुत्र व कन्या जब तक युवा न हों तबतक अलग रहें विवाह न हों।

अप्राप्तयौवने यावद्विवाह समयोभवेत् ।
तावत् पृथग्वसे दस्मादिति मातुलवाक्यतः ॥

(२) क्षत्रचूड़ामणि लम्ब ८ श्लोक ६६—

तरुणाकन्या विमलाको जीवन्धर ने विवाहा।

४—समुद्रयात्रा जैनी करते थे —

(१) उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ११२—

नागदत्तने समुद्रयात्रा की, जहाज़ पर चढ़कर पलास-द्वीप गये ।

(२) उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक २५२—

प्रीत्यंकर जैनसेठ ने व्यापार के लिये समुद्रयात्रा की ।

(३) क्षत्र चूड़ामणि लम्ब २-श्रीदत्त वैश्य ने व्यापारार्थ समुद्रयात्रा की । *

५—उच्च वर्ण वाला खोटे आचरणसे पतित हो सकता है—

उत्तरपुराणपर्व ७४ एक श्रावक ने एक ब्राह्मण को जाति मूढ़ता व जाति मद हटाने को यह उपदेश किया:—

तस्य पाखण्ड मौढ्यंच यतिभिः स निराकृतः ।
गोमांस भक्षणागम्य गमाद्यैः पतिते क्षणात् ॥

भावार्थ—गौमांस खाने व वैश्यागमन करने आदि से

---

* वर्तमानमें भोजनशुद्धि छः आवश्यकों का पालन जिनचैत्यालय साधु-संगति न होने से समुद्रयात्रा निषिद्ध है । यदि उक्तयोग मिल जायँ तो कोई दोष नहीं है किन्तु मद्य, मांस के अत्यधिक प्रचार होने पर उक्त बातें कहां से मिल सकती हैं । (सम्मति पं० माणिकचन्द जी)

ब्राह्मण पतित होजाता है ऐसा कह कर उस की जाति मूढ़ता को युक्तियों से खंडन किया।

६-मामी के पुत्र के साथ वहिन का विवाह होता था।

(१) उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक १०५-

स्वामातुलानि पुत्राय नन्दिग्राम निवासने।
कुलवाणिज नाम्ने स्वामनुजा मदितादरात् ॥ १०५ ॥

(२) क्षत्र चूड़ामणि १० लम्ब-

अपने मामा गोन्विदराज की कन्या विमला को जीवंधर ने व्याहा।

७-गर्भाधानादि संस्कार होते थे-

उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक २५०-

गन्धोत्कट सेठ जब जीवन्धर बालक को घर लेगया तब उसने अन्नप्रासन क्रिया की।

तस्यान्यदा वणिग्वर्यः कृतमंगलसत्क्रियः।
अन्नप्राशन पर्यन्ते व्यधाज्जीवंधराभिधाम् ॥ २५० ॥

(८) गेंदक्रीड़ा भी की जाती थी-

उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक २६२।

जीवन्धरकुमार गेंद खेलते थे।

६— कन्यायें अनेक विद्याऐं सीखती थीं

(१) उत्तरपुराण पर्व श्लोक ३२५ —

गरुड़वेग की कन्या गंधर्वदत्ता वीणा बजाना जानती थी।

(२)उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक ३४६-३५७-

वैश्य वैश्रवण दत्त की कन्या सुरमंजरी ने चन्द्रोदय चूर्ण बनाया

वैश्य कुमारदत्त की कन्या गुणमाला ने सूर्योदय चूर्ण बनाया।
दोनो वैद्य विद्या जानती थीं।

(१०)—दयाका उदाहरण–

उत्तर पुराण पर्व ७५,

जीवंधर कुमार ने मरते हुए कुत्ते पर दया कर उसेणमोकार मंत्र दिया।

११–पक्षी भी अक्षर सीख लेते हैं—

उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक ४५८—
गंधोत्कट सेठ के पुत्र विद्याभ्यास करते थे उन को देखकर कवूतर कवूतरी ने अक्षर सीख लिये।

१२–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण वाले मुनि हो सकते हैं उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ११७––

जंबूकुमार के साथ विद्याच्चोर और तीनों वर्ण वालों ने दीक्षा ली।

१३––मोक्षगामी गृहस्थावस्था में आरंभी हिंसा के त्यागी नहीं होते।

(१) उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक २८६-८८,

मोक्षगामी प्रीत्यंकर वैश्य ने दुष्ट भीम को तलवार से मारा।

(२) क्षत्रचूडामणि लम्ब ३ श्लोक ५१

गंधर्वदत्ता को वरते हुए मोक्षगामी जीवंधर ने राजाओं से युद्ध किया

(३) क्षत्रचूडामणि लंब १० श्लोक ३७

जीवंधर ने काष्टांगार को युद्ध में मारा फिर लड़ाई बन्द की क्यों कि व्रती क्षत्री वृथा हिंसा नहीं करते विरोधी के मरने पर पीछे नर हत्या संकल्पी हिंसा है।

अन्य संग्राम संरंभं कौरवीऽमवाग्यत्र।
मुधा वधादि भीत्याहि क्षत्रिया व्रतिनोमताः ॥ ३८

(४) श्रेणिक चरित भ० शुभचन्द्रकृत सर्ग ६

मोक्षगामी जंबूकुमार वैश्य ने हँसद्वीप के राजा रत्नचूल पर चढ़कर के रत्नानगरी जा ८००० सेना का विध्वंशकर राजा को बांध लिया।

(५) गृहस्थ लोग मणि व मंत्रके प्रयोगोंको सीखते थे।

उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३६८—

जीवन्धरकुमार मणि व मंत्रज्ञान में चतुर था।

१४-राजग्रही का विपुलाचल पर्वत परमपवित्र है अनेकों ने मोक्ष प्राप्त का है।

(१) उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ६८६-६८७—

जीवन्धर ने मोक्ष प्राप्त की।

विपुलाद्रौ हताशेषकर्मा शर्माग्यृ मेष्यति।
दष्टाष्ट गुण सम्पूर्णो निष्टितात्मा निरंजनः ॥ ६८७ ॥

(२) उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक ५१७—

गौतम स्वामी गणधरने यहीं से मोक्ष प्राप्त की।

(३) श्रेणिक चरित पर्व १४—

श्रेणिक पुत्र अभय कुमार ने विपुलाचलपर केवल ज्ञान था मोक्ष पाई

१५--वैराग्य होने पर राज्य, कुटुम्ब का मोह नहीं रहता है।

(१) उत्तर पुराण पर्व ७६, ८-२९-

चंपा नगरी के राजा श्वेत वाहन ने वीर भगवान का उपदेश सुना, वैराग्यवान हो जवान होने पर भी बालक पुत्र विमल वाहन को राज्य दे मुनि हो केवली होगए।

धन्यकुमार चरित्र ७ वां पर्व---

धन्यकुमार सेठ व सालिभद्र सेठ ने जवानी में ही दीक्षा धारी घोर तप किया।

१६-श्रेणिक का पुत्र कुणिक या अजात शत्रु जैन धर्म पालता था।

(१) उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ४१-४२

जब महावीर को मोक्ष और गौतम गणधर को केवलज्ञान हुआ तब राजा कुणिक परिवार सहित पूजन करने को आया।

> श्रुत्वाभ्येतत्समाकर्ण्य कुणिक श्चेलिनीयुतः।
> तत्पुराधिपतिः सर्व परिवार परिष्कृतः॥

(२) उ० पु० पर्व ७६ श्लोक १२३

जब जम्बू कुमार दीक्षा लेंगे तब कुणिक राजा अभिषेक करावेगा।

१७--पांचवर्ष पूर्ण होनेपर बालक विद्या प्रारम्भ करताथा।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १ श्लो० ११०--११२-

पांच वर्ष पूर्ण होने पर जीवन्धरकुमार ने आर्य नन्दि तपस्वी के पास सिद्ध पूजा कर के विद्या प्रारम्भ की।

१८-अजैनों को उदारता पूर्वक जैनी बनाया जाता था।

(२) क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ६ श्लोक ७-६

जीवन्धरकुमार ने एक अजैन तपस्वी को जैनधर्म का उपदेश देकर जैनी बनाया।

[२] क्षत्र चूड़ामणि लंब ७ श्लोक २३-३०,

जीवन्धरकुमार ने एक ग़रीब भाई को जैनी बना कर आठ मूलगुण गृहण कराए तथा प्रसन्न हो अपने आभूषण उतार कर दे दिए।

१९-उस समय पांच अणुव्रत व तीन मकार का त्यागन आठ मूल गुणों के उपदेश का प्रचार था।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ७ श्लोक २३

अहिंसा सत्य मस्तेयं स्वस्त्री मितवसु गृहो।
मद्य, मांस, मधु त्यागैस्तेषां मूल गुणाष्टकम्॥

२०-स्वयंवर में ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य तीनों वर्णधारी एकत्र होते थे।

क्षत्र चूणामणि लम्ब १० श्लोक२५-

गोविन्द राजाकी कन्याके स्वयंवर में तीनों वर्ण वाले आए।

२१-शत्रु को विजय कर फिर दया व नीति से व्यवहार होता था।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १० श्लोक ५५-५७

जीवन्धरने काष्ठांगार को मारकर फिर उस के कुटुम्ब को सुख से रखा तथा १२ बर्ष तक प्रजापर कर माफ कर दिया।

"अकरामकरोद्धर्मी वर्षाणि द्वादशाप्ययम,,

श्रेणिक चरित्र सर्ग २

राजा उपश्रेणिक ने चन्द्रपुर के राजा सोमशर्मा को उद्दण्ड जान वश किया, फिर उसका राज्य उसे ही दे दिया।

२२—लोग समयविभाग के अनुसार सर्व काम करते थे।

क्षत्र० चू० लम्ब ११,

जीवन्धरकुमार रात दिन का समयविभाग कर के धर्म, अर्थ, काम का साधन करते थे।

> "रात्रिं दिवं त्रिभागेषु नियतो नियतिं व्यधात्।
> कालातिपात मात्रेण कर्तव्यं हि विनश्यति ॥ ७ ॥

भावार्थ-जो काल को लांघ कर काम करते हैं, उनका करने योग्य काम नष्ट हो जाता है।

२३—शुद्ध भोजन राजा लोग करते थे।

श्रेणिक चरित्र सर्ग २

भील राजा क्षत्रिय यमदण्ड ने उपश्रेणिक को भोजन के लिए कहा, तब उस के गृहस्थाचार की क्रिया शुद्ध न देख कर भोजन न किया। तब तिलकवती कन्या ने शुद्ध रसोई बनाई तब राजा ने भोजन किया।

२४—पिता के लिए पुत्र का उद्यम।

श्रेणिक चरित्र सर्ग ८,

सिंधु देश विशाला नगर के राजा चेटक के चेलना कन्या थी। वह सिवाय जैनी के दूसरे को नहीं विवाहता था उस समय राजा श्रेणिक बौद्ध थे तथा उस कन्या का विवाहने की चिन्ता में थे। तब पिताभक्त पुत्र अभयकुमार जैनी बन कई सेठों को साथ ले अनेक स्थानों में जैनपना प्रकट करते हुए चेलना को रथ में बिठा ले आए।

२५—नियमपूर्वक व्रती न होने पर भी गृहस्थ देव पूजा आदि छः कर्म पालते थे।

श्रेणिक चरित्र सर्ग १२

राजा श्रेणिक व्रती न हो कर भी नित्य छः आवश्यक पालन करते थे।

२६—गृहस्थ राजा लोग भी श्रावक की क्रियाओं को पालते थे।

धन्यकुमारचरित्र सकलकीर्ति कृत अ० १

उज्जयनी का राजा अवनिपाल बड़ा धर्मात्मा था। प्रातः काल उठ सामायिक, ध्यान फिर पूजन, मध्यान्ह में पात्रदान कर के भोजन, पर्व तिथि में उपवास करता था। बड़ा निस्पृही था। भूमि में सेठ धनपाल को जो धन मिला था वह उसे ही दे दिया था।

२७—जैन किसान थे तथा वे त्यागी थे।

धन्यकुमार चरित्र अ० २.

जैनी कृषक का भोजन कर के धन्यकुमार सेठ हल चलाने लगा, सुवर्ण भरा कलश मिला, धन्यने स्वयं न लिया, कृषक ने भी ग्रहण न किया। वादानुवाद के पीछे धन्य छोड़कर चले गए।

२८—गृह की स्त्रियों में नीति से वर्तन का प्रचार था।

धन्यकुमार चरित्र अ० ४

अकृतपुण्य की माता बलभद्र के पुत्रों को खीर बना कर खिलाती थी, परन्तु अपने पुत्र को बिना अपने स्वामी बलभद्र की आज्ञा के ज़रा सी खीर नहीं देती थी।

२६—वैश्यों में इतनी चतुरता थी कि थोड़ी पूँजी से अधिक धन कमा सकते थे।

ध० कु० च० अ० ६

राजगृह के श्री कीर्ति सेठ ने यह प्रसिद्ध किया कि जो वैश्य ३ दमड़ी से १००० दीनार कमावेगा, उसे अपनी कन्या विवाहूंगा। धन्यकुमार ने फूल की माला बना कर श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार को १००० दीनार में बेच दी।

३०—गरीब पिता व भाइयों का भी सम्मान करते थे।

धन्यकुमार चरित्र अ० ६

धन्यकुमार सेठ जब श्रेणिक से सम्मानित हो राजा होगए तब उन के पिता व सातों भाई उज्जैनी से निर्धन स्थिति में आए, सब का धन्य ने बहुत सम्मान किया, धनादि दिया। इन ही भाइयों ने द्वेष कर धन्य को वापी में पटक दिया था परन्तु सज्जन धन्य ने उस बात को भुला दिया।

३१—पक्षियों द्वारा सन्देश भेजा जाता था।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब २ श्लो० १३८-४३

जीवन्धर ने एक तोते के द्वारा गुणमाला को पत्र भेजा था।

३२—धर्म कार्य कर के विशेष लौकिक काम को करते थे।

क्ष० चू० लं० १०

जीवन्धरकुमार पात्र दान देकर फिर काष्ठांगार पर युद्ध को चढ़े।

३३—वैश्यों का पुत्रों के साथ व्यवहार।

ध० कु० च० अ० १

धनपाल सेठ ने धन्यकुमार को विद्या, कला, विज्ञान जवान होने तक सिखाया। धन्यकुमार नित्य पूजा व दान करता था। पिता धन्यकुमार को कहता था कि प्रातःकाल धर्म क्रियाओं को कर के जब तक भोजन का समय न हो व्यापार करना चाहिए। अभी तक विवाह का नाम भी न था।

(८६) श्री महावीर स्वामी के पीछे भारत में जैन राजाओं का राज्य।

जैसे महावीर स्वामीके समय में उनके पूर्व अनेक जैन राजा राज्य करते थे, वैसे ही उनके पीछे भी बहुत काल तक भारत में जैन राजाओं ने राज्य किया है। उनमें कुछ प्रसिद्ध राजाओं का दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है:—

महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य जैन सम्राट् थे—

इनका राज्य भारतव्यापी व बहुत परोपकारपूर्ण था। यह श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली के शिष्य मुनि होकर दक्षिण कर्नाटक में गये और श्रवणबेलगोल (मैसूर स्टेट) में गुरुकी अन्त समय सेवा की। यह बात वहां पर अङ्कित शिला लेख से प्रगट है। वहां चन्द्रगिरि पर्वत पर चन्द्रगुप्त वस्ती नाम का जिन-मन्दिर भी है। इनका पोता राजा अशोक भी अपने राज्य के २६ वर्ष तक जैनधर्म का माननेवाला था। पीछे बौद्धमत धारी हुआ है।

देहली में जो स्तम्भ है उसके लेखों में जैनधर्म की शिक्षा झलक रही है। कल्हण कविकृत राजतरंगिणी में लिखा है

कि अशोक ने काश्मीर में जैनधर्म का प्रचार किया था। राजा अशोक का पोता सम्प्रति भी जैनी था। जिसका दूसरा नाम दशरथ था।

उड़ीसा व कलिंग देश में जैनधर्म का राज्य वराबर चला आता था। खण्डगिरि की हाथी गुफा का लेख जो सन् ई० से पूर्व दूसरी शताब्दि का है जैनराजा खारवेला या भिक्षु राज था मेगवाहन का जीवनचरित्र इसमें अङ्कित है। उड़ीसा देशमें जैनधर्म के राजा १२ वीं शताब्दि तक होते रहे हैं।

दक्षिण उत्तर कनाड़ा में कादम्बवंश जैनधर्म का माननेवाला था, जो दीर्घकाल से छटी शताब्दि तक राज्य करता रहा, जिसकी राजधानी वनवासी थी। उत्तर कनाड़ा में भटकल और जरसधा में जैन राजाओं ने १७ वीं शताब्दि तक राज्य किया है। सन् १४५० में चन्नभैरवदेवी जैनरानी का राज्य था। जिसने भटकल के दक्षिण पश्चिम एक पाषाण का पुल बनवाया था। १७ वीं शताब्दि के पूर्व जरसघा में भैरवदेवी का राज्य था। गुजरात से सूरत शहर के पास रांदेर में जैन राजा दीर्घकाल से १३वीं शताब्दि तक राज्य करते थे, तब वहां अरब लोगों ने जैनियों को भगाकर अपना राज्य स्थापित किया।

दक्षिण व गुजरात में राष्ट्रकूट वंशने राज्य किया है, उसमें अनेक राजा जैनधर्म के अनुयायी थे। उनमें अति प्रसिद्ध राजा अमोघवर्ष हुए हैं जो श्रीजितसेनाचार्य के शिष्य थे व अन्त में त्यागी होगये थे। यह आठवीं शताब्दिमें हुए हैं। इन्हीं ने संस्कृत व कनड़ी में अनेक जैनग्रन्थ बनाये हैं। संस्कृत में

प्रश्नोत्तरमाला व कनडी में कविराज मार्ग कनड़ीकाव्य प्रसिद्ध है। इसकी राजधानी हैदराबाद स्टेट में मलखण्ड या मान्यखेट थी, जहां प्राचीन जिनमन्दिर अब भी पाया जाता है व कई मन्दिर किले में दबे पड़े हैं।

बम्बई के बेलगाम ज़िले में राष्ट्रवंश ने ८ वीं शताब्दि से १२ वीं शताब्दि तक राज्य किया है; जिसके राजा प्रायः सर्व जैनधर्म के माननेवाले थे।

वहाँ के शिलालेखों से उनका जैनमन्दिरों का बनवाना प्रसिद्ध है। उनमें पहला राजा मेरड़ व उसका पुत्र पृथ्वी वर्मा था। सौन्दत्ती में राजा शान्तिवर्मा ने सन् (७८०) में जैन मन्दिर बनवाया था। बेलगाम का क़िला व उसके सुन्दर पाषाण के मन्दिर जैन राजाओं के बनवाए हुए हैं और लक्ष्मी देव मल्लिकार्जुन अन्तिम राजा हुए हैं। धाड़वाड़ ज़िले में गंग वंश के अनेक जैन राजा नौवीं दसवीं शताब्दि में राज्य करते थे। चालुक्य तथा पल्लववंश के भी अनेक राजा जैनी थे।

बुन्देलखण्ड में जब्बलपुर के पास त्रिपुरा राज्यधानी रखनेवाले हैहय वंशी कालाचार्य या कलचूरी या चेदी वंश के राजा लोग सन् ई० २४६ से १२ वीं शताब्दि तक राज्य करते रहे। दक्षिण में भी इनका राज्य फैला था।

इस वंशके राजा प्रायः जैनधर्म के माननेवाले थे। मध्य-प्रान्त में अब भी एक जाति लाखों की संख्या में पाई जाती है, जिनको जैन कलवार कहते हैं। ये हैहयवंशी या कलचूरी वंशी प्राचीन जैन हैं।

(देखो सी. पी. सेन्सस रिपोर्ट सफा २३०)

गुजरात में अनहिलवाड़ा पाटन प्रसिद्ध जैन राजाओं का स्थान रहा है। पाटन का संस्थापक राजा वनराज जैनधर्मी था। इसने सन् ७८० तक वहां राज्य किया। इसका वंश चावडा था, जिसने सन् ९५६ तक राज्य किया। फिर चालुक्य या सोलंकी वंश ने सन् १२४२ तक राज्य किया। प्रसिद्ध जैनराजा मूलराज, सिद्धराज, व कुमरपाल हुए हैं।

(८७) ११ वीं शताब्दि में प्रसिद्ध राजा भोज, व उसके पीछे के समय में जैनों का दर्शन

भक्तामर कथा-(हिन्दी में छपी हिन्दी साहित्य कार्यालय बंबई सन् १९२३) से जो हाल विदित हुआ है वह नीचे दिया जाता है—

राजा भोज के समय में मुनि मानतुंगाचार्य हुए हैं, जिन्होंने कालिदास कवि द्वारा कष्ट पाकर श्री आदिनाथ की स्तुति में भक्तामर काव्य संस्कृत में रचा तथा राजा भोज को भी जैनधर्म का महत्व बताकर जैनी बना लिया था। इस काव्य के ४८ मंत्र हैं उन को आराधन करने वालों की कथाओं को बताने वाली यह कथा है।

जिन राजाओं व सेठों का वर्णन है वे राजा भोज के समय या कुछ पीछे हुए हैं।

(१) अनहिलनगर (पाटन गुजरात) में राजा प्रजापाल

जैनी राज्य करते थे। शायद यह नाम सिद्धराज या कुमार-पाल का हो। (काव्य ११)

(२) चम्पापुर का राजा कर्ण जैनी था—

(काव्य १२)

(३) अयोध्या का राजा महीपाल जैनी था।

(काव्य १५)

(४) सगरपुर का राजा सागर जैनी था।

(काव्य १७)

(५) गुजरात के पाटन नगर का राजा कुमारपाल जैनी था। इस के मंत्री आवड़ को धर्मात्मा जान राजा ने लाड़ देश का राज्य दिया। इस ने भृगु कच्छ (भरोंच) के राजा पृथ्वीसेन को जीता।

(काव्य १८)

(६) विशाला का राजा लोकपाल जैनी था।

(का० २०)

(७) नागपुर का राजा नाभिराज जैनी था।

(का० २०)

(८) गुजरात के देवपुर में एक मुनि जीवनंदी संघ सहित आए। वहां पूर्व में जैनी थे, उस समय कोई न रहे तब वह एक शिव मंदिर में गये, वहां बैठ कर लोगों को जैन धर्म का उपदेश देकर जैनी बनाया।

(काव्य २१)

यह उदारता थी कि तुर्त जैनी बनाकर जैनधर्म स्थापित किया तथा मुनि संघ की आहारदान से रक्षा कराई।

(९) गौड़ शास्त्र नगर का राजा प्रजापति बौद्ध धर्मी था। एक दफा जैन साधु मतिसागर आए। राजसभा में बौद्ध साधु से वाद हुवा, जैन धर्म की विजय हुई, तब राजा व अन्य कई जैनी हुए।

(काव्य २२)

(१०) सूरीपुर (जमना तट ज़िला आगरा) में बड़े २ विद्वान् रहते थे। राजा जितशत्रु जैनी था जो मुनि शांतिकीर्ति हो गया।

(का० २४)

(११) गोदावरी नदी के तट पावापुर में राजा हरि था सो मुनि चन्द्र के उपदेश से जैनी हुवा।

(का० २७)

(१२) धारा नगरी (मालवा) का राजा भूपाल था। उस की कन्या रूपकुंडला बड़ी विद्वान् व रूपवान् थी सो जैन आर्यिका हुई।

(का० २८)

(१३) अंकलेश्वर (गुजरात) का राजा जयसेन जैनी था। राजा ने मुनि गुणभूषण को आहारदान दिया।

(का० २९)

(१४) उज्जैनी का राजा महिपाल जैनी था।

(का० ३३)

(१५) बनारस का राजा भीमसेन जैनी था, वही मुनि हुए पिहिताश्रव नाम पड़ा।

(का० ३४)

(१६) पटना का राजा धात्रीवाहन था। कन्या कामलता बड़ी विद्या सम्पन्ना थी, दोनों शिवभूषण मुनि के उपदेश से जैनी हुए।

(का० ३६)

(१७) मथुरा के राजा रणकेतु जैनी थे। उन का भाई गुणवर्मा था। दोनों नित्य जिनेन्द्र पूजा करते थे। एक दिन रणकेतु ने वैराग्यवान हो छोटे भाई को राज्य दे मुनि पद धार लिया।

(काव्य ४३)

(१८) तामली (शायद तामलुक बङ्गाल) नगर का सेठ महेभ जैनी था सो जहाज पर चढ़ सिंहलद्वीप गया। भक्तामर काव्य के प्रताप से सुखपूर्वक समुद्रयात्रा से लौटा।

(काव्य ४५)

(१९) उज्जैनी का राजा नृपशेखर जैनी था फिर मुनि हुआ।

(काव्य ४५)

(२०) अजमेर नगर का राजा रणपाल था। पुत्र रणधीर था जो बड़ा विद्वान् था। उस ने मुनि गुणचन्द्र से भक्तामर के मन्त्र सीख लिए थे। उस रणधीर को राजा ने अजमेर के पास पलाशखेट का राज्य दिया। योगिनीपुर (प्राचीन नाम दिल्ली) के बादशाह सुलतान ने पलाशखेट पर चढ़ाई कर के

उसे कैद कर लिया। रणधीर भक्तामर मन्त्र के प्रभाव से कैद से निकल आया तब बादशाह ने बहुत सम्मान किया।

(काव्य ४६)

इस भक्तामर कथाको सकलचन्द्र मुनि के शिष्य पं० रायमल्ल ने आषाढ़ सुदी ५ सं० १६६७ में पूर्ण की। यह हूंबड़ जाति के मह्य पिता व चम्पाबाई के पुत्र थे। श्री वादिचन्द्र मुनि की कृपा से ग्रीवापुर के मही नदी तट पर श्री चन्द्रप्रभु मंदिर निवासी कर्म सी ब्रह्मचारी के अनुरोध से लिखी।

(८८) जगत् की रचना

क्योंकि जगत् पदार्थों का समुदाय है और पदार्थ सब सत् रूप नित्य है. इस से जगत् सत् रूप नित्य है. क्योंकि सब ही पदार्थ जगत् में काम करते हुए बदलते रहते हैं, परिवर्तित होते रहते हैं इस से यह जगत् भी परिवर्तनशील अर्थात् अनित्य है। इस नित्यानित्यात्मक जगत् की रचना को जैन आगम किस तरह बताती है, इस बात का जानना हर एक जैनधर्म के जिज्ञासु को आवश्यक होगा। इस लिए हम इस प्रकरण में वह सब वर्णन संक्षेप में करेंगे।
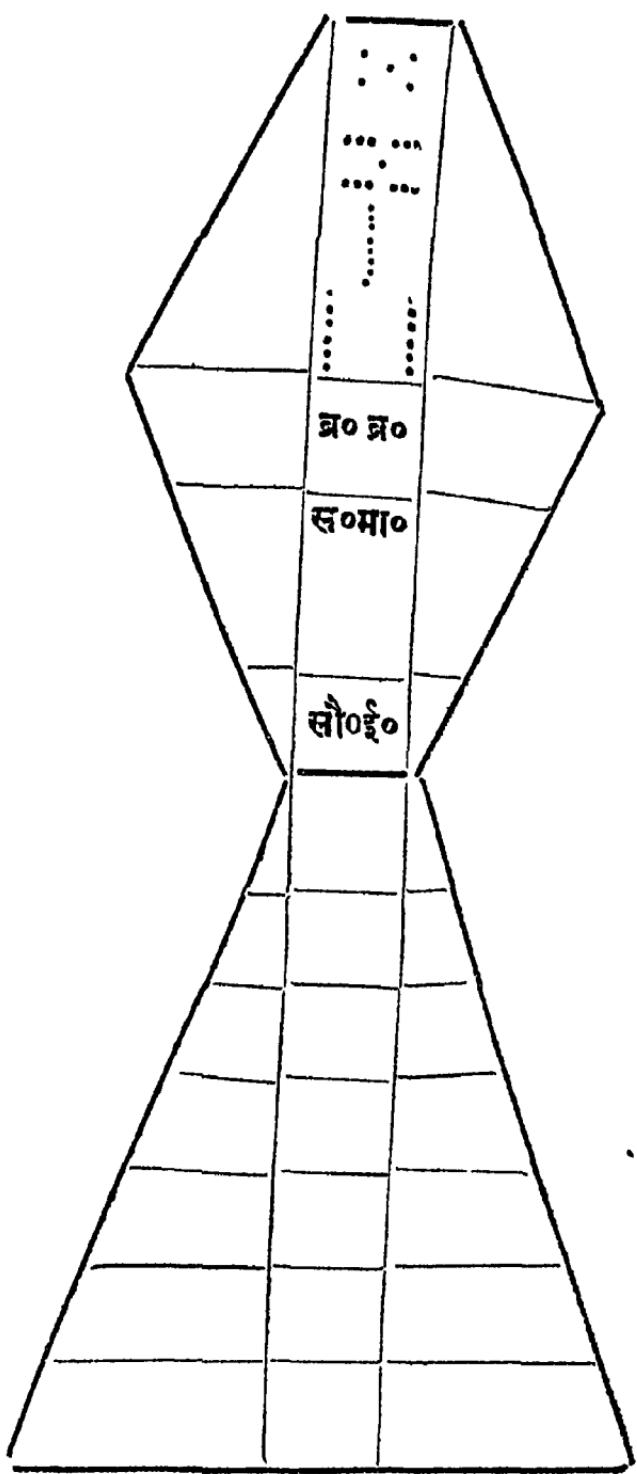
वर्तमान भूगोल की समालोचना करके जैन आगम में कहे हुए भूगोल वर्णन के सिद्ध करने का प्रयास पूर्ण सामग्री व पूर्ण पर्याप्त ज्ञान के अभाव से हम नहीं कर सकते। इतना अवश्य जानना चाहिये कि जगत् में ऐसा परिवर्तन हजारों लाखों वर्ष में होजाता है कि जहां भूमि है वहां पानी आजाता है व जहां पानी है वहां भूमि बनजाती है।

वर्तमान प्रचलित भूगोल देखी हुए जमीन की है। जैनजगत् की रचना का वर्णन सदा स्थिर रचना को मात्र बतलानेवाला है, जो कहीं २ बदलते रहने पर भी अपनी मूल स्थिति को नहीं बदलती है। तथा जो वर्तमान भूगोल है वह बहुत थोड़ा है और जैन भूगोल बहुत बड़ा है।

पाश्चिमात्य विद्वान् खोज कर रहे हैं, संभव है अधिक भूमि का पता लगजावे। इस लिये पाठकों को उचित है कि जैनजगत् की रचना के ज्ञानको प्राप्त करके उसके प्रमाणभूत होने के लिये भूगोलवेत्ताओं की खोज की राह देखें। जैनशास्त्रों में सजीव वृक्ष, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि में जीवपना बतलाया है। सायंस (विज्ञान) ने पृथ्वी व वृक्ष में जीव है यह बात सिद्ध कर दी है। तिन में भी जीवपना कालांतर में सिद्ध हो जायगा। इसी तरह भूगोल की रचना के सम्बन्ध में भी सन्तोष रखना चाहिये।

यह जगत् आकाश, काल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गल और जीव इन छः द्रव्यों का समुदाय है। इनमें क्षेत्र की अपेक्षा आकाश सबसे बड़ा है, अनन्त है, मर्यादारहित है। उसके मध्य में जितनी दूर तक आकाश में शेष जीवादि पाँच द्रव्य पाए जाते हैं उस क्षेत्र को लोक (Universe) कहते हैं तथा उतने आकाश के विभाग को लोकाकाश कहते हैं, शेष खाली आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

इस लोककी लम्बाई चौड़ाई, ऊँचाई व आकार इस तरह का जानना चाहिये जैसा कि नीचे दिया है। यह लोक डेढ़ मृदंग के आकार है। आधे मृदंग के ऊपर सारा मृदंग रख देने से लोक का आकार बन जाता है। अथवा एक पुरुष पैरों

ब्र० ब्र०
स०मा०
सौ०ई०

को फैलाकर व दोनों हाथोँ को कमर में बांधा करके लगा लेवे, उसके आकार के समान लोक का आकार है। एक राजू माप है, जो असंख्यात योजनकी समझनी चाहिये। यह लोक पूर्व से पश्चिम नीचें सात राजू चौड़ा है।

फिर घटते हुए ऊपर को मध्य में एक राजू चौड़ा है, फिर ऊपरको बढ़ता हुवा शेष आधे के आधे में पांच राजू चोड़ा है। फिर घटते हुए अन्त में ऊपर को एक राजू चौड़ा है। दक्षिण उत्तर वरावर सात राजू लम्बा है। ऊँचाई इस लोक की चौदह राजू हैं। इस का घनदात्ररूप सर्व ३४३ (तीनसौ तैंतालीस) घन राजू प्रमाण है। इसका हिसाब इस तरह है।

$$\frac{७+१}{२} \times ७ \times ७ = \frac{८ \times ७ \times ७}{२} = १९६ \text{ घनराजू}$$

शेष आधे के आधे का घनफल यह है:-

$$\frac{१+५}{२} \times \frac{७}{२} \times ७ = \frac{६ \times ७ \times ७}{४} = \frac{१४७}{२}$$

शेष ऊपर का आधा भी $\frac{१४७}{२}$ है।

$$१९६ + \frac{१४७}{२} \times \frac{१४५}{२} = ३४३ \text{ घनराजू हुआ।}$$

इस लोक में ८ पृथिवियां हैं। सात नीचे हैं उन के नाम मध्यलोक से पाताल तक रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, महातमप्रभा हैं। ये एक दूसरे से कुछ कम एक राजू के अन्तर हैं तथा पूर्व पश्चिम लोक के

एक ओर से दूसरी ओर तक चली गई है। इन की मोटाई इन्हीं राजू में गर्भित है।

सातवीं पृथ्वी के नीचे एक राजू स्थान और है। इस को प्राग्भारा कहते हैं। फिर लोक का अन्त है। एक पृथ्वी ऊर्ध्व लोक के अन्त में है।

इस लोक को तीन तरह की पवन वेढ़े हुए है पहले घनोदधि पवन गाय के मूत्र समान वर्ण वाली है। उस के ऊपर घनवात मूंग अन्न वर्ण वाली है, फिर उस के ऊपर तनुवात है, उस का वर्ण अव्यक्त है। इस के ऊपर मात्र आकाश है।

यह तीन तरह की पवन आठों पृथिवियों के भी हर एक के नीचे है। इन की मोटाई लोक के नीचे तथा ऊपर एक राजू तक की ऊँचाई तक, नीचे व बगल में हर एक पवन २०००० बीस हज़ार योजन मोटी है। फिर एक दम घटकर सातवीं पृथ्वी के पास क्रम से सात, पांच तथा चार योजन मोटी है। फिर क्रमसे घटते हुए पहली पृथ्वीके पास पाँच, चार, तीन योजन क्रमसे मुटाई है। यहां तक सात राजू की ऊँचाई हो गई फिर क्रम से बढ़ते हुए ३॥ राजू ऊँचा जाकर पांचवें स्वर्ग के पास सात, पांच, चार, योजन मुटाई फिर घटते हुए आठवीं पृथ्वी के पास पांच, चार, तीन योजन की मुटाई है।

लोक के ऊपर दो कोस घनोदधि, एक कोस घनवात तथा ४२५ धनुष कम १ कोस अर्थात् १५७५ धनुष तनुवात मोटी है।

यह गणना प्रमाणांगुल से है, जो साधारण उत्सेध अंगुल से ५०० पांच सौ गुणा है। आठ आड़े का एक अंगुल (उत्सेध अंगुल) २४ अंगुल का एक हाथ, ४ हाथ का एक धनुष, २००० धनुष का एक कोस, ४ कोस का एक योजन छोटा, इस से ५०० गुना बड़ा योजन होता है।

यहां जो कोस कहा है वह ५०० कोस के बराबर है व जो धनुष कहा है वह ५०० धनुष के बराबर है।

इस लोक के मध्य में नाली के समान एक राजू लांबा चौड़ा व चौदह राजू ऊँचा जो क्षेत्र है उस को त्रसनाली कहते हैं क्योंकि द्वीन्द्रियादि त्रसजीव इस के भीतर ही जन्मते हैं, इस के बाहर नहीं जन्मते जब कि स्थावर जीव सर्व स्थानों जन्मते व मरे हैं।

मनुष्य, पशु, नारकी और देव चारों गति के त्रसजीव इतने ही क्षेत्र में पाये जाते हैं इस के बाद तीन सौ उनतालीस (३३९) घन राजू में नहीं पाए जाते। त्रसनाली का क्षेत्रफल १४ राजू है अतः तीन सौ तेतालीस में से १४ घटाने पर ३२९ घनराजू में केवल स्थावर पाए जाते हैं

अधोलोक का वर्णन—नीचे की सात पृथिवियों के नाम, ऊपर से नीचे तक क्रम से धम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी तथा माघवी भी प्रसिद्ध हैं। इन की हर एक मुटाई क्रम से एक लाख अस्सी हज़ार १८००००, बत्तीस हजार ३२०००, अट्ठाईस हजार २८०००, चौबीस हजार २४०००, बीस हज़ार २००००, सोलह हजार १६०००, आठ हजार ८००० योजन है।

पहली पृथ्वी के तीन भाग हैं—

१—खरभाग-जो १६००० योजन मोटा है।

२—पंकभाग-जो ८४००० योजन मोटा है।

३—अब्बहुलभाग-जो ८०००० योजन मोटा है।

खरभाग में भी एक हजार मोटी १६ पृथिवियों के भाग हैं, पहले भाग को चित्रा पृथ्वी व अन्त के भाग को शैला पृथ्वी कहते हैं।

खरभाग व पंकभाग में देव रहते हैं। अब्बहुलभाग में पहला नर्क है। आगे की छः पृथिवियों में छः नर्क और हैं। इन सात नर्कों में नारकियों के उपजने व रहने योग्य क्षेत्रों को बिल कहते हैं। वे कोई संख्यात कोई असंख्यात योजन चौड़े हैं। सातों नरकों में कुल ८४ चौरासी लाख बिले नीचे प्रमाण हैं—

पहला नर्क—३० लाख

दूसरा नर्क—२५ लाख

तीसरा नर्क—१५ लाख

चौथा नर्क—१० लाख

पांचवां नर्क—३ लाख

छठा नर्क—५ कम एक लाख

सातवां नर्क—केवल पांच

पहली पृथ्वी से पांचवीं की ३ चौथाई भाग तक बहुत उष्णता है, फिर सातवीं तक बहुत शीत है। जो प्राणी अत्यन्त परिग्रह में मोही, अन्यायकर्त्ता व हिंसक हैं। वे इन नर्कों में

आकर अन्तर्मुहूर्त के भीतर पैदा हो जाते हैं, इनका शरीर वैक्रियिक होता है जिस में बदलने की शक्ति है। इन के उपजने के स्थान ऊँट आदि के मुख के समान छत में छींके के समान होते हैं, वहां से गिर कर उछलते हैं। इन का शरीर पारे के समान होता है जो टुकड़े होने पर मिल जाता है। इन नारकियों के अत्यन्त क्रोध होता है, परस्पर एक दूसरे को कष्ट देते हैं। आप ही कभी सिंह, नाग आदि रूप धर लेते हैं, स्वयं ही शस्त्र रूप होकर मारते हैं। उन को भूख, प्यास बहुत लगती है। वे वहां की दुर्गंध मिट्टी को खाते व वैतरणी नदी का खारी पानी पीते हैं, परन्तु भूख प्यास मिटती नहीं है।

ये नारकी दुःख सहते हुए, बिना आयु पूरी हुए मर नहीं सकते। इनकी उत्कृष्ट आयु क्रम से एक, तीन, सात, दश, सत्रह या बीस, व तेतीस सागर है। जघन्य पहले नर्क में दश हज़ार वर्ष है। पहले नर्क में जो उत्कृष्ट है वह दूसरे में जघन्य है। तीसरे नरक तक असुरकुमार देव भी जाकर नारकियों को लड़ाते हैं।

इनके शरीरकी ऊँचाई पहले नर्क में कम से कम तीन हाथ व अधिक से अधिक सात धनुष, तीन हाथ छः अंगुल है। इसकी दूनी २ आगेके नर्कों में ऊँचाई है अर्थात् १५ धनुष २ हाथ १२ अंगुल, ३१ धनुष १ हाथ, ६२॥ धनुष, १२५ धनुष, २५० धनुष तथा ५०० धनुष हैं।

खरभाग पंकभाग में भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख भवन हैं। उन हर एक में एक एक जिन मंदिर है। ये भवनवासी दशजाति के होते हैं—

असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार, और वातकुमार।

नारकियों के देह भी मनुष्यके समान होते हैं परन्तु भयावने व कुरूप होते हैं तथा देवों के शरीर भी मनुष्य समान होते हैं परन्तु वैक्रियिक बड़े सुन्दर होते हैं। इनमें से केवल असुरकुमार पंकभाग में रहते हैं।
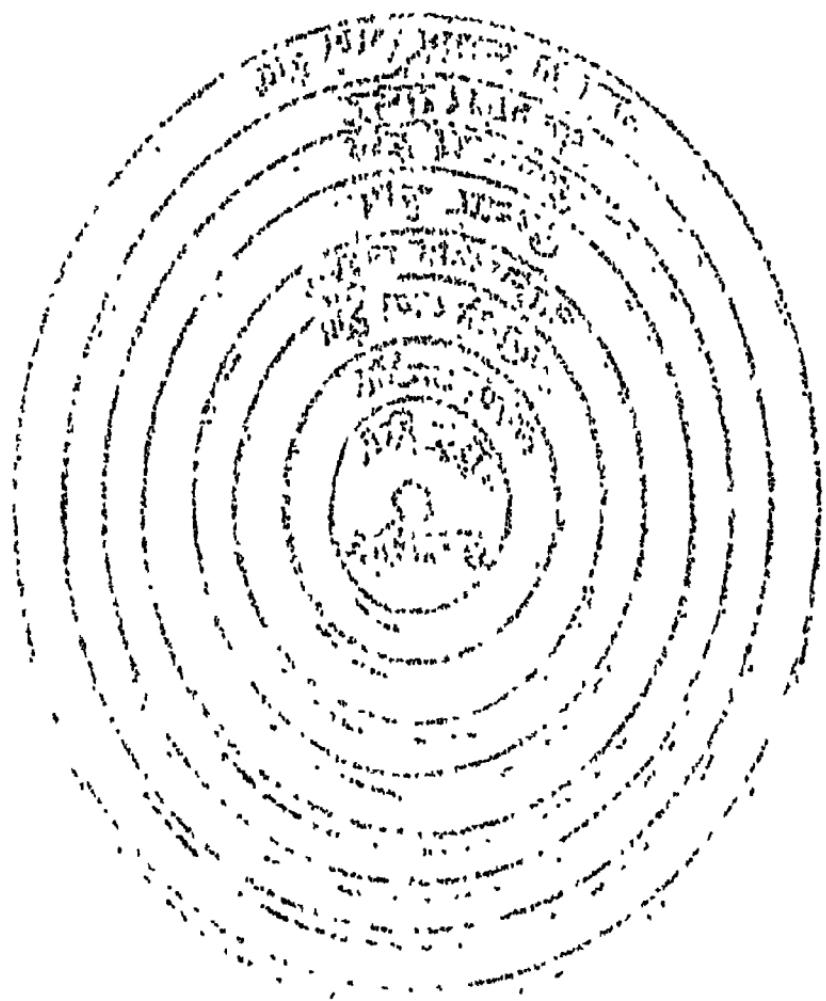
व्यन्तर जाति के देव आठ प्रकार के होते हैं—

किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच। इन में राक्षस जाति के देव पंक भाग में रहते हैं, शेष खरभागमें रहते हैं। बहुतसे व्यन्तर मध्यलोकमें भी रहते हैं। इन दोनों की जघन्य आयु दशहजार वर्ष की है तथा उत्कृष्ट आयु भवनवासी देवों को एक सागर व व्यन्तरों को एक पल्य होती है।

इसी दश प्रकार भवनवासी व आठ प्रकार व्यन्तरों में दो दो इन्द्र व दो दो प्रतीन्द्र होते हैं जो राजा के समान हैं। इस तरह ४० इन्द्र भवनवासी के व ३२ इन्द्र व्यन्तरों के जानने चाहिये। भवनवासियों में असुर कुमारों का शरीर पच्चीस धनुष, शेष का दश धनुष ऊँचा होता है।

व्यन्तर देवों का भी दश धनुष ऊँचा होता है।

मध्यलोक—पहली रत्नप्रभा पृथवी के खरभाग की पहली पृथ्वी चित्रा है। उस में १००० योजन सुदर्शन मेरु की, जड़ है ऊपर ९९००० हजार योजन ऊँचा है तथा ४० योजन ऊँचा

अन्त का स्वयंभूरमण द्वीप
पुष्करवर समुद्र
पुष्करवर द्वीप
पुष्कर द्वीप
कालोदधि समुद्र
धातकी खण्ड द्वीप
लवण उदधि
जम्बू द्वीप
सुदर्शनमेरु

चूलिका है। यह मेरु पर्वत मध्यलोक के मध्य में है। एक राजू लम्बे चौड़े क्षेत्र में सब से पहला व छोटा मध्य का जम्बू द्वीप है जो गोल और थालीके आकार का है। इसका व्यास एक लाख योजन का है। इस के मध्य में सुदर्शन मेरु है।

इस द्वीप के चारों तरफ लवणउदधि समुद्र है जो दो लाख योजन चौड़ा है। फिर उस के चारों तरफ धातु खण्ड द्वीप है, फिर उस को वेढ़े हुए कालोदधि समुद्र है। फिर उस के चारों तरफ पुष्करवर द्वीप है। इस तरह एक दूसरे को वेढ़े हुए असंख्यात द्वीप समुद्र एक दूसरे से दुगने चौड़े या व्यास में हैं।

पुष्करवर द्वीप के आगे उसी नाम का समुद्र है। आगे जो द्वीपका नाम है वही समुद्र का नाम है। पुष्करवर समुद्रके आगे वारुणिवर द्वीप व समुद्र क्षीरवर द्वीप व समुद्र, घृतवर द्वीप व समुद्र क्षौद्रवर द्वीप व समुद्र, नंदीश्वर द्वीप व समुद्र, अरुणवर द्वीप व समुद्र, अरुणाभासवर द्वीप व समुद्र, कुंडलवर द्वीप व समुद्र शंखवर द्वीप व समुद्र, रुचिकवरद्वीप व समुद्र, भुजगवर द्वीप व समुद्र, कुशगवरद्वीप व समुद्र, क्रौंचवर द्वीप व समुद्र ऐसे सोलह द्वीप या समुद्र के नाम हैं।

मनःशिला, हरिताल, सिंदुरवर, श्यामगर, अंजनवर, हिंगुलिकवर, रुपवर सुवर्णवर, वज्रवर, वैडूर्यवर, नागवर, भूतवर यक्षवर, देववर, अहीन्द्रवर, स्वयंभूरमण।

तीसरे पुष्करवर द्वीप के मध्य में आधे भाग का छोड़ कर एक मनुषोत्तर पर्वत सब ओर है। इस के आगे मनुष्य न पैदा होवे हैं न जा सकते हैं—अर्थात् जम्बुधातु का व

पुष्करार्ध तक ही मनुष्य होते हैं। इस को ढाई द्वीप या मनुष्य लोक कहते हैं। इसी तरह स्वयंभूरमण द्वीप के मध्य में स्वयंप्रभ पर्वत है।

मध्यलोक में व्यवस्था दो प्रकार की है—

कहीं कर्म भूमि है कहीं भोग भूमि है। जहां असि, मषि, कृषि आदि कर्मों से परिश्रम करके व अन्य प्रकार उद्यम करके उदर पोषण किया जावे वह कर्म भूमि है। जहां कल्प-वृक्षादिकों से भोग्य पदार्थ मिल जावें व स्त्री पुरुष का युगल साथ पैदा हो व एक दूसरे युगल को उत्पन्न करके साथ मरे उसे भोग भूमि कहते हैं।
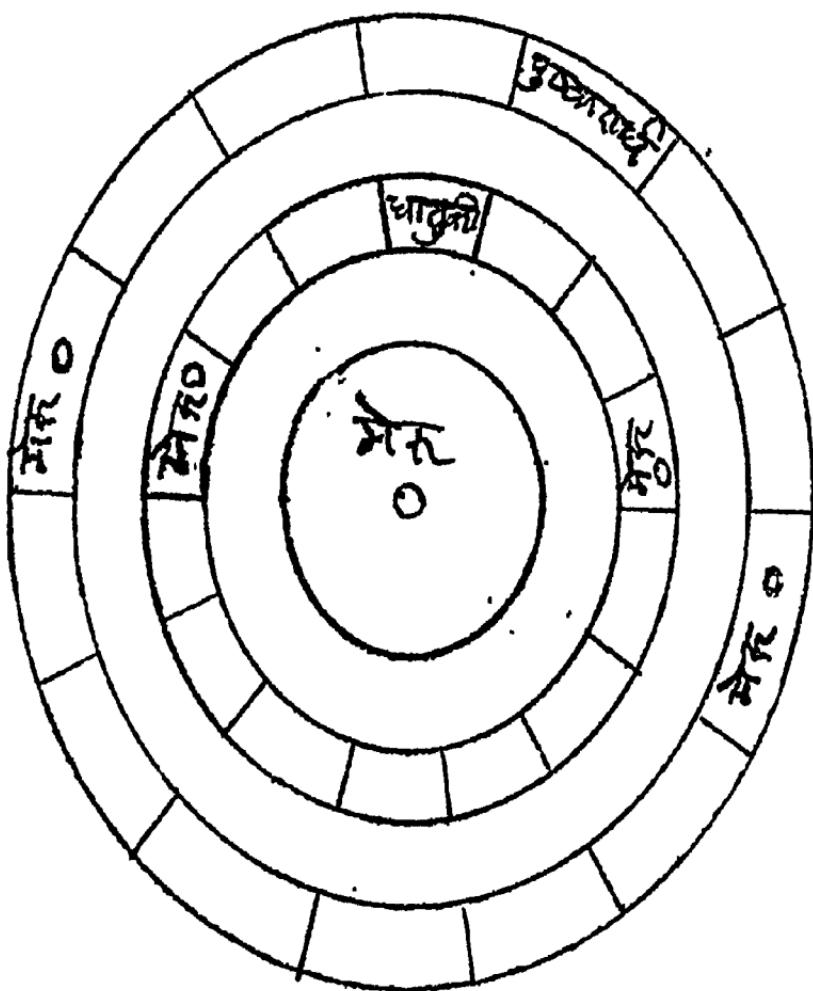
ढाई द्वीपमें कर्मभूमि व भोगभूमि दोनों हैं। अन्त के आधे द्वीप व समुद्र में कर्मभूमि है, शेष सर्व द्वीपों तथा समुद्रों में भोगभूमि है, वहां जघन्य भोगभूमि के समान युगलपंचेन्द्रिय-पशु पैदा होते हैं, परन्तु जलचर नहीं होते हैं, थलचर तथा नभचर होते हैं। जलचर जन्तु लवण, कालोद, स्वयंभूरमण समुद्र ही में होते हैं।
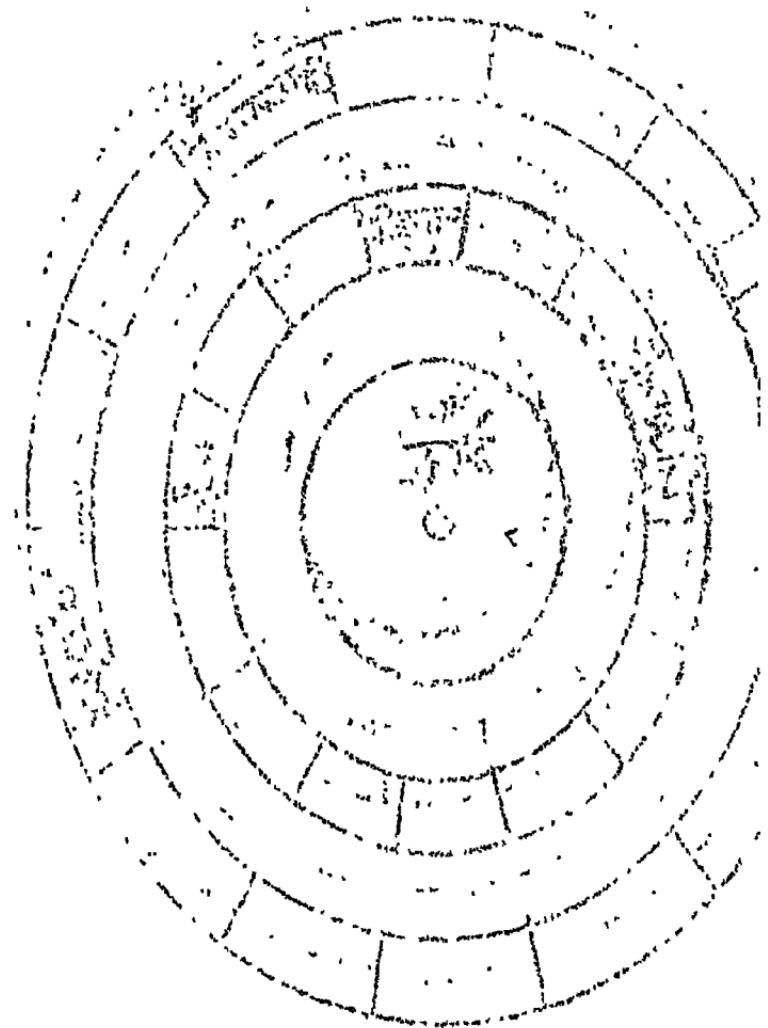
लवणसमुद्र का जल खारी है, वारुणीवर का मदिरावत् है, क्षीरवरका दूधके समान है, घृतवर का स्वाद घीके समान है। कालोद, पुष्करवर, स्वयंभूरमण का स्वाद जलके स्वाद समान है। शेष सब समुद्रों का स्वाद सांठे (इक्षु) के रस के समान है।

ढाईद्वीप या मनुष्यलोक का वर्णन—

जम्बूद्वीप एक लाख योजन चौड़ा है, तब लवणसमुद्र

नकशा ढाई द्वीप

द्रा, धातुकी द्वीप चार; कालोद समुद्र आठ, पुष्करार्धद्वीप आठलाख योजन चौड़ें हैं। यदि ढाईद्वीप भरकी चौड़ाई एक ओर से दूसरी ओर लीजाय तब जम्बूकी चौड़ाई छोड़ शेष की बाईस की दूनी चवालीसलाख होगी। उसमें एकलाख जम्बू की मिलाने से पैंतालिस लाख चौड़ाई या व्यास है। इतने क्षेत्र से ही मनुष्य धर्म साधन कर मुक्ति पासकते हैं।

जम्बू द्वीपका वर्णन—

इसके भीतर सातक्षेत्र हैं, दक्षिण से उत्तर तक नाम ये हैं—

भरत, हैमवत, हरि, विदेह रम्यक, हैरण्यवत, ऐरावत। इनका विभाग छः पर्वतों ने किया है, जिनको कुलाचल कहते हैं। उनके नाम ये हैं:—

हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मी, शिखरी। वे पर्वतभीत के समान ऊपर व नीचे बराबर चौड़े हैं, लवण-समुद्रतक लम्बे चले गये हैं। इनकावर्ण क्रमसे सुवर्ण, चांदी, तायासोना, नील, चाँदी तथा सुवर्ण के समान है। ये पर्वत क्रमसे सौ, दोसौ, चारसौ, चारसौ, दोसौ व सौ योजनऊँचे हैं इन छः पर्वतों पर छः द्रह हैं, जिनके नाम क्रम से ये हैं:—

पद्म, महापद्म, तिगंछ, केशर, महापुण्डरीक, पुण्डरीक। पहला पद्मद्रह १००० एकहज़ार योजन लम्बा, पांचसौ योजन चौड़ा व दशयोजन गहरा है। तिगंछ तक एक दूसरे से दूने लम्बे चौड़े व गहरे हैं। शेष तीन दक्षिण के समान हैं। हर एक द्रहमें एक कमलाकार द्वीप है। पद्मद्रह में एक योजन व्यास है। आगे दूना दूना तिगंछ तक है। उत्तर का दक्षिण के

बराबर है। इन छः द्वीपों में श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, और लक्ष्मी देवियां परिवार सहित रहती हैं।

इन द्रहोंसे चौदह महानदी निकली हैं। पहले पद्मद्रह से महागंगा, महासिंधु जो क्रमसे पूर्व या पश्चिम को बहकर पर्वतसे गिरकर फिर बहकर भरत के मध्य जो विजयार्ध पर्वत है उसकी गुफाओं से बाहर आकर, कुछ बहकर एक पूर्व दूसरी पश्चिम तरफ जाकर लवणसमुद्र में गिरी है। पद्मके उत्तर द्वार से तीसरी रोहितास्या निकली है जो हैमवत क्षेत्र में बहकर पश्चिम तरफ़ लवणसमुद्र में गिरी है।

महापद्म के दक्षिणद्वार से रोहित निकलकर हैमवतक्षेत्र में बह पूर्वसमुद्र में व उत्तरद्वार से हरिकांता निकल हरिक्षेत्र में बह पश्चिम समुद्र में गिरी है।

तिगंछ के दक्षिणद्वार से हरित निकल हरिक्षेत्रमें बह पूर्व समुद्रमें व उत्तरद्वार से सीतोदा निकल विदेहक्षेत्र में बह पश्चिम समुद्र में गिरी है।

केशरीद्रहमें दक्षिणद्वार से सीता नदी निकलकर विदेहमें बह पूर्वसमुद्रमें तथा उत्तरद्वार से नरकांता नदी रम्यकक्षेत्रमें बह पश्चिम समुद्र में गिरी है।

महापुण्डरीकद्रह के दक्षिणद्वार से नारी नदी निकल कर रम्यकक्षेत्र में बह पूर्व समुद्र में तथा उत्तरद्वार से रूप्यकूला निकल हैरण्यवत्क्षेत्रमें बह पश्चिम समुद्रमें गिरी है।

पुण्डरीकद्रह के दक्षिणद्वारसे सुवर्णकूला निकल हैरण्यवत्‌क्षेत्रमें बह पूर्व समुद्रमें तथा इस द्रहके पूर्व द्वार से रक्ता

ओर पश्चिम द्वार से रक्तोदा नदी निकल कर गंगा व सिंधु के समान ऐरावत क्षेत्र के विजयार्ध क्षेत्र में होकर क्रम से पूर्व तथा पश्चिम समुद्र में गिरी हैं ।

ये सब महानदी दे चौदह हैं जिन में दो दो हर एक क्षेत्र में वही हैं ।

महागंगा व महासिंधु की परिवार नदियां प्रत्येक की चौदह चौदह हजार हैं । रोहित रोहितास्या को अट्ठाईस २ हजार हैं,हरित हरिकांता की छप्पन २ हज़ार हैं । सीता सीतोदा की एक लाख बारह हजार प्रत्येक की नदियां हैं ।

उत्तर में दक्षिण के समान जाननी चाहिए ।ये महानदियां बहुत चौड़ी हैं । महागंगा नदीके निकास की चौड़ाई ६। योजन और समुद्रमें मिलते समय दशगुनी यानी ६२॥ योजन होजाती है । जब हिमवन् पर्वत से भरत में गिरती है तब इसकी चौड़ाई दश योजन की होती है ।

भरतक्षेत्र के महागंगा महसिंधु नदी के विजयार्ध पर्वत भीतर से बहकर निकलने से भरत के छः भाग होजाते हैं। विजयार्ध पर्वत दोनों तरफ समुद्र तक लम्बा चला गया है विजयार्ध के दक्षिण के तीन भागों में से मध्यके भाग को आर्य खण्ड कहते हैं, शेष पांच खण्डों को म्लेच्छ खण्ड कहते हैं ।

म्लेच्छ खण्ड वालों को धर्मपुरुषार्थ का ध्यान नहीं होता है यही भेद है । राजपाट, खेती, वाणिज्य आदि सब कर्म करते हैं ।

आर्य खण्ड के मध्य में उपसमुद्र है । विदेह क्षेत्र में मेरु पर्वत के चारों कोनों में चार गजदन्त पर्वत हैं । दक्षिण की

तरफ इन गजदन्तों के मध्य क्षेत्र को देवकुरु उत्तर के क्षेत्र को उत्तरकुरु कहते हैं।

मेरु के पूर्व क्षेत्र को पूर्व विदेह और पश्चिम क्षेत्र को पश्चिम विदेह कहते है। पूर्वविदेह और पश्चिम विदेह हरएक के सोलह सोलह भाग इस तरह हुए हैं कि सीता सीतोदा नदी के दोनों तट, पर एक चार वक्षारगिरि व तीन विभङ्गा नदी से स्पर्शित हैं। इस तरह हर तरफ आठ वक्षार व छः विभङ्गा नदी होने से सोलह भाग हो जाते हैं जिस से जम्बू द्वीप में ३२ विदेह क्षेत्र हुए।

हर एक में भारत ऐरावत के समान पांच म्लेच्छ खण्ड, एक आर्य खण्ड व एक उप समुद्र है।

जम्बूद्वीप की व्यवस्था—

देवकुरु उत्तरकुरु में उत्तम भोगभूमि सदा रहती है, जहां के युगल तीन पीछे अमृतमयी अल्प भोजन करते व सन्तोष से रहते हैं। हरि व रम्यक क्षेत्र में सदा मध्यम भोग-भूमि रहती है, जहां के युगल दो दिन पीछे भोजन करते हैं। हैमवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि सदा रहती है जहां के मनुष्य व पशु युगल एक दिन पीछे भोजन करते हैं।

विदेह में सदा कर्म भूमि रहती है, क्योंकि यहां से सदा ही प्राणी देह रहित हो मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इसी लिए इस को विदेह कहते हैं। यहां कम से कम चार तीर्थंकर सदा उपदेश देते हुए विहार करते हैं।

भरत व ऐरावत में काल का परिवर्तन नीचे प्रकार होता है—

विजयार्ध पर्वत और पांच म्लेच्छ खण्डों में सदा ही कर्म

भूमि विदेह के समान रहती है। परन्तु जब भरत ऐरावत के आर्य खण्ड में अवनत अवस्था होती है तब वहां भी चौथे काल अर्थात् दुखमा सुखमा काल की अवनत अवस्था हो जाती है। आर्य खण्ड में अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल का पलटन होता रहता है हर एक यह सर्पिणी दश कोड़ा कोड़ी सागर की होती है। ये दोनों लगातार एक दूसरे के पीछे चला करती हैं।

अवसर्पिणी में अवनति जब कि उत्सर्पिणी में उन्नति होती होती जाती । हर एक के काल होते हैं। अवसर्पिणी के छः काल इस भांति हैं—

१ सुषमा सुषमा—तीन कोड़ा कोड़ी सागर का अथ उत्तम भोग भूमि गिरती हुई रहती है।

२ सुषमा—तीन कोड़ा कोड़ी सागर का। अथ मध्यम भोगभूमि गिरती हुई रहती है।

३ सुषमा दुषमा—दो कोड़ा कोड़ी सागर का। यही जघन्य भोगभूमि गिरती हुई रहती है।

४ दुषमा सुषमा—४२००० वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर का । अब विदेह के समान कर्म भूमि गिरती हुई रहती है।

५ दुषमा—२१००० वर्ष कर्मभूमि अवनति रूप रहती है।

६ दुषमा दुषमा—२१००० वर्ष कर्मभूमि गिरती हुई रहती है। जब एक अवसर्पिणी के छः काल पूरे हो जाते हैं तब ४९ उनचास दिन तूफान व अग्नि वर्षा होती है जिस से मकानादि गिरते हैं इसीको प्रलय कहते हैं, तब बहुत से मनुष्य

या पशु भाग कर विजयार्ध पर्वत व महागङ्गा व महासिन्धु के तलों में चले जाते हैं। कुछ को देवता विद्याधर उठा कर रक्षित रखते हैं। फिर ४९ उनचास दिन अच्छी वर्षा हो कर पृथ्वी जम जाती है, तब वे मनुष्य या पशु आ जाते हैं।

अब उत्सर्पिणी काल चलता है—जिसमें पहले से उल्टा क्रम है। उत्सर्पिणी के छः काल बीतने पर प्रलय नहीं होती है। वर्तमान में जितने कुछ समुद्र आदि हैं वे सब उपसमुद्र के भीतर गर्भित हैं व जो एशिया आदि द्वीप हैं सो इसी के आप पास की भूमि व द्वीप हैं।

उपसमुद्रमें ५६ छप्पन अन्तर्द्वीप २६००० छब्बीस हज़ार रत्नाकर द्वीप व सातसौ कुक्षिवास द्वीप होते हैं। (ऐसा गाथा ९७७ त्रिलोकसार से झलकता है)

आर्यखण्ड का व्यास भरतक्षेत्र के व्यास से आधा है—भरतक्षेत्र का व्यास ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है-अर्थात् $\frac{१०००० \times ४०००}{१९}$ मील है। इससे आधा आर्यखण्ड की चौड़ाई।

$\frac{१०००० \times २०००}{१९}$ मील है, जो बराबर है $\frac{२००००००००}{१९}$ मील के १०५२६३१ $\frac{११}{१९}$ मील है। *

अबजो पृथ्वी प्रगट है उसकी चौड़ाई कई हज़ार मील ही है। अभी आर्य खण्ड की ही खोज बाकी है। उपसमुद्र के भी सर्व द्वीप नहीं मिले हैं।

भरत की चौड़ाई से दूनी २ चौड़ाई पर्वत व आगेके क्षेत्रों

* नोट यहां कोस २ मील का माना है कहीं २॥ मील का भी लेते हैं।

की विदेह तक है। ऐसाही उत्तर में है।

जम्बूद्वीप से दूनी रचना धातुकी खंडमें है-अर्थात् दो मेरु दो भरत आदि तथा ऐसी ही रचना पुष्करार्ध में है। ढाई द्वीपमें पूर्व विदेह हैं इससे वहां कमसे कम वीस तीर्थंकर सदा उपदेश देते हैं। वर्तमान में जो वीस हैं उनके नाम ये हैं—

श्रीमन्दर, युगमन्धर, बाहु, सुबाहु, संजात, स्वयंप्रभ, ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति वज्रधर, चन्द्रानन, चन्द्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य।

ज्योतिषदेव—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे ये पांच-तरह के होते हैं। ये सब मध्यलोक में चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन ऊपर जाकर ९०० योजन तक में हैं। मेरु की प्रदक्षिणा ढाई द्वीपके भीतर देते रहते हैं। जो हमें दीखते हैं वे उनके रहने के विमान हैं। ढाई द्वीपके बाहर ये स्थिर रहते हैं। इनही के भ्रमण से रातदिन का व ऋतु का परिवर्तन होता है।

७९० योजन ऊपर तारे हैं, फिर १० योजन ऊपर सूर्य विमान है, उसके ८० योजन ऊपर चन्द्र विमान है, फिर ४ योजन ऊपर नक्षत्र हैं, फिर ३ योजन ऊपर शुक्र है, फिर ३ योजन ऊपर बृहस्पति है, फिर ३ योजन ऊपर मंगल है, फिर ३योजन शनि है।

राहु के विमान के ध्वजादण्ड से चार प्रमाणांगुल ऊपर चन्द्रमा का और केतुके विमान के ध्वजादंड से चार प्रमाणां-

गुल ऊपर सूर्य का विमान है। जब घूमते २ राहु या केतु चंद्र या सूर्य के आगे कुछ देरतक आजाते हैं तबही सूर्यग्रहण या चन्द्र ग्रहण पड़ना कहलाता है। ये सब ज्योतिष विमान मेरु को ११२१ योजन छोड प्रदक्षिणा देते हैं। राहु और केतुके विमान का व्यास १ योजन (बड़ा) है। सूर्य की लम्बाई चौड़ाई ४८/६१ योजन है तथा चान्द्र विमान ५६/६१ योजन है। सर्व ज्योतिषी विमान आधे लड्डू के आकार हैं-अर्थात् नीचे की तरफ ढलती हुई गोलार्ध हैं ऊपर चौरस हैं।

ढाई द्वीपमें सूर्य चन्द्र विमान—

जम्बू द्वीपमें-दो सूर्य दो चंद्र
लावण समुद्र में-४ सूर्य ४ चान्द्र
धातुकी खंडमें-१२ „ १२ „
कालोदधि में—४२ „ ४२ „
पुष्करार्ध में—७२ „ ७२ „

सब १३२ सूर्य चन्द्र हैं। एक २ चान्द्रमा के परिवार में अठासी ग्रह अठाईस नक्षत्र व ६६९७५ कोड़ा कोड़ी तारे हैं। ६६७७५०००००००००००००० विना घूमने वाले जम्बू द्वीप में, ३६ लवण समुद्र में १३९ धातुकी में, १०१० कालोद में ४११२० की पुष्करार्ध में, ५३२३० ध्रुवतारे हैं। चन्द्रमा और सूर्य प्रत्येक बारह २ हजार किरणें हैं।

ऊर्ध्वलोक का वर्णन—

ज्योतिषी देवों का शरीर सात धनुष ऊंचा होता है व आयु उत्कृष्ट एक पल्य व जघन्य पल्य का आठवां भाग है। विमान

सदा बने रहते हैं, उनमें देव पैदा होते व मरते हैं। इन विमानों तथा व्यन्तरों के आवासों में व भवन वासियों के विमानों में जिनमंदिर हैं।

मेरु के तले तक नीचे से ७ राजू ऊंचा है फिर मेरु के तले से ऊपर तक सात राजू ऊँचा है। मेरुतक से डेढ़ राजू तक सौधर्म ईशान स्वर्गों के विमान हैं उसके ऊपर १॥ राजू में सनत्कुमार महेन्द्र स्वर्ग हैं—अर्थात ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव कापिष्ट, शुक्र महाशुक्र, सतार सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत। ऐसे ६ राजूमें १६ स्वर्ग हैं फिर १ राजूमें ६ ग्रैवेयक, ६ अनुदिश व पांच अनुत्तर विमान और सिद्ध क्षेत्र हैं।

(नकशा देखो)

पहले चार के चार, नीचे के ८ के ४, अन्त के ४ के चार, सोलह स्वर्ग के ऊपर २३ विमानों में अहमिन्द्र होते हैं। वे अपने विमान में बराबर के होते हैं।

पांच अनुत्तर के नाम हैं—विजय वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थसिद्धि।

इन में सर्व विमानों की संख्या इस तरह पर है।

१ स्वर्ग	३२ लाख
२ ,,	२८ ,,
३ ,,	१२ ,,
४ ,,	८ लाख
५–६ ,,	४ ,,
७–८ ,,	५० हजार
६–१० ,,	४० हजार

११-१२ स्वर्ग	६	हज़ार
१३ से १६ में	७००	"
३ ग्रैवेयकमें	१११	"
३ मध्य "	१०७	"
३ ऊर्ध्व	९१	"
९ अनुदिश में	९	"
५ अनुत्तर	५	"

कुलविमान-८४९७०२३ हर एक में एक २ जिन मंदिर है।

इन की आयु नीचे प्रमाण है—

पहले दूसरे स्वर्ग में जघन्य १ पल्य है

उत्कृष्ट आयु	२ सागर
३-४ में	७ सागर
५-६	१० सागर
७, ८	१४ सागर
९-१०	१६ सागर
११-१२	१८ सागर
१३-१४	२० "
१५-१६	२२ "

पहले स्वर्ग में जो उत्कृष्ट है वह दूसरे में जघन्य है। इसी तरह आगे है। सर्वार्थ सिद्धि में ३३ सागर से कम आयु नहीं है।

इन का शरीर बहुत सुन्दर वैक्रियिक होता है। ऊंचाई नीचे प्रमाण है।

१-२ में	७। हाथ
३-४ में-	६ हाथ
५-८ में-	
९-१० में-	३॥ हाथ
११-१२ में-	४ हाथ
१३-१६	३ हाथ
३ अधोग्रैवेयक में-	२॥ हाथ
३ मध्यग्रैवेयक में-	२ "
३ ऊर्ध्वग्रैवेयक में-	१॥ हाथ
४ अनुदिश, ५ अनुत्तर में-	१ हाथ

स्वर्गों में देवियों की जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक व उत्कृष्ट ५५ पल्य है।

स्वर्ग के देवों में तथा व्यन्तर, भवन व ज्योतिषियों में नीचे ऊँचे पदके धारी हैं, वे पदवियां दश हैं—

१ इन्द्र-राजा के समान, २ सामानिक-पिता व भाई समान, ३ त्रायस्त्रिंशत्-मंत्री के समान, ४ पारिषद्-सभासद समान, ५ आत्मरक्षा-शरीर रक्षक, ६ लोकपाल-छोटे गवर्नरके समान, ७ अनीक-सेना का रूप रखनेवाले, ८ प्रकीर्णक-प्रजाके समान ९ अभियोग्य-वाहन बननेवाले, १० किल्विषिक-छोटे देव।

व्यन्तर ज्योतिषियों में त्रायस्त्रिंशत् व लोकपाल दो पद नहीं होते हैं।

आठवीं पृथ्वी ४५ पैंतालिस लाख योजन चौड़ी अर्ध चन्द्राकार सिद्धशिला है। इसही की सीध में तनुवातवलय के बिलकुल ऊपरी हिस्से में ठीक बीचमें सिद्धों का स्थान है

क्योंकि जहां तक धर्मद्रव्य है, वहीं तक मोक्षप्राप्त जीवों का गमन हो सकता है। पैंतालिस लाख योजनका ढाई द्वीप है। ढाईद्वीप से सिद्ध हुए हैं, होते हैं व होंगे। इससे सिद्धक्षेत्र सिद्धों से परिपूर्ण भरा है।

देवों के इन्द्रियसुखों के भोगने की शक्ति अधिक है, शरीर को बदलने व अनेकरूप करलेने की शक्ति है, बहुत दूरतक जानने व जाने की शक्ति है, इसकारण जो जीव पुण्यात्मा हैं वे देवगति में जन्म पाते हैं। जो जीव अन्यायी हिंसक पापी हैं वे नर्कगति में जन्मते हैं। जिनके पाप कम हैं वे मध्यलोक में पंचेन्द्रिय पशु होते हैं। जिनके पुण्य कम हैं वे मनुष्य होते हैं। इस तरह यह जगत्की रचना पुण्यपाप के फलसे विचित्र है। जो सर्व कर्म रहित हो जाते हैं वे सिद्ध होकर अनन्तकाल तक सिद्धक्षेत्र में तिष्ठते हैं।

पाँचवेंस्वर्ग के अन्तमें लौकान्तिक देव रहते हैं जो वैरागी होते हैं, देवी नहीं रखते। सब बराबर हैं, आठ सागर की आयु है, तीर्थंकरके तप समय वैराग्य भावना भाते वक्त तीर्थंकरकी स्तुति करने आते हैं। ये एक भव लेकर मोक्ष जाते हैं।

सर्व ही चार प्रकार के देवों के श्वांस लेने व आहार की इच्छा होने का हिसाब यह है कि जितने सागर की आयु होगी उतने पक्ष पीछे श्वांस लेंगे व उतने हज़ार वर्ष पीछे भूख लगेगी तब कण्ठ में स्वयं अमृत भर जाता है, जिस से भूख मिटजाती है। वे बाहरी कोई पदार्थ खाते पीते नहीं हैं।

यह वर्णन श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती कृत त्रिलोकसार से दिया गया है।

(८६) जैनधर्म को हरएक हितेच्छु प्राणी पाल सकता है

जैनधर्म आत्मा की शुद्धि का मार्ग है जैसा दिखाया जा चुका है। मतवाला विचारवान प्राणी, देव, नारकी, पशु, या मनुष्य चाहे अमेरिका का हो या यूरोप का हो, या रशिया का हो कहीं का हो, नीच हो या ऊँच सब कोई इस धर्म का स्वरूप समझकर उसपर विश्वास ला सकते हैं।

मूल बात विश्वास करने की यह है आत्मा शक्ति से परमात्मा है, कर्मबन्धन जड़पदार्थ का संयोग है, उसके मिटने पर यह आत्मा परमात्मा हो सकता है, तब अनन्तकाल के अनन्तज्ञानी अनन्तसुखी रहेगा।

रागद्वेष मोह से कर्म का बन्ध होता है, वीतराग भावसे कर्मबन्ध कटता है। वीतरागभाव पाने के लिये वीतराग सर्वज्ञ, वीतराग साधु, व वीतराग निग्रन्थ जैनधर्म की सेवा करनी उचित है।

संसार सुख तृप्तिकारक नहीं है, आत्मोकसुख ही सच्चा सुख है। इस श्रद्धान का पाना ही सम्यग्दर्शन (Right belieg) है, जिसे हर कोई समझदार धारण कर सकता है, फिर वह अपने आचरण को ठीक करता है जिसके लिये बताया जा चुका है कि उसका आठमूलगुण पालने चाहिये।

एकही उद्देश्य को लेकर आचार्यों ने ४-५ प्रकार से आठ मूलगुणों का वर्णन किया है। सबसे बढ़िया है-मद्य, मांस,

मधुका त्याग तथा स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी कुशील व परिग्रह का प्रमाण।

जिनसेनाचार्य जी ने मधु के स्थान में जुवाका त्याग रख दिया। पीछेके आचार्यों ने पांच पाप त्याग के स्थानमें पाँच फलों का त्याग रख दिया जिनमें कीड़े होते हैं। जैसे बड़फल पीपलफल, गूलर, पाकर और अन्जीर, जिससे लोग सुगमता से धारण कर सकें।

जो कोई जैनी हो उसे कमसे कम दो मकार तो त्याग ही देना चाहिये एक तो मदिरा दूसरा मांस। ये दोनों मनुष्य शरीर के बाधक हैं व अप्राकृतिक आहार हैं।

नशा पीनेसे शरीर व मन अपने क़ाबूमें नहीं रहते, अनेक रोग होजाते हैं। मांसकी भी किसी मानवके लिये ज़रूरत नहीं है। इसमें शक्ति वर्धक अंश भी बहुत थोड़े हैं।

The toiler and his food, by Sir William Earnshaw cooper C. I. E.

नामकी पुस्तक में दिखलाया है। कि जब बादाम आदि में १०० में ६१, मटर चने चावलमें ८७, गेहूंमें ८६, जौ में ८४, घी में ८७ मलाई में ६६, अंश शक्ति है तब मांस में २८, अन्डे में २६ अंश है। बड़े २ प्रवीण डाक्टरों का मत है कि मनुष्य के लिये इसकी ज़रूरत नहीं।

Dr. Josiah Oldfield D. C. L. M. A. M. R. C. S. R. C. P. senior physician Margaret Hospital Bombay कहते हैं:—

Today thier is the scientific fact assured that

man belongs not to the flesh eater but the fruit eaters. Flesh is unnatural food & therefore tends to create functional disturbances.

भावार्थ–विज्ञान ने यह विश्वास आज दिला दिया है कि मनुष्य मांसाहारियों में नहीं किन्तु फलाहिरियों में है। मांस अस्वाभाविक आहार है जिससे शरीर में वहुत उत्पात हो जाते हैं।

विदेशों के वड़े २ लोग मांस नहीं खाते थे। यूनान के पैथोगोरस, प्लेटो, अरिष्टाटल, साक्रेटीज़, पारसियों के गुरु जोरस्टर, ईसाई पादरी जेम्स, मेन्यू पेटेर। अनेक विद्वान् जैसे मिल्टन, इजाक, न्यूटन, वेनजामिन फ्रैंकलिन, शेली, एडीसन।

अमेरिका, यूरोप में लोग दिनपर दिन मांस छोड़ते जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि ठन्डे देशों में मांस विना चल नहीं सकता सो जिन-राजदास थिओसोफिस्ट ने ता० २ सितम्बर १८१६ को कहा है कि मैं इंगलेंड में १२ वर्ष शाकाहार पर रहा, अमेरिका के चिकागो व कैनेडा में मैंने जाड़े शाकाहार पर काटे हैं तथा मांसाहारियों की अपेक्षा भले प्रकार जीवन विताया है।

जो मदिरा मांस छोड़ देगा व धीरे २ और भी वातों को धार लेगा, तथा जैसा पहले कहा है उस को छः वातों का अभ्यास करना चाहिये।

(१) देवपूजा, (२) गुरुसेवा, (३) शास्त्रपढ़ना, (४) इन्द्रियमन या संयम, (५) तप या ध्यान, (६) दान।

यदि किसी देश में किसी समय किसी आवश्यक को न पाल सके तो भावना भावे। जितने भी पालेगा वैसा फल मिलेगा। प्रयोजन यह है कि इन कामों से प्रेम रखकर यथाशक्ति अभ्यास करे।

वास्तव में जो राजा जैनधर्मी होगा वह कभी अन्यायी व निर्दयी न होगा। वह अपनी प्रजा को सुखी बनाने की चेष्टा करेगा। प्रजा जैनधर्मी हो तो परस्पर सताकर काम न करे। सब खेती बारी आदि काम प्रजा कर सकती है तथापि परस्पर नीति व दया के व्यवहार से सुखशान्ति का वर्तन रख सकती है, इस लिये हर एक देश वालों को उचित है कि इस धर्म को धार कर आत्मकल्याण करें।

शुद्धाशुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	संसार के उदाम	संसार के
३	२०	भुग्गेइम	भुजेइ
७	२	मस्तादयौं	नस्तादयौं
”	”	दधातु	दर्धातु
”	४	आष्टक	अष्टक
”	८	परिधाति	परियाति
”	१०	मंत्र २७	मंत्र २५.
”	१७	एक	एकं
”	”	यजनं	यजतं
”	१८	सदल	रुद्र व
”	१६	अष्टक	अष्टकर
८	४	भेतन्ति	मेतन्ति
८	१४	च्चेव	श्चैव
६	१६	प्र० २७	पृ० ७२७
६	३	३७२ में	३७२ में इस सवाल के जवाब में
१०	१४	Countrary	Contrary
११	१६	उत्पन्न हुआ	उत्पन्न हुआ (See Budha's life and Hacy's translation 1882)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	२३	खोज	खोज (Historical, Gbanings)
१२	३	चूल साकुल	चूल सकुल
„	७	अचलको	अचेलकों
„	११	त्रिवितक	त्रिपितक
„	१३	किइ	किर
१३	३	सभी गुप्त	सश्रीगुप्त
„	६	प्रसव	प्रमथ
१४	१०	करता	करना
१५	१३	भत इति	यत इति
„	१५	निश्रतृप्त	नित्यतृप्त
„	२१	तत्त्व	स्व
१६	१	याधिरयं	पाधिरयं
„	„	याधि	पाधि
„	६	(२१)	(२५)
„	१०	ब्रह्म	वृह्म नित्य
१८	६	प्रमणां	प्रमाणां
„	२१	गच्छेद	गच्छेत्
„	२३	चारतं	पारतंत्र्यात्स्वातंत्र्यं
१९	३	जीव न	जीव व
„	१०	२२ अ० ८	२२ अ० ७
„	१०	विभवान	विभवान्
२१	२१	System then	System, than
२४	१९	Lopty	lofty
२५	५	पदर्थों	पदार्थों

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध :
२८	१२	दर्शनाः	दर्शनः
,,	१५	आयु	नाम
,,	१६	नाम	आयुः
२६	१४	एकता न होना	एकता होना
,,	१६	आयु	नाम
,,	,,	नाम	आयु
३१	१०	से निश्चय	से जो निश्चय
३७	११	मिथ्याभव	मिथ्याभाव
४०	३	Existance	Existeuse
,,	२०	कहेंगे। जब	कहेंगे जब
४१	२१	whithout	without
४२	१३	and	stand
४३	१०	लाभ से	लोभ से
४४	१५	वीरिप	वीरिय
४५	१२	सहस्त्थो	सिहस्त्थो
४६	१३	२२००००	२२८०००
४७	१६	४४०३	४४७०३
५१	१६	विवान	विवान्त
,,	१७	जनेयः	जनेभ्यः
५४	१०	तन्यासः	तन्न्यास
५५	१६	बनाने	बताने
५७	८	शरीर	शरीर पृथ्वी
५८	१३	सके	सके वह
६२	५	जीत्र	जीव भी
,,	१८	परमाण	परमाणु

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६५	२१	उपेयांत्त	उपेयात्त
७३	१४	विभाग	विभाव
७४	२०	तन्नद्	तत्तद्
७८	७	कर	तार
७६	१७	मन से	मन के
८४	१६	सत्त	रूत्य
६०	२१	नीचैश्य	नीचैश्च
१०३	२१	येहा	पेहा
१०५	२१	१५	१५॥मैथुनमब्रह्म॥१६॥
२०७	३	सत्त	सत्य
१२३	२१	परयर्पियों	परम ऋषियैः
१२६	२	भेद उदय	मंद उदय
१३१	१५	वंध ५७ का	वंध ५६ का
१३७	६	पूर्णपते	पूर्णपने
१३७	१७	साधु	साधुः
१३६	२१	मयेर्हाणि	मराहाणं
१४०	१७	आररी	आइरी
१४२	५	अरहत	अरहंत
१४३	२	असाधारण	साधारण
१४७	१	करना	करता
„	११	श्रावक	श्रावकों
„	१८	२२	२५
१५४	१८	काम शुद्धि	काय शुद्धि
१५६	६	पक्क	पक्कं
„	७	जं……	जंतेणय छुराणं
१५७	१७	कनराते	कतराते

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५६	१	तीसेरे	तीसरे
१६२	२	(३०)	(३०) निःसंगत्वात्मभावना
१६४	१०	प्रकार	मकार
१६७	२१	लाजाराम	लालाराम
१६६	२३	जिघणं	तिघणं
,,	२४	तेवहिं	तेत्तट्ठी
१७७	६	सम्बन्ध	सम्बन्ध से
,,	२१	उंड	उंड्
,,	२२	वालव	मालव
१७६	२०	पर्याय	पर्यय
१८१	१५	जिजीपुः	जिजीविषुः
१८४	१६	आहार	आहार गुल्म सेठ
१८५	१७	धरणे	धरणो
१८७	२४	नेश्या	लेश्या
१८८	१७	भौंड	मौंड
,,	२५	कारणया	कारण या
१८६	२०	ध्यान......	ध्यान से अघातिया
१६०	७	वैसर्ग्य	नैसर्ग्य
१६७	७	से	से नारायण,
१६६	१	वा शरीर	का शरीर
,,	३	नारायण को	नारायण को
,,	१०	कारिका	द्वारिका
,,	१२	कारण	राजा
२००	१६	जदिषेण	नंदिषेण
२०१	१२	बलभद्र नारायण	बलभद्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०१	१८	रानचन्द्र	रामचन्द्र
,,	१६	शोकाकुला	शोकाकुल
२०२	१	के नाम	नाम के
२०४	१७	भादोशुदी १	भादोवदी १
,,	६	जैनियों में भारतवर्ष के	जैनियों के भारतवर्ष में
२०५	२	रत्नभय	रत्नत्रय
२०७	१५	मसानपुर	महानपुर
,,	१६	१८	१२
,,	२३	सहटेमहके	सहटेमहेठ
२०६	१३	को रिषय	श्री रिषभ
,,	२०	ग्राम	ग्राम सदृश
२१०	२०	ल भद्रादि	बलभद्रादि
,,	१	भांगीजंगा	मांगीतुंगी
,,	२	इन्द्रमान	हनुमान
,,	१८	से...स्टे०-	तिड्विनम्
२१२	४	रमण	रयण
२१५	६	अर्द्धकालक	अर्द्धकालिक
,,	२१	आचरंग	आचारांग
२१६	४	अश्नाय	आम्नाय
,,	१२	सव शरीर	सशरीर
२१७	४	ब्राहमणी	ब्राह्मणी के
२१८	८	for	far
२१६	२	६०००	६००
,,	१४	lectures	lectures on the religion

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१६	१६	it	soit
२२१	२	कातनीक	शतानीक
२२३	४	प्रव्योत	प्रद्योत
२२४	१४	श्लोक···	श्लोक ४६१ से ४६५
,,	१६	कृत्यादि	कृत्यादिं
,,	१७	शूद्रानै	शूद्राद्यै
,,	१६	चस्मा	स्मा
,,	२३	ससावान्	संभवात्
२२५	४	जाति	जाति भेद
२२६	१८	विधिपूर्वकर	विधिपूर्वक
२२७	१६	यक्तिभिः	युक्तिभः
,,	२१	अत्याधिक	अत्यधिक
२२८	५	मातुलामि	मातुलानी
२२६	८	४५८	४५७
२२६	१३	चिद्याचोर	विद्युच्चोर
२३०	८	रत्ना	केरल
,,	१६	५६७	५१७
२३१	१७	परिष्कृतः	परिष्कृत
२३२	६	त्यागन	त्यागना
,,	१३	त्यागे	त्यागै
,,	२३	द्धार्मी	दात्रीं
२३३	२१	कन्या को	कन्या के
२३७	१२	जरसधा	जरसन्धा
,,	१५	,,	,,
,,	१६	भैग्व	भैरव

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३७	२२	जित	जिन
२३८	१०	७८०	९८०
२३८	१८	२२९	२४९
२४[illegible]	११	पात्रा	वाना
२४५	१५	१८९६...	१९६ + $\frac{१४७}{२}$ + $\frac{१४७}{२}$
२४७	२	आड़े	आड़ों
२४७	११	स्थानों	स्थानों में
,,	१२	मरे	मरते
,,	१४	उनतालीस	उनतीस
,,	१५	(२२९)	(३२९)
२४८	४	९०००००	८०१००
२५१	१९	नाम हैं	नाम हैं। अंत के १६ द्वीप व समुद्रोंके नामहैं
२५४	३	निकाली	निकलीं
,,	११	वह	व
,,	१२	,,	,,
,,	१३	,,	,,
,,	१४	,,	,,
,,	१५	,,	,,
,,	१६	,,	,,
,,	१७	,,	,,
,,	१८	,,	,,
,,	१९	,,	,,
,,	२०	,,	,,

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५४	२१	वह	घ
„	२३	„	„
२५६	६	पर	हर
„	१५	तीन	तीन दिन
२५७	१३	मध्यस	मध्यम
२५७	१५	यही	अब
२५८	१७	१०४२	१०५२२६२१
१५६	४	पूर्व	पांच
„	६	देव यक्ष	देव यश
„	२०	नक्षत्र हैं	नक्षत्र हैं फिर ४ योजन ऊपर बुध है
२६०	८	गोलार्ध	गोलाई
„	५१	लखण	लवण
„	१७	६६७७५	६६६७५
„	२१	ऊर्ध्वलोककावर्णन	(कुछ नहीं)
„	२३	ष्टत्उकृ	उत्कृष्ट
२६१	३	×	ऊर्ध्वलोक का वर्णन
„	५	मेरुतक	मेरुतल
„	७	महेन्द्र स्वर्ग हैं	महेन्द्र स्वर्ग है फिर आधे २ राजू में ६ „ युगल
„	११	०	१६ स्वर्ग तककल्पवास देव हैं—इनमें इन्द्र आदि पदवियां हैं १६ स्वर्ग में १२ इंद्र हैं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६२	३	ग्रैवे पक	ग्रैवेयक
„	२७	हजार	
२६३	१	७॥	७
„	३	५-८ में	५-८ में ५ हाथ
„	४	६-१० में	६-१० में ४ ह०
„	५	४ हाथ	३॥ हाथ
„	१०	४ अनुदिश	६ अनुदिश
„	१६	भाय	आय
२६४	२१	भर	भर
२६५	४	मतवाला	मनवाला
„	१०	के	के लिये
„	१८	heliog	belief
२६६	२२	senisr	senior
२६७	१६	१८१६	१६१८
„	२५	इन्द्रियमन	इन्द्रियदमन

नकशा २४ तीर्थंकर

कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
अन्तिम	१४	५४ सागर और ३ पल्य	५४ सागर
„	१६	३ सागर ३ पल्य कम	३ सागर $\frac{६}{१}$ पल्य
„	२४	२५६ वर्ष ३॥ मास	२८८ वर्ष ३॥ मास